

अनमोल ख़ज़ाना

NAGPAL

5·6(150) Set

अनमोल ख़ज़ाना

शान्ति सेठी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

अनमोल ख़ज़ाना
—शान्ति सेठी

प्रकाशक :
एस.एल. सोंधी,
सेक्रेटरी,
राधास्वामी सत्संग ब्यास,
ज़िला अमृतसर [पंजाब]

प्रथम संस्करण	फरवरी १९९१	५०,०००
द्वितीय संस्करण	मई १९९१	५०,०००

मुद्रक : सरताज प्रिंटिंग प्रेस, जोशी एस्टेट, टाँडा रोड, जालन्धर शहर।
फोटो-कम्पोज़िंग : एम.के. प्रिण्टर्ज़, फगवाड़ा गेट, जालन्धर शहर।

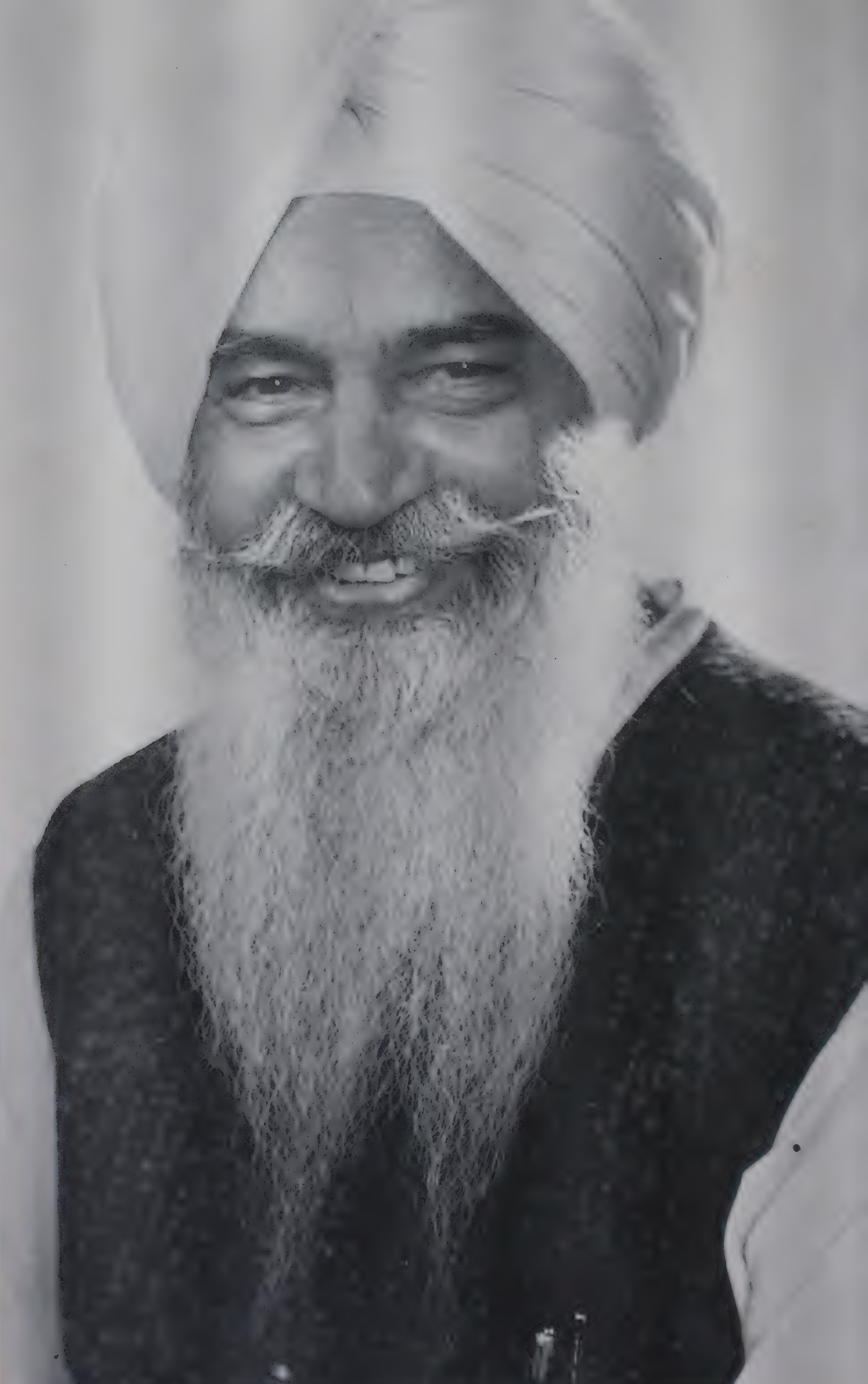
विषय-सूची

विषय **पृष्ठ**

विषय	पृष्ठ

विषय **पृष्ठ**

अन्तिम अध्याय



महाराज चरनसिंह जी

परम प्रिय महाराज जी

के

चरण-कमलों में

—शान्ति

अंमृता प्रिय बचन तुहारे।
अति सुंदर मन मोहन पिआरे
सभ हू मधि निरारे।
राजु न चाहउ मुकति न चाहउ
मनि प्रीति चरन कमलारे।

(आदि ग्रन्थ, पृ. ५३४)

प्रकाशक की ओर से

'अनमोल ख़ज़ाना' अंग्रेज़ी पुस्तक 'ट्रेज़र बियाण्ड मेज़र' का हिन्दी रूपान्तर है जो हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी से सम्बन्धित वार्ताओं का एक बड़ा सुन्दर संकलन है। इन्हें महाराज जी की डायरियों, पत्रों, बातचीत, उनके निकट मित्रों और सम्बन्धियों द्वारा दिये गये वृत्तान्तों तथा संकलन-कर्ता द्वारा लिखे गये नोट्स से इकट्ठा किया गया है।

यह पुस्तक अपने सतगुरु के प्रति महाराज जी के गहरे प्रेम और भक्ति को प्रकट करने के साथ ही संगत के प्रति उनके प्यार और चिन्ता की, उनकी गहन नम्रता और स्वाभाविक दया की, उनकी सहनशीलता और क्षमाशीलता की, उनकी दूर-दर्शिता और उदार दृष्टिकोण की, उनकी असीम कृपा और करुणा की झलकें प्रस्तुत करती है। अपने सतगुरु द्वारा सुपुर्द किये गये कार्य के प्रति उनका समर्पण और उसे सम्पूर्ण करने के लिये, बिना अपने आराम और स्वास्थ्य की चिन्ता किये, उनकी निरन्तर प्रयत्नशील रहने की भावना का भी बोध होता है।

शान्ति सेठी, जिन्हें पिछले सैंतीस वर्षों से महाराज जी के समीप रहने का लाभ मिला है, इस पुस्तक को तैयार करने के लिये पूरी तरह योग्य हैं। उन्होंने मूल अंग्रेज़ी पुस्तक पर कार्य अक्तूबर-नवम्बर १९८९ में शुरू किया और यह फ़रवरी १९९० में प्रेस में दे दी गई तथा मार्च के अन्तिम सप्ताह में छप कर आ गई। इतने कम समय में सारी जानकारी इकट्ठी करने, अपने नोट्स को विस्तार के साथ लिखने और हुज़ूर महाराज जी को बता कर उनकी स्वीकृति प्राप्त करने के लिये हम बहन शान्ति के आभारी हैं।

ब्यास के सतगुरु साहिबान ने अपने सतगुरु को आम तौर पर 'महाराज जी' ही कहा है। परन्तु पाठकों को कोई गलतफ़हमी न हो इसलिये इस पुस्तक में हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी को 'महाराज जी' कहा गया है, सरदार बहादुर महाराज जगतसिंह जी को 'सरदार बहादुर जी', हुज़ूर महाराज

सावनसिंह जी को 'बड़े महाराज जी' तथा बाबा जैमलसिंह जी महाराज को 'बाबाजी' कहा गया है।

सन्त-सतगुरु कई बातें समय की आवश्यकता अथवा किसी खास कारण से कहते या करते हैं। हम उन्हें पढ़ और सुन कर प्रेरणा ले सकते हैं, किन्तु बुद्धि या तर्क के द्वारा समझ नहीं सकते, क्योंकि सन्तों को केवल सन्त ही समझ सकते हैं।

मूल अंग्रेज़ी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद अभी समाप्त हुआ ही था कि डेरा निवासियों तथा विश्व के सभी सत्संगियों को एक घोर आघात सहना पड़ा—हमारे परम प्रिय सतगुरु महाराज चरनसिंह जी १ जून, १९९० को हमें छोड़कर निज-धाम चले गये।

हुज़ूर चाहते थे कि मूल अंग्रेज़ी पुस्तक जल्दी से जल्दी छप कर संगत को मिले। उनकी प्रेरणा से इसका पहला अंग्रेज़ी संस्करण अप्रेल भण्डारे से कुछ पहले तैयार हो गया—हुज़ूर के महा-प्रयाण के करीब दो महीने पहले। आज समझ में आता है कि इस पुस्तक की तैयारी और जल्दी प्रकाशन हुज़ूर के धुरधाम सिधारने का तथा अपना मिशन पूर्ण करने का संकेत था। चिकित्सा की दृष्टि से हुज़ूर महाराज जी स्वस्थ हो सकते थे, परन्तु उन्होंने प्रभु द्वारा सुपुर्द किया गया अपना कार्य सम्पूर्ण कर लिया था। महाराज गुरिन्द्रसिंह जी ने भी गद्दीनशीनी के समय दिये अपने भाषण में फ़रमाया था, "हुज़ूर महाराज जी एक छोटी-सी बीमारी का बहाना करके हुज़ूर बड़े महाराज जी की गोद में चले गये, जिससे संसार में एकदम अँधेरा छा गया। डाक्टरी तौर पर तो हुज़ूर ठीक हो सकते थे, लेकिन उन्होंने चोला छोड़ने का फ़ैसला कर लिया था और हमें छोड़कर चले गये।"

बहन शान्ति सेठी ने अंग्रेज़ी 'ट्रेज़र बियाण्ड मेज़र' के दूसरे संस्करण में कुछ और सामग्री जोड़ी है तथा पुस्तक के आखिर में हुज़ूर महाराज जी के अन्तिम दिनों पर एक हृदय-स्पर्शी अध्याय दिया है, साथ ही उनका वसीयतनामा भी शामिल किया गया है। उन्होंने महाराज जी के जानशीन द्वारा गद्दीनशीनी के समय दिये गये उस भाषण को भी शामिल किया है जिसका प्रत्येक शब्द प्रेम और नम्रता से सराबोर है।

प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद में अंग्रेज़ी के पहले और दूसरे संस्करणों के सभी अंश तथा फ़ोटो शामिल किये गये हैं। इस अनमोल पुस्तक द्वारा हमें हुज़ूर

महाराज जी के निजी जीवन की झलकियाँ मिलती हैं तथा एक सतगुरु के दूसरे में रूहानी परिवर्तन को समझने में कुछ सहायता मिलती है। हमें विश्वास है कि 'अनमोल ख़ज़ाना' संगत को प्रेम और नम्रता, नेक रहनी जीने और भजन-सुमिरन करने की प्रेरणा देगी।

अपने प्यारे सतगुरु हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी के प्रति अपना गहरा आभार प्रकट करने के लिये हमारे पास कोई शब्द नहीं हैं। प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा एक तरह से उन्होंने ही अपनी दया-मेहर से अपने आपको तथा अपने जीवन के अनेक निजी अनुभवों को प्रकट किया है।

हम हुज़ूर के योग्य उत्तराधिकारी अपने प्रिय सतगुरु महाराज गुरिन्द्रसिंह जी के अत्यन्त आभारी हैं कि उन्होंने इस पद के बहुमुखी कार्यों तथा संगत के भौतिक और रूहानी मार्गदर्शन का कार्य पूरी लगन, प्यार और नम्रता सहित सँभाल लिया है।

पुस्तक का हिन्दी अनुवाद श्री तेजकुमार सेठी तथा श्री वीरेन्द्र सेठी ने बड़ी लगन के साथ किया है। पाण्डुलिपि की नकल करके प्रेस-कापी कुमारी बीना मल्होत्रा ने तैयार की है। प्रो. राजेन्द्रपाल प्रेमी और डा. तिलकराज शिंगारी की कुशल देख-रेख में प्रकाशन कार्य हुआ है, तथा इसमें प्रो. आर. सी. बहल, श्री श्याम सुन्दर, डा. संजीवकुमार अरोड़ा और श्री रत्नचन्द ने सहयोग दिया है। पुस्तक के बाहर का कवर (जैकट) तथा अन्दर दिये गए फोटो की छपवाई श्री के.एल. बतरा देहली निवासी की देख-रेख में हुई है। इस प्रेमपूर्ण सेवा के लिये हम सभी के हृदय से आभारी हैं।

आशा है कि पाठक 'अनमोल ख़ज़ाना' को पढ़कर रूहानी स्फूर्ति और प्रेरणा ही नहीं पायेंगे, बल्कि अन्तर में सतगुरु की दया-मेहर के प्रति सजग भी होंगे।

डेरा बाबा जैमलसिंह—१४३ २०४
जनवरी, १९९१

एस.एल. सोंधी
सेक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग ब्यास

प्रस्तावना

सन् १९५३ में नामदान मिला। तब से इन वर्षों में मैंने महाराज जी के सम्बन्ध में कई प्रेरणाप्रद बातें सुनी हैं—उनके परिवार-जनों से, पुराने सत्संगियों से जोकि उनके निकट रहे हैं और सत्संग तथा बातचीत के दौरान स्वयं महाराज जी से। अन्य स्रोतों से भी मुझे जो जानकारियाँ प्राप्त हुईं उन्हें मैं नोट करती रही।

हर सत्संगी अपने सतगुरु के बारे में कुछ जानना चाहता है, उनके जीवन की छोटी से छोटी बात मालूम करना चाहता है। इस सामान्य इच्छा से, जो हम सबमें है, प्रेरित होकर मैंने अपने नोट्स को एक पुस्तक का रूप दिया है ताकि अन्य सत्संगी भी इनका आनन्द ले सकें।

महाराज जी की कृपा से इस कार्य को करने का अवसर भी मिल गया जब डाक्टर जोशी ने मुझे हृदय-रोग के कारण आराम करने का आदेश दिया। मैंने इस समय का उपयोग लिखने और जो भी सामग्री मिली उसे एकत्रित करने में किया। इस प्रकार कुछ ही महीनों में पुस्तक तैयार हो गई।

इसे लिखते समय जब भी किसी बात को स्पष्ट रूप से समझना होता तो मैं महाराज जी से पूछती थी। इसलिये जो भी इन पृष्ठों में है उसकी प्रामाणिकता में मुझे पूरा विश्वास है।

हुज़ूर महाराज जी की अपार दया-मेहर के लिये कुछ कह सकने के योग्य शब्द मेरे पास नहीं हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं की प्रेरणा से सम्पूर्ण हो सकी है। यह उन्हीं के बारे में है, उन्हीं की वस्तु है। यह उनकी अपार कृपा है कि उन्होंने इसके संकलन का अत्यन्त प्रेरणाप्रद अवसर मुझे प्रदान किया।

इस प्रकार के वृत्तान्तों का असली महत्व तो उनके आध्यात्मिक सन्देश को ग्रहण करने तथा उसके अनुसार अपने जीवन को ढालने में है। सतगुरु अपनी शिक्षा की खुद एक मिसाल होते हैं, जो उपदेश वे देते हैं उसका खुद पूरा पालन करते हैं। आशा है प्रेमी सत्संगी इस पुस्तक को पढ़ कर अपने जीवन को सन्तमत के ऊँचे सिद्धान्तों के अनुसार ढालने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

—शान्ति सेठी

खण्ड १

अनमोल ख़ज़ाना

महाराज जी एक दिन पुराने संस्मरण सुना रहे थे। उन्हें अपने सतगुरु बनने के बाद, डेरे में शुरू-शुरू के दिन और यहाँ के उस समय के इन्तिज़ाम आदि की सहज ही याद आ गई।

डेरे में शुरू के दिन

महाराज जी डेरे में सतगुरु के पद पर अक्तूबर १९५१ में आये। उस समय डेरे में व्यवस्था काफ़ी ढीली हो गई थी। सरदार बहादुर जी के समय में (१९४८-५१) डेरे की बागडोर वास्तव में तीन पुराने सेवादारों के हाथों में थी, जो स्वभाव से काफ़ी कठोर और उग्र थे।

लंगर में किसी तरह का नियन्त्रण नहीं था। लंगर के व्यवस्थापक के लिये सेवादारों से अपना हुक्म मनवाना बहुत मुश्किल था, वे केवल नाम के ही प्रमुख थे। कई लोग लंगर से भोजन अपने घर या जहाँ भी वे ठहरते वहीं ले जाते। असल में, दोनों पड़ोस के गाँवों के लगभग आधे निवासियों ने भी यही तरीका अपना रखा था। हर मासिक सत्संग के बाद लंगर के आधे बर्तनों का कोई पता नहीं चलता था। इतना ही नहीं, बल्कि बाहर से आने वाले सत्संगियों को ठहरने के लिये स्थान देने की कोई उचित व्यवस्था भी नहीं थी। जिस व्यक्ति के हाथ में संगत को ठहराने का इन्तिज़ाम था वह अपनी मर्ज़ी से किसी को भी हाँ या न कर देता था; यहाँ तक कि इस बारे में पक्षपात की भी शिकायतें थीं।

डेरा प्रशासन का यह हाल कैसे हुआ, इसे समझने के लिये हमें उस समय के असाधारण हालात पर दृष्टि डालनी होगी। हुज़ूर बड़े महाराज जी ने जिस समय धुरधाम के लिये प्रस्थान किया वह देश के विभाजन का समय था। हिन्दुस्तान में उन दिनों हुए हिंसक उपद्रवों की शायद और कहीं मिसाल नहीं मिल सकती। इतनी बड़ी संख्या में लोगों का एक देश से दूसरे देश में जाना संसार के इतिहास में एक बहुत बड़ी दुर्घटना थी। इसके साथ ही चारों

ओर रक्तपात और मार-काट फैली हुई थी, और देश में कानून तथा व्यवस्था का अन्त हो चुका था।

ऐसे कठिन दिनों में हुज़ूर बड़े महाराज जी ने चोला छोड़ा और उनके चले जाने से एक ऐसा खालीपन आ गया मानो डेरा बेजान हो गया, और सभी सत्संगियों के दिल टूट गये। कई प्रमुख सत्संगी और सेवादार इस वियोग के असह्य दुःख को बरदाश्त न कर सके, वे डेरे से ही चले गये और कई महीनों तक वापस नहीं आये।

बहुत कम लोगों को इस खालीपन और क्षति या हानि का इतना गहरा अनुभव हुआ होगा जितना कि सरदार बहादुर जी को हुआ। वे निष्ठा, लगन और सच्चाई की स्वयं एक मिसाल थे और डेरे के हर विभाग में अनुशासन रखना चाहते थे, पर उनका गिरता हुआ स्वास्थ्य उनके मार्ग में बहुत बड़ी बाधा था। इसके सिवाय हुज़ूर बड़े महाराज जी की लम्बी बीमारी (अक्तूबर १९४७ से २ अप्रेल, १९४८) के समय में डेरे का अनुशासन और इन्तिज़ाम और भी ढीला हो गया था।

सरदार बहादुर जी अपने कमरे से केवल सत्संग के समय बाहर आते थे, और फिर सेवा में लाला मुन्शीराम के आफ़िस में आधा घण्टा बैठा करते थे। बाकी समय वे अपने कमरे में ही रहते थे। अपने स्वास्थ्य की वजह से वे डेरे की रोज़ की व्यवस्था की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाते थे।

लाला मुन्शीराम काम तो करते थे, पर वे बिलकुल अकेले पड़ गये थे और बहुत विनयी और नरम होने के कारण अपने अधिकार का प्रयोग नहीं कर पाते थे। बहस या विवाद से वे दूर रहना पसन्द करते थे। यों भी लोग करते अपने ही मन की थे। इसके सिवाय उनका बहुत-सा समय पाकिस्तान में रह गये सत्संग-घरों का कानूनी मुआवज़ा तय करवाने में चला जाता था। उनको लगभग रोज़ ही किसी न किसी कचहरी में हाज़िरी देनी पड़ती थी। इसमें वे काफ़ी व्यस्त रहते थे।

डेरे में आने के बाद महाराज जी ने लाला मुन्शीराम का ध्यान इन हालात की ओर दिलाया। पर उन्होंने महाराज जी को सलाह दी कि अपने मन की ही करने वाले इन पुराने सेवादारों को नाराज़ न किया जाये क्योंकि "ये आपके लिए परेशानियाँ पैदा कर देंगे और आपके रास्ते में तरह-तरह की रुकावटें डालेंगे।" महाराज जी इस असन्तोषजनक स्थिति को चुपचाप देखते

रहे, लेकिन ज़्यादा समय के लिये नहीं। साल खत्म होते-होते उन्होंने सख़्त कदम उठाने शुरू कर दिये।

सबसे पहले महाराज जी ने एक दिन सत्संग में घोषणा की कि किसी के लिये भी खाना लंगर से बाहर नहीं ले जाया जायेगा। जो भी खाना चाहे, लंगर में बैठकर खाये। स्वाभाविक ही, शुरू में काफ़ी हो-हल्ला मचा, परन्तु महाराज जी खुद रोज़ खाने के समय लंगर में जाकर भोजन आदि परोसने का इन्तिज़ाम देखने लगे।

छः महीने बाद महाराज जी ने सत्संग में घोषणा की कि लंगर में हरिजनों को अलग पंक्तियों में नहीं बिठाया जायेगा। सब लोग एक साथ खायेंगे और हरिजन भी सबके साथ खाना बनायेंगे तथा परोसेंगे। जाति-पाँति के बन्धनों और पुरानी रूढ़ियों के उस ज़माने में यह एक बड़ा क्रान्तिपूर्ण कदम था।

इस परिवर्तन को व्यवहार में लाने के लिये महाराज जी ने डेरे के सभी सेवादारों और साधुओं को अपने निवास-स्थान पर भोजन के लिये आमन्त्रित किया। महाराज जी खुद उनके साथ भोजन के लिए ज़मीन पर एक ही कतार में बैठे, और हरिजनों को आदेश दिया कि वे खाना परोसें। यह देखकर सब लोग हैरान रह गये; लेकिन उनके लिए खाना खाने के सिवाय और कोई चारा न था। इस तरह उन सब लोगों को, जोकि जाति-पाँति के बन्धनों को मानते और लोक-लाज से डरते थे, अपने आप ही इन गलत धारणाओं से ऊपर उठना पड़ा। यह था महाराज जी का तरीका, एक कठिन परिस्थिति को सुलझाने का।

इन्हीं दिनों सरदार बलवंतसिंह कृषि कालेज लुधियाना से सेवा-निवृत्त हुए। महाराज जी ने उनको डेरे बुलाकर दोपहर की सेवा और खेती की देख-भाल सुपुर्द की। वे सन्तमत की पुस्तकों के पंजाबी अनुवाद में भी मदद करने लगे। कुछ समय बाद इंजीनियर श्री बोलाकानी भी डेरे आ गये और महाराज जी के प्रेमी सेवादारों में शामिल हो गये। उनके ज़िम्मे मकान, सड़क, दीवार आदि निर्माण-कार्य किये गये।

निर्माण-कार्यों में सबसे पहले डेरे के चारों ओर दीवार बनाने का काम हाथ में लिया गया। डेरे में और आसपास गहरे खड्ड थे, और चारों ओर से खुला होने के कारण कोई सुरक्षा भी नहीं थी। गीदड़, कुत्ते और ढोर बिना

रोक-टोक यहाँ घूमा करते थे। चारदीवारी बहुत जल्द बन गई और खड्ड धीरे-धीरे कुछ सालों में भर दिये गये।

महाराज जी ने एक बार बताया कि डेरे के मकानों में साधू-आश्रम सबसे पहले बनाया गया। एक दिन महाराज जी खड्डों को देखने गये, जहाँ कई छोटी-छोटी गुफाएँ खुदी हुई थीं जिनमें साधु रहा करते थे। उन्हीं दिनों काफ़ी बारिश हुई थी और बरसात का पानी गुफाओं में आ गया था; साधुओं को बड़ी असुविधा हो रही थी। उनकी हालत देखकर महाराज जी को बड़ा अफ़सोस हुआ और उन्होंने सत्संग-घर के पश्चिम की ओर साधुओं के लिए कुछ कमरे बनाने का विचार किया।

महाराज जी ने जब यह प्रस्ताव लाला मुन्शीराम के सामने रखा तो उन्होंने इसका काफ़ी विरोध किया। लाला मुन्शीराम हुज़ूर बड़े महाराज जी के ज़माने के थे और लम्बे समय से डेरे की सेवा कर रहे थे। उन्होंने डेरे को उस समय से बढ़ते हुए देखा था जब यहाँ लगभग कुछ भी नहीं था। स्वाभाविक ही उनकी डेरे, डेरे की हर चीज़ और खासकर सम्पत्ति के प्रति गहरी वफ़ादारी थी। वे महाराज जी को बचपन से जानते थे, शायद इसलिए महाराज जी के गद्दी पर आने के बाद कुछ वर्षों तक पैसा खर्च करने में वे ज़रूरत से ज़्यादा सावधानी बरतते थे। वे ही डेरे के रुपये-पैसे और हिसाब के लिये ज़िम्मेदार थे, इसलिए उन्होंने महाराज जी से कहा कि बैंक के खाते में डेरे का इतना रुपया ही नहीं है कि मकान बनाये जा सकें।

महाराज जी ने उन्हें विश्वास दिलाया कि चिन्ता न करें, रुपया भी सेवा में काफ़ी आ जायेगा। महाराज जी ने सुझाव दिया कि जैसे-जैसे सेवा में रुपया आता जाये, वैसे-वैसे मकान बनाने का काम आगे बढ़ाया जाये और इसे धीरे-धीरे तथा अलग-अलग हिस्सों में बनाया जाये।

लाला मुन्शीराम को इस बात से सहमत होना पड़ा, और साधू-आश्रम बनाने का काम शुरू हो गया। जैसे ही यह काम शुरू हुआ, सेवा में खूब रुपया आने लगा और कमरे बड़ी जल्दी बन गये। शुरू में यह मकान अविवाहित या अकेले सेवादारों और डेरे में रहने वाले या बाहर से आने वाले साधुओं के लिए ही बनाया गया था; इसलिए इसे साधू-आश्रम कहा जाने लगा। महाराज जी ने फरमाया कि इसके बाद कभी लाला मुन्शीराम ने किसी

योजना या प्रस्ताव का कोई विरोध नहीं किया। तब से अब तक डेरे में एक दिन के लिए भी निर्माण-कार्य बन्द नहीं हुआ है।

लोगों को शौच के लिए नदी तक जाना पड़ता था और वे वहीं नहाते थे, या रहट द्वारा कुएँ से पानी ऊपर लाया जाता था। डेरे में न तो बिजली थी और न ही मैला पानी बहाने के लिये नालियाँ। महाराज जी ने विचार किया कि कुछ छोटे मकान बनाये जायें, जिनमें आधुनिक सुविधाएँ हों, ताकि अच्छे सेवादार डेरे में आना पसन्द करें, और यहाँ आराम से रह सकें; क्योंकि सन् १९५१ तक डेरे में कोई खास कार्यकारी अधिकारी नहीं थे। श्री बोलाकानी ने सेवा-निवृत्त होने के बाद अपनी सेवा डेरे को भेंट कर दी थी। सो उनकी मदद से निर्माण-कार्य शुरू कर दिया गया और इस कालोनी या बस्ती के पहले मकानों की लाइन बनकर तैयार हो गई।

डेरे में बिजली आ गई, मैले पानी के निकास के लिये नालियाँ बन गईं और अन्य सुविधाएँ भी प्रदान की जाने लगीं।

असल में सन्त-सतगुरु खुद ही डेरे के निर्माता और प्रशासक रहते आये हैं—और अब भी हैं; फिर भी ज़ाहिर है कि उस समय महाराज जी को अपनी मदद के लिए योग्य सेवादारों की ज़रूरत थी, ताकि वे सतगुरु के कारिन्दों या यन्त्र के रूप में कार्य करें और डेरे को वह रूप दें जो महाराज जी चाहते थे। आज डेरा उस विकसित रूप में हमारे सामने है। जो यहाँ रहते हैं या बाहर से आते हैं, वे जानते हैं कि डेरा सही मानी में धरती पर स्वर्ग है। धीरे-धीरे जैसे डेरे का विकास होता गया, लोगों ने सेवा-निवृत्त होने पर डेरे को अपनी सेवाएँ देना शुरू कर दिया। ऐसे लोगों में से महाराज जी ने श्री आहलूवालिया को अपना सेक्रेटरी चुना, ताकि वयोवृद्ध लाला मुन्शीराम को भी मदद मिल सके।

उस समय तक सन्तमत की बहुत थोड़ी पुस्तकें ही छपी थीं। इसलिए महाराज जी द्वारा प्रकाशन की ओर भी ध्यान दिया गया।

इस प्रकार महाराज जी ने प्रशासन और अन्य कई कार्यों को व्यवस्थित रूप दिया। उन तीन सेवादारों के अधिकार भी अपने आप समाप्त हो गये, जोकि समझने लगे थे कि डेरा वे ही चला रहे हैं।

सोहनसिंह भण्डारी के संस्मरण

सोहनसिंह भण्डारी एक बार हुज़ूर बड़े महाराज जी के समय की बातें सुनाते हुए बता रहे थे कि कैसे महाराज जी, शोती (कप्तान पुरुषोत्तम सिंह) और वे सब बचपन में साथ-साथ खेलते थे और सब साथ-साथ ही डेरे में बड़े हुए। बाद में सब 'सावन सर्विस लीग' के सदस्य बने और बड़े महाराज जी के समय में एक साथ इस संस्था में काम करने लगे।

सोहनसिंह जी ने बताया कि महाराज जी जब सतगुरु पद पर आये तो उस समय वे खुद भी डेरे में ही थे। सुनाते-सुनाते उनके मुँह से निकल गया कि महाराज जी इस उच्च पद को मंज़ूर करने में बहुत अनमने थे, यहाँ तक कि वे डेरा छोड़कर चले भी गये थे। लेकिन जब हमने उनसे इस बारे में और बताने के लिए आग्रह किया तो वे मौन साधे रहे।

यह बात मेरे मन में थी, और मौका आने पर मैंने महाराज जी से इस बारे में पूछा। महाराज जी ने कुछ झिझकते हुए कहा, "यह सच है। मैंने यहाँ से भागने की कोशिश की थी, क्योंकि मुझे ऐसा लगा कि एक पक्षी की तरह पकड़कर मुझे पिंजरे में रख दिया गया है। कौन-सा पक्षी पिंजरे में बन्द होना चाहता है ? वह हमेशा बाहर निकलने की कोशिश में पंख फड़फड़ाता रहता है। यही कोशिश मैं कर रहा था।"

उत्तराधिकारी बनाये जाने की दिशा में एक संकेत

एक दिन महाराज जी १९५१ की सर्दी के मौसम की शुरुआत के उस घटना-क्रम को याद कर रहे थे जो अन्त में उन्हें डेरे लाया।

सरदार बहादुर जी के चोला छोड़ने के कुछ महीने पहले, सिरसा में अपने दफ़्तर में महाराज जी को राय साहिब मुन्शीराम का एक छोटा-सा पत्र मिला, जिसके साथ इम्पीरियल बैंक ऑफ़ इंडिया (अब स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया) का एक फ़ार्म भी था। पत्र में लिखा था कि महाराज जी फ़ार्म पर दस्तख़त करके भेज दें, ताकि बैंक में एक संयुक्त खाता खोला जा सके। सरदार बहादुर जी और राय साहिब मुन्शीराम के दस्तख़त फ़ार्म पर पहले से ही थे।

महाराज जी को आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था कि उनके दस्तखत

क्यों करवाये जा रहे हैं। इसलिए वे उस फ़ार्म को अपने पिताजी के पास सिकन्दरपुर ले गये, और सबकुछ बताकर उनसे पूछा, "क्या आपको मालूम है कि मेरे दस्तख़त किस लिये चाहियें ?" महाराज जी के पिता ने उन्हें सलाह दी कि उन्हें चाहिये कि जैसा उनसे कहा गया है वैसा ही करें। साथ ही यह भी कहा कि सतगुरु का हुक्म हमेशा बिना किसी सवाल के मानना चाहिए, क्योंकि वे ही जानते हैं कि हमारे लिये क्या ठीक है।

यह तो सभी जानते हैं कि महाराज जी के पिता एक आज्ञाकारी शिष्य के आदर्श उदाहरण थे। हुज़ूर बड़े महाराज जी के समय में, उनके पुत्र होते हुए भी, वे बड़े महाराज जी की हर इच्छा का पूरा-पूरा पालन बिना किसी शक या सवाल के किया करते थे।

सो महाराज जी ने अपने पिता की सलाह पर बैंक के फ़ार्म पर दस्तख़त करके राय साहिब मुन्शीराम को लौटा दिया। साथ ही उनको लिखा कि बेहतर होता अगर यह भी बता दिया जाता कि ये दस्तख़त क्यों करवाये जा रहे हैं।

सरदार बहादुर जी के अन्तिम दिन, और उत्तराधिकारी की नियुक्ति

सरदार बहादुर जी काफ़ी अरसे से बीमार थे। इसलिए अक्तूबर १९५१ में महाराज जी के पिता और माता डेरे में ही थे। लेकिन २१ अक्तूबर को सरदार बहादुर जी ने उन दोनों को यह कहकर सिरसा लौट जाने को कहा कि मेरी तबियत अब ठीक है। उनकी आज्ञानुसार दोनों डेरे से रवाना हो गये। महाराज जी के पिता ने बेजी (महाराज जी की माता) को उनके पीहर मोगा में छोड़ा और खुद सिकन्दरपुर चले आये। उसी दिन महाराज जी भी अम्बाला से वापस सिरसा आये थे।

दोपहर के खाने के बाद दोनों आँगन में आराम कर रहे थे कि एक तार आया जिसमें लिखा था, "सरदार बहादुर जी की हालत नाज़ुक है, चरन के साथ फ़ौरन आओ।" महाराज जी के पिता आश्चर्य में पड़ गये, क्योंकि वे डेरे से एक दिन पहले ही रवाना हुए थे, और वह भी सरदार बहादुर जी के आग्रह पर और उनके यह कहने पर कि उनकी तबियत अच्छी है। महाराज

जी ने भी यही सवाल अपने पिता से किया। उन्होंने भी महाराज जी से पूछा, "वे तुम्हें क्यों बुला रहे हैं?" खैर, दोनों महाराज जी की हिलमेन मोटरकार से रवाना हुए, और बेजी को मोगा से साथ लेते हुए जाने का तय किया।

सिरसा से मोगा जाते समय रास्ते में ऊटू का पुल बाढ़ के कारण बन्द मिला। इसलिए उन्हें पन्द्रह मील का चक्कर लगाकर जाना पड़ा। मलोट पहुँचते-पहुँचते उनकी मोटर डायनेमो के बन्द हो जाने के कारण रुक गई। मोटर को ठीक करवाने में दो घण्टे लग गये और वे काफ़ी देर बाद अपनी आगे की यात्रा शुरू कर पाये। तब तक काफ़ी रात हो गई थी, लेकिन वे चलते ही रहे।

महाराज जी ने हमें बताया कि रास्ते में आधी रात के बाद उन्हें एकाएक अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाश की चमक दिखाई दी और लगा कि सरदार बहादुर जी नहीं रहे। कुछ क्षणों के लिए मोटर उनके नियन्त्रण से बाहर हो गई और सड़क से नीचे उतर कर रुक गई। बिना कुछ बताये उन्होंने अपने पिता से कहा कि वे अब गाड़ी नहीं चलाना चाहते, और उनसे चलाने के लिए कहा।

महाराज जी के पिता ने कार का स्टीयरिंग सँभाला और सवेरे सूर्योदय से काफ़ी पहले मोगा पहुँचे। बेजी उनको देखकर चकित रह गईं, क्योंकि वे भी ब्यास से एक दिन पहले ही आई थीं, और सरदार बहादुर जी ने अपनी तबियत ठीक बतलाई थी। आधे घण्टे में नित्य-नियम से निवृत्त होकर मोगा से बेजी को साथ लेते हुए महाराज जी तथा उनके पिता ब्यास के लिए चल पड़े।

ब्यास पहुँचने पर वे बीबी रली[१] से मिले, और सरदार बहादुर महाराज जी के बारे में पूछा। उनसे मालूम हुआ कि सरदार बहादुर जी ने अपना शरीर आधी रात के बाद छोड़ दिया था। बीबी रली ने उन्हें यह भी बताया कि सरदार बहादुर जी ने राय साहिब मुन्शीराम से वायदा लिया था कि अन्तिम संस्कार के लिये किसी की भी राह नहीं देखी जायेगी, और उनके

---

१. बीबी रली बड़े महाराज जी के रसोई-घर की देख-भाल करती थीं। वे बाल-विधवा थीं और उनके पिता मिलखीराम उन्हें डेरे ले आये थे। भाई मिलखीराम बाबाजी महाराज के प्रेमी सत्संगी थे।

मृत शरीर को नहलाया नहीं जायेगा, क्योंकि वे पहले ही नहा चुके थे। उनकी इच्छा के अनुसार उनका संस्कार सुबह कर दिया गया, और लोग अभी श्मशान-घाट पर ही थे।

महाराज जी ने कहा कि सरदार बहादुर जी के उत्तराधिकारी के बारे में तो कोई ख़याल उनके दिमाग में उस वक्त तक आया ही नहीं था। सो महाराज जी और उनके पिता संस्कार के स्थान की ओर चल पड़े जो डेरे से करीब दो मील की दूरी पर था। उन्होंने उत्तराधिकारी के बारे में किसी से कुछ पूछा भी नहीं, और न ही बीबी रली ने उन्हें कुछ बताया।

जैसे ही वे संस्कार के स्थान के निकट पहुँचे, उन्होंने सरदार बहादुर जी की पोती ज्ञान को मिस लुईस हिलगर के साथ वापस आते देखा; ज्ञान महाराज जी की ओर इशारा करके लुइस से कुछ कह रही थी। जब वे संस्कार-स्थल पर पहुँचे तो देखा कि काफ़ी संगत मौजूद थी, उनमें से धर्मानी साहिब, रणधीर और धर्मचन्द आगे आये और उन्होंने महाराज जी को मत्था टेका। स्वाभाविक ही महाराज जी उनके इस कार्य से बहुत विस्मित हुए, क्योंकि उन्हें समझ में न आया कि इन्होंने मत्था क्यों टेका है। महाराज जी ने फिर बताया कि उस समय तक सरदार बहादुर जी के उत्तराधिकारी का ख़याल तक उन्हें नहीं आया था। ठीक उसी वक्त वड़ाइच के एक बुज़ुर्ग सत्संगी जगतसिंह ने घोषणा की कि सरदार बहादुर जी ने जिन्हें नियुक्त किया है वे आ गये हैं।

एकाएक, महाराज जी ने देखा कि सारी संगत उनको मत्था टेकने लगी है; और जब तक वे बड़े महाराज जी की कोठी नहीं पहुँच गये सब उनके पीछे-पीछे आते रहे। अब महाराज जी समझ गये कि सरदार बहादुर जी ने उनको अपना जानशीन नियुक्त किया है। अपनी डायरी में उसी रात उन्हीं के शब्दों में उन्हीं के द्वारा लिखित प्रतिक्रिया हृदय-विदारक है। वह ज्यों की त्यों यहाँ दी जा रही है:

> "२२ अक्तूबर को मेरे अम्बाला से लौटने पर चाचाजी[1] को बीबी रली का तार मिला, जिसमें लिखा था कि सरदार बहादुर

---

१. महाराज जी परिवार के अन्य बच्चों की तरह अपने पिताजी को शुरू से ही चाचाजी कहते थे।

जी की हालत बहुत गम्भीर है, और चाचाजी फ़ौरन मेरे साथ ब्यास पहुँचें। इस खबर से मुझे बड़ा सदमा पहुँचा, लेकिन यह सोचकर अपने आपको धीरज बँधाया कि कम से कम मुझे उनके दर्शन तो हो ही जायेंगे। चाचाजी और मैं मोटर द्वारा करीब आधी रात को रवाना हुए। परन्तु बीस मील चलने के बाद गाड़ी में कुछ खराबी हो गई और हमें दो घण्टे रुकना पड़ा।

''मोटर चलाते-चलाते एकदम मेरा दिल बैठने लगा और मुझे लगा कि प्यारे सतगुरु हमें छोड़ गये हैं। मैं गाड़ी न चला सका और मैंने चाचाजी से अर्ज़ की कि वे मेरी जगह ले लें।

''अगले दिन दोपहर के करीब १.३० बजे डेरे पहुँचने पर, बहुत से ताँगे और बसें देखकर, लोगों को इधर-उधर अस्त-व्यस्त घूमते देखकर मेरा शक पक्का हो गया, और यह दुःखद समाचार मुझे अम्मा जी (श्रीमती कुंदासिंह) ने दिया। हम उसी समय नदी की ओर चल दिये, जहाँ उनका अन्तिम संस्कार किया जा रहा था। वह स्थान डेरे से करीब दो मील दूर था और चाचाजी को इतनी दूर चलने में बेहद परेशानी हुई। रास्ते में हमें कई लोग मिले, जिनमें से कुछ ने मेरे प्रति हमेशा से ज़्यादा आदर व्यक्त किया, जिससे मुझे चिड़चिड़ाहट हुई। वहाँ पहुँचने पर अमृतसर के लाला धर्मचन्द ने मुझे मत्था टेका। मैं समझ गया कि इस सबका क्या मतलब है। सरदार बहादुर जी का मेरे लिए जो हुक्म था, उससे मैं आश्चर्य में पड़ गया और समझ ही न पाया कि क्या करूँ। लोगों ने मुझे घेर लिया और एक के बाद एक मत्था टेकने लगे।

''मैं नहीं जानता था कि मुझे क्या करना चाहिये। मुझे कभी भी इतना बुरा नहीं लगा, और न ही मैंने कभी अपने आपको इतना शर्मिंदा महसूस किया। मुझे लग रहा था कि मैंने अपने जीवन का कोई घोर अपराध किया है और मुझे प्राण-दण्ड मिला है, जिसे देखने के लिए लोगों ने मुझे चारों ओर से घेर रखा है। वहाँ मेरे तीन घण्टे बड़े भयंकर बीते। भाग्य मेरे साथ इससे बुरा मज़ाक नहीं कर सकता था। मैं जानता था कि जो

मुझे समझा जा रहा था वह मैं नहीं हूँ, पर इससे बचने का भी मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा था।

"किसी तरह मैं घर पहुँचा, और महाराज जी के कमरे में जाकर कितना रोया, यह मैं ही जानता हूँ।

"मैंने भुआ रली के पास जाकर आँसू भरी आँखों से रो-रोकर इसका विरोध किया। घर जाकर अपनी माँ की गोद में सिर रखकर मुझे कुछ धीरज मिला। मुझे माँ का मूल्य तभी मालूम हुआ। ओह! किसी को माँ का वियोग नहीं होना चाहिए।"

महाराज जी ने हमें बताया कि उन्हें सरदार बहादुर जी के हुक्म से केवल आश्चर्य ही नहीं हुआ, बल्कि काफ़ी धक्का भी लगा। उनके सारे नज़दीकी रिश्तेदार और दोस्त उनको घेरे रहे। उनमें से कुछ बहुत खुश थे, कुछ को उन पर तरस आ रहा था, और बाकी को, खासकर उनके रिश्तेदारों को, उनसे हमदर्दी थी। महाराज जी चाहते थे कि उन्हें अकेला छोड़ दिया जाये, वे एकान्त चाहते थे, पर उनकी कोशिशों के बावजूद उन्हें कोई छोड़ नहीं रहा था। वे उन सबसे उकता गये थे। पूरे समय उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे और सबके सामने ऐसा दृश्य उपस्थित करने के लिये वे शर्मिन्दगी महसूस कर रहे थे।

शाम को, जबकि सब बड़े महाराज जी की कोठी पर बीबी रली के पास चले गये, महाराज जी ने चुपचाप अपने भतीजे हरदयाल को बुलाया और उनसे अपनी मोटर हरभज (जूते बनाने वाले) की दुकान के पास खड़ी करने को कहा। उन दिनों यह दुकान डेरे के बाहर थी। उन्होंने अपने भतीजे से जितना भी रुपया उधार ले सकते थे लिया, जोकि केवल बीस रुपये ही निकला, और चुपचाप घर से बाहर निकल पड़े; अँधेरे में उन्हें कोई भी नहीं देख पाया।

फिर भी उन्हें जाते हुए एक सेवादार किशन ने देख लिया और उसने सोहनसिंह जी भण्डारी को उसी समय खबर दे दी। श्री भण्डारी ने ज़रा भी वक्त नहीं गँवाया और तुरन्त महाराज जी के पास जा पहुँचे। महाराज जी ने उनसे तरह-तरह के बहाने बनाये और कहा कि वे तो योंही ज़रा टहल रहे थे।

परन्तु जब महाराज जी मोटर के पास पहुँचे तो श्री भण्डारी का शक बढ़ गया और वे ज़्यादा सचेत हो गये। महाराज जी ने उनसे फिर बहाना किया कि वे रेलवे स्टेशन किसी को लेने जा रहे हैं। लेकिन श्री भण्डारी ने उनके साथ जाने की ज़िद की और मोटर-कार की पिछली सीट पर बैठ गये।

महाराज जी ने फिर उनसे आग्रह किया कि उन्हें अकेला छोड़ दिया जाये, क्योंकि वे एकान्त चाहते हैं, परन्तु भण्डारी ने एक न सुनी और उनके साथ बने रहे। महाराज जी की समझ में नहीं आया कि उनसे कैसे पीछा छुड़ाया जाये। महाराज जी ने कहा कि उन्हें न तो यह मालूम था कि वे क्या कर रहे हैं, और न ही जानते थे कि वे कहाँ जाना चाहते थे। लेकिन उन्हें भण्डारी से बचने की दूसरी युक्ति सूझी। वे कार में जालन्धर प्रोफ़ेसर गुरबख़्शसिंह रणधीर के घर चले आये। महाराज जी ने सोचा कि जब भण्डारी प्रोफ़ेसर से बातों में लगे होंगे, वे बाथरूम के रास्ते से निकलकर चुपचाप चल देंगे। लेकिन दोनों ने किसी न किसी तरह स्थिति को पूरी तरह समझ लिया था।

महाराज जी जब बाथरूम के दरवाज़े से बाहर आये तो उन्हें आश्चर्य हुआ और निराशा भी, क्योंकि उन्होंने देखा कि रणधीर तो कार के सामने लेटे हुए हैं और भण्डारी मोटर के स्टीयरिंग के पास खड़े हैं। महाराज जी ने उन्हें हर तरह से समझाने की कोशिश की, विनती की, पर दोनों ने उन्हें जाने नहीं दिया। वे बोले कि अगर महाराज जी जाना ही चाहते हैं तो उनके मृत शरीरों पर से होकर जा सकते हैं। यह नाटक करीब दो घण्टे तक चलता रहा। आखिर महाराज जी वापस चल पड़े और रात को करीब दो बजे डेरे पहुँचे।

इस बीच जब महाराज जी डेरे में नहीं मिले तो काफ़ी शोरगुल मच गया। हर कोई उन्हें ढूँढने लगा—कोई नदी के किनारे गया, किसी ने गहरे खड्ड में देखना शुरू किया, डेरे के कोने-कोने को छान डाला गया। महाराज जी के सारे परिवार-जन जाग रहे थे, सब बहुत परेशान थे और रो रहे थे।

जब महाराज जी रात को दो बजे डेरे पहुँचे तब सबने चैन की साँस ली होगी। उनके माता-पिता ने उन्हें सिरसा ले जाने का तय किया, ताकि अपने

आपको सँभालने के लिये महाराज जी को कुछ समय मिले। इस निश्चय की सूचना उन्होंने लाला मुन्शीराम को भी दे दी।

उस समय महाराज जी द्वारा लिखे कुछ पत्रों के अंश

अगले दिन महाराज जी को लाला मुन्शीराम के साथ सिरसा ले आया गया। महाराज जी कहते हैं कि सिरसा में क्या हुआ यह बताना बड़ा मुश्किल है। उस समय उनके मन की भावनाओं का कुछ अन्दाज़ उनके द्वारा अपने मित्रों को अपने हाथ से लिखे पत्रों से लगता है :

अक्तूबर २४, १९५१, ब्यास

"…..कल दोपहर दो बजे यहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि हम एक बार फिर अनाथ हो गये हैं। कल सुबह प्यारे महाराज जी हमें छोड़कर चले गये। और मैं तो केवल सत्संगियों द्वारा किये जा रहे उनके अन्तिम संस्कार को ही देख पाया।

"मैं भी मृत-प्राय ही हूँ। मेरी मौजूदगी के बावजूद मुझे मृत घोषित कर दिया गया है। भाग्य ने मेरे साथ एक बहुत बड़ा मज़ाक किया है।

"….जैसा कि मुझे अभी लग रहा है, मैं लोगों से मिल रहा हूँ, वे हाथ जोड़ रहे हैं और उनकी आँखें दुःख और आँसुओं से भरी हुई हैं। जब मैं उनकी भक्ति, विश्वास और श्रद्धा का अपनी कमज़ोरियों से मुकाबला करता हूँ तो मेरा दिमाग कुछ सोच नहीं पाता; मैं ऐसे जी रहा हूँ मानों इसके सिवाय मेरे आगे कोई चारा ही नहीं है। …मुझे घेर कर पकड़ लिया गया है और मैं कैदखाने में डाल दिया गया हूँ।

"……ऐसा लगता है मेरे सम्पूर्ण धीरज और सहनशक्ति का अन्त हो गया है। मेरे अन्दर अपने ही साथ संघर्ष चल रहा है और मैं कुछ तय नहीं कर पा रहा हूँ। …..फिर भी भाग्य ने यही सब मुझे भुगतने के लिए दिया है। काश, मैं दूसरों की भावनाओं के प्रति अनजान हो पाता, निर्दय हो पाता। तब मैं अपने आपके

सुपुर्द कर दिया है–उनकी रज़ा के सुपुर्द कर दिया है। जो कुछ भी उन्होंने मेरे लिए तय कर रखा है उसे मंज़ूर करूँगा। लेकिन एक बात का मैं तुम सबको, और खासकर तुमको, विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं बदला नहीं हूँ और कभी नहीं बदलूँगा, तुम्हारे लिए हमेशा वही रहूँगा।..."

एक अन्य पत्र में महाराज जी ने लिखा, "जो भी हो, मुझे ४ नवम्बर को प्राण-दण्ड दिया गया है।"

इन सब बातों से महाराज जी की सच्ची नम्रता प्रकट होती है। उनको रूहानियत की सबसे बड़ी दौलत दी गई थी, उनमें सतगुरु की हैसियत से डेरे को चलाने की पूरी योग्यता थी और वे सतगुरु बनने के लिए हर तरह से उपयुक्त थे! लेकिन इस पद को न तो वे चाहते थे और न ही इसके वे इच्छुक थे।

यह सबकुछ जैसा सरदार बहादुर जी अपने रजिस्टर्ड वसीयतनामे में लिख गये वैसे ही हुआ; और सरदार बहादुर जी ने भी अपने अन्तर में अपने सतगुरु और उनसे पहले हुए सतगुरुओं से मिले हुक्म का पालन करते हुए महाराज जी को अपना जानशीन बनाया।

गद्दीनशीनी के बाद के प्रारम्भिक दिन

शुरू-शुरू में महाराज जी को डेरे के प्रशासन में अपनी मदद के लिए पुराने सत्संगियों को लाने में बहुत मुश्किल का सामना करना पड़ा। उन सबने महाराज जी को बड़े महाराज जी के पास एक बच्चे की तरह देखा था। उन्होंने महाराज जी को बड़े होकर एक युवा वकील के रूप में भी देखा था। इसलिए वे महाराज जी को सतगुरु के इस नये रूप में गम्भीरता से नहीं ले पा रहे थे।

इस सम्बन्ध में मैंने प्रो. जगमोहनलाल जी से एक बड़ा दिलचस्प वृत्तान्त सुना। प्रोफ़ेसर साहिब बड़े महाराज जी के समय के पुराने सत्संगी थे और वे महाराज जी के भी कालेज के समय के प्रोफ़ेसरों में से एक थे। महाराज जी जिस समय गद्दी पर आये उस समय तक वे रिटायर होकर डेरे में रहने लगे थे। प्रोफ़ेसर साहिब मुझसे कहा करते थे कि यह कभी न भूलना कि ये पूर्ण

सतगुरु हैं और इस बात पर ज़ोर देने के लिए उन्होंने मुझे अपना एक अनुभव सुनाया।

उन शुरू के दिनों में, महाराज जी ने उनको अपनी कोठी पर कुछ विदेशी सत्संगियों के पत्रों के जवाब लिखवाने के लिये बुलवाया ; इन पत्रों के उत्तर देने में पहले ही काफ़ी देर हो चुकी थी। लेकिन प्रोफ़ेसर साहिब ने महाराज जी के निवेदन को गम्भीरता से नहीं लिया। आख़िर तो वे उनके विद्यार्थी रह चुके थे और उनके सामने ही बड़े हुए थे। सो महाराज जी के पास जाने के बजाय वे भजन में बैठ गये ; और ऐसा लगातार तीन दिन तक होता रहा। रोज़ महाराज जी उनको अपनी कोठी पर आने को कहते और वे जाने के बदले भजन में बैठ जाते।

चौथे दिन फिर ऐसा ही हुआ ; प्रोफेसर भजन में बैठ गये। लेकिन शब्द उनको ऊपर की ओर खींचने के बजाय बाहर की ओर धकेलने लगा। अपनी हर कोशिश के बावजूद वे सफल नहीं हो पाये। तब उनकी समझ में आया कि उनके साथ ऐसा इसलिए हो रहा है कि वे सतगुरु के आदेश की अवज्ञा या हुक्मउदूली कर रहे हैं। सो वे तुरन्त उठे, महाराज जी के पास गये, उनसे माफ़ी माँगी और जो उनसे कहा गया था वह कार्य किया।

एक ऐसी ही घटना मुझे आहलूवालिया साहिब ने सुनाई, जोकि मौजूदा महाराज जी के सबसे पहले सेक्रेटरी थे। वे इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया (अब स्टेट बैंक ऑफ इंडिया) के मैनेजर के पद से सेवा-निवृत्त हुए थे। इसी बीच उनके बड़े लड़के बैंक सेवा में चुन लिये गये थे और अम्बाला शहर में मैनेजर नियुक्त हुए थे। श्री आहलूवालिया उनके साथ रहते थे, और जब भी महाराज जी अम्बाला से गुज़रते तो उनसे मिलने उनके पुत्र के घर जाते थे।

एक दिन महाराज जी ने आहलूवालिया साहिब से डेरे आकर राय साहिब मुन्शीराम को डेरे की सेवा में सहायता देने के लिये कहा, क्योंकि राय साहिब अब वृद्ध हो रहे थे। आहलूवालिया साहिब ने वादा किया कि वे ज़रूर डेरे आ जायेंगे। लेकिन सेवा-निवृत्त होने के बाद उन्होंने सोचा कि पहले वे कलकत्ता जाकर नौकरी प्राप्त करने में अपने छोटे लड़के की मदद करें, क्योंकि वहाँ उनके कई प्रभावशाली मित्र थे।

वे कलकत्ता एक महीना ठहरे। पर जिनसे भी वे इस सम्बन्ध में मिले, उनसे निराशा ही मिली। आखिर उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ और

वे अपने लड़के को कलकत्ता में खुद काम ढूँढने के लिए छोड़कर महाराज जी की सेवा करने की इच्छा से डेरे के लिये रवाना हो गये। असल में उन्हें एक रात सपना आया जिसमें बड़े महाराज जी दिखाई दिये और फ़रमाया, "तुम चरन (मौजूदा महाराज जी) के पास जाने में क्यों देर कर रहे हो ? उसने तुम्हें आने के लिए कई बार कहा है। क्या तुम सोचते हो कि अपने लड़के को नौकरी तुम दिलाओगे ?" आहलूवालिया साहिब ने मुझसे कहा कि वे बहुत शर्मिन्दा हुए और तुरन्त ब्यास के लिये चल पड़े। अभी वे ट्रेन में ही थे कि रास्ते में किसी स्टेशन पर उन्हें अपने लड़के का तार मिला कि उसे नौकरी मिल गई है।

यह अक्सर देखा गया है कि जब हम सतगुरु का काम करने में लगे रहते हैं तो दुनिया की ज़रूरतें हमें अपने आप ही मिल जाती हैं। लेकिन जब हम दुनिया के पीछे दौड़ते हैं तो हम सांसारिक ही नहीं, रूहानी दौलत को भी खो बैठते हैं। महाराज जी कभी-कभी बड़े महाराज जी के वचनों को सुनाते हैं, "अगर तुम्हें कुर्सियाँ चाहियें तो बढ़ई को ही अपने घर ले आओ। इसी प्रकार अगर हम परमात्मा को अपने 'घर' ले आयें तो इस दुनिया में जो भी हमें चाहिये मिलता रहेगा। अगर हम अपने अन्दर उसको ढूँढ लें तो उसकी सब दात अपने आप हमें मिल जायेंगी।"

डेरे में शुरू-शुरू के दिन महाराज जी के लिये काफ़ी कठिनाईपूर्ण थे, क्योंकि उन्हें पूरे प्रशासन को व्यवस्थित करना था। आज हमें यहाँ एक बड़ा सुनियोजित, खूबसूरत, साफ़-सुथरा, छोटा-सा नगर दिखाई देता है, जिसके चारों ओर हरियाली और पेड़ लगे हुए हैं। ऐसा लगता है कि हम एक सुन्दर, स्वस्थ तथा शान्तिपूर्ण स्थान में आ गये हैं। लेकिन सन् १९५१-५२ में जब महाराज जी ने यह भार सँभाला उस समय डेरा क्या था, इसकी आज कल्पना भी कठिन है। यह तो केवल वे ही जानते हैं जिन्होंने उस वक्त के डेरे को अपनी आँखों से देखा है।

महाराज जी की अद्वितीय योजना से और उनके योग्य मार्ग-दर्शन में डेरा धीरे-धीरे बढ़ने लगा। जिन लोगों ने उन दिनों में खड्ड देखे हैं वे आज ताज्जुब करते हैं कि इतने सारे खड्ड कहाँ गायब हो गये। आज की अधिकांश नई बस्ती संगत द्वारा भरे गये उन्हीं गहरे खड्डों पर खड़ी है। नदी, जिसके किनारे किसी समय इन्टरनेशनल गेस्ट हाउस था, अब अपना

रास्ता बदल कर दूर चली गई है। इससे डेरे को सैंकड़ों एकड़ उपजाऊ भूमि मिल गई है, जिसे 'मंड' कहते हैं। यह सब अपने प्यारे सतगुरु के अलौकिक मार्ग-दर्शन में, उन्हीं के लिए, बड़े प्यार से संगत द्वारा की गई सेवा का फल है। यह प्रेम-पूर्ण सेवा का एक अपूर्व उदाहरण है।

असल में महाराज जी के समान इस संसार में दूसरा कोई है ही नहीं। उनके चरणों में आने पर ही इसका आभास होता है। नम्रता, दयालुता, उदारता और प्रेम के वे मूर्त रूप हैं। वे जैसे हैं उसका वर्णन करने के लिए शब्द नहीं मिलते। वे हरएक की—चाहे वह अमीर हो या गरीब—सहानुभूति, कृपा और ध्यान के साथ कैसे इतनी सँभाल करते हैं, इस पर कई बार विश्वास करना कठिन हो जाता है।

अद्‌भुत स्मरण-शक्ति

महाराज जी का एक ख़ास गुण हमेशा मुझे चकित करता रहता है। वे कभी किसी को नहीं भूलते, चाहे कितने वर्ष पहले वे उससे मिलें हों, चाहे उस व्यक्ति से उनकी जान-पहचान अपने कालेज या स्कूल के ज़माने में या बचपन में हुई हो। साथ ही, जब कभी भी कोई उनके पास किसी भी तरह की मदद के लिये पहुँचता है, वे हमेशा मदद देते हैं; वह व्यक्ति सत्संगी है या नहीं, इसकी उनको कोई चिन्ता नहीं होती।

वे लोगों से आज भी उसी तरह मिलते हैं जैसे कि शुरू में जब उनसे जान-पहचान हुई तब मिला करते थे। उदाहरण के लिए, अभी कुछ दिन हुए उनके कालेज के समय के एक निकट मित्र उनसे मिलने तीस साल बाद आये। लेकिन महाराज जी उसी घनिष्ठता के साथ उनसे मिले और वही कालेज के दिनों जैसा प्रेम-पूर्ण व्यवहार उनसे किया। हालाँकि महाराज जी अब सतगुरु हैं, फिर भी उनका व्यवहार एक मित्र जैसा था, इतने समय बाद भी उसमें कोई फ़र्क नहीं आया था।

यह मित्र अब महाराज जी के साथ ही रह रहे हैं, क्योंकि उनकी पत्नी गुज़र चुकी है, और उनकी सँभाल करने वाला कोई नहीं है। यह है उनकी दिव्य अलौकिकता जो उनके स्वभाव का एक अंग है। इसका और अधिक

प्रमाण हमें आज के ज़माने में और क्या मिलेगा जबकि अपने निकटतम रिश्तेदारों की लोग परवाह नहीं करते, मित्रों की तो बात ही क्या है ?

एक आदर्श शिष्य

विदेशी सत्संगियों की एक मीटिंग में किसी ने महाराज जी से सवाल पूछा, "क्या बड़े महाराज जी आपके पितामह थे ?" "हाँ" महाराज जी ने जवाब दिया, और फिर बड़ा ज़ोर देकर बोले, "लेकिन वे मेरे सतगुरु भी थे, और यही ज़्यादा महत्वपूर्ण है।" यह उत्तर बड़े महाराज जी के साथ उनके सम्बन्धों के बारे में बहुत कुछ प्रकट करता है। जब भी वे बड़े महाराज जी की बात करते हैं, उनकी आँखें भर आती हैं और गला रुँध जाता है। ऐसा अक्सर बातचीत के दौरान, और खासकर जब वे सत्संग में बड़े महाराज जी का कोई ज़िक्र करते हैं, होता है। ऐसा गहरा है उनका प्रेम अपने प्यारे सतगुरु के प्रति।

बड़े महाराज जी की बुद्धिमत्ता

आज महाराज जी बड़े महाराज जी के कुछ ख़ास गुणों की चर्चा कर रहे थे। उन्होंने फ़रमाया कि बड़े महाराज जी के व्यवहार में एक अभूतपूर्व विवेक और दूरदर्शिता थी। महाराज जी ने यह बात अपनी युवावस्था में हुई एक घटना के द्वारा समझाई, जो इस प्रकार थी :

महाराज जी ने एक नया ताँगा खरीदा था। एक बार वे शनिवार व इतवार की छुट्टी में अपने ताँगे में सिरसा से सिकन्दरपुर गये। उन दिनों यही एक सवारी थी जोकि मुख्य सड़क से घर और खेतों तक जा सकती थी, क्योंकि वह सड़क न तो पक्की थी और न ही डामर की बनी हुई थी।[1]

---

१. वास्तव में उन दिनों मुख्य मार्ग और गाँव के बीच कोई सड़क थी ही नहीं। वहाँ बहुत बड़े मैदान थे जिनमें जंगली झाड़ियाँ उग रही थीं और धूल इतनी थी कि उसमें किसी भी वाहन के पहियों के निशान नहीं रह पाते थे, जिन्हें देखकर रास्ता मालूम किया जा सके।

महाराज जी के पिताजी के पास एक पुरानी 'बक-बोर्ड' थी जोकि बग्गी से मिलती-जुलती होती है।

बड़े महाराज जी जब सिकन्दरपुर आते तो उनका हर सुबह शक्कर मिल और खेतों पर जाने का नियमित कार्यक्रम रहता था। महाराज जी की बड़ी इच्छा थी कि वे उनके ताँगे में जायें। एक दिन उन्होंने अपना निवेदन बड़े महाराज जी की सेवा में उनके निजी सेवादार भाई शादी के द्वारा पहुँचाया।

जब बड़े महाराज जी जाने के लिये तैयार हो रहे थे तो महाराज जी के पिताजी अपनी 'बक-बोर्ड' के पास बड़े महाराज जी को खेत पर ले जाने के लिये खड़े थे। जब भाई शादी ने महाराज जी का निवेदन बड़े महाराज जी तक पहुँचाया तो उन्होंने महाराज जी तथा उनके नये ताँगे की ओर देखा, लेकिन 'बक-बोर्ड' की ओर यह कहते हुए चले कि "अपना पूत सपूत है, अपना कंत सुहाग।"

महाराज जी के पिताजी बड़े महाराज जी को लेकर खेत और शक्कर मिल की ओर चल पड़े। स्वाभाविक ही महाराज जी बड़े निराश हुए और उनका चेहरा उतर गया; परन्तु वे कुछ बोले नहीं। अगले सप्ताह के आखिर में वे फिर अपने ताँगे में सिकन्दरपुर आये। हमेशा की तरह, बड़े महाराज जी सुबह खेत और शक्कर मिल जाने के लिए तैयार हुए। महाराज जी अपने ताँगे के पास खड़े रहे, और उनके पिता अपनी बक-बोर्ड को लिये खड़े थे। महाराज जी की इतनी हिम्मत नहीं हुई कि अपनी इच्छा को फिर से अपने सतगुरु तक पहुँचायें।

लेकिन महाराज जी की खुशी का पार नहीं रहा जब बड़े महाराज जी उनके ताँगे में आकर बैठ गये और भाई शादी से बोले, "मूल से ब्याज प्यारा है।"

"ऐसी थी बड़े महाराज जी की व्यवहार-कुशलता", महाराज जी ने कहा।

एक और बड़ी दिलचस्प घटना है जिससे पता चलता है कि बड़े महाराज जी को मनुष्य-स्वभाव का कितना गहरा ज्ञान था, और वे कठिन परिस्थितियों और समस्याओं को बड़ी कुशलता और सूझ-बूझ के साथ कैसे सुलझा देते थे।

महाराज जी के साथ राव साहिब की पुत्री के विवाह का प्रस्ताव आया।

बड़े महाराज जी जानते थे कि उनके ज्येष्ठ पुत्र सरदार बचिंतसिंह (महाराज जी के तायाजी) इस प्रस्ताव का विरोध करेंगे, क्योंकि राव साहिब हिन्दू थे और उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। उस ज़माने में अपनी बिरादरी या प्रान्त के बाहर सम्बन्ध करना अपनी इज्ज़त के खिलाफ़ माना जाता था।

सो बड़े महाराज जी ने बड़े युक्तिपूर्ण तरीके से अपने ज्येष्ठ पुत्र से बात छेड़ी। उनसे कहा कि राव साहिब ने गुरदयाल (सरदार बचिंतसिंह जी के पौत्र) के साथ अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव भेजा है; और इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के बारे में उनकी क्या राय है?

राव साहिब का सत्संगियों में काफी नाम था, इसलिये सरदार बचिंतसिंह फौरन राज़ी हो गये और बोले कि इस प्रस्ताव को मंज़ूर करने में कोई हरज नहीं है, क्योंकि राव साहिब एक प्रभावशाली और सम्पन्न ज़मींदार हैं।

बड़े महाराज जी ने कहा कि लड़के और लड़की की जन्म-पत्रिकाएँ मिलानी होंगी, क्योंकि यू. पी. के लोग इन बातों में विश्वास रखते हैं और अपनी लड़कियों का विवाह तय नहीं करते जब तक कि लड़के और लड़की की पत्रिकाएँ पूरी तरह नहीं मिलतीं। उन्होंने कहा कि यह कार्य ब्यास में करवा लेंगे।

ब्यास में वापस पहुँचने पर बड़े महाराज जी ने सरदार भगतसिंह को बुलवाया, जोकि बड़े महाराज जी के बहुत निकट थे। अक्सर बड़े महाराज जी उनसे अपने पारिवारिक और डेरे के मामलों में सलाह लिया करते थे। और सरदार भगतसिंह जन्म-पत्रिकाएँ बनाना भी जानते थे। सो बड़े महाराज जी ने उनको विश्वास में लेते हुए उनसे सरदार बचिंतसिंह को तार दिलवाया कि जन्म-पत्रिकाएँ नहीं मिलती हैं। इसलिए बात आगे नहीं बढ़ाई जा सकी।

सरदार बचिंतसिंह जब अगली बार डेरे आये तो बड़े महाराज जी ने उनके सामने सुझाव रखा कि उनके पोते की जन्म-पत्रिका तो मिलती नहीं है, सो उनकी क्या राय है अगर 'चरन' (महाराज जी) के साथ मिलाकर देखी जाये, क्योंकि उनके (सरदार बचिंतसिंह के) विचार से खानदान तो अच्छा है ही। स्वाभाविक ही बड़े महाराज जी के पुत्र के पास हाँ करने के सिवाय कोई चारा नहीं था।

इससे प्रकट होता है कि बड़े महाराज जी को मनुष्य-स्वभाव का बड़ा

गहरा ज्ञान था। वे जो भी करना चाहते वह बिना किसी का दिल दुखाए या चोट पहुँचाए कर लेते थे। राव साहिब की सुपुत्री से सम्बन्ध तय करने में भी यदि वे हुक्म देते तो कोई उनके खिलाफ़ नहीं जाता। फिर भी उन्होंने पहले सबकी मंज़ूरी ली और फिर आगे बढ़े।

ऐसी कई घटनाएँ हैं जिनसे पता चलता है कि महाराज जी भी यही तरीका अपनाते हैं। उनमें से कुछ इस पुस्तक में दी गई हैं; जैसे कि हरिजनों का लंगर में शामिल किया जाना और अपने विचारों के अनुसार लाला मुन्शीराम से कार्य करवाना। महाराज जी में भी वही बुद्धिमत्ता, विवेक और निपुणता है। वे कभी किसी की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाते, कभी किसी का दिल नहीं दुखाते, हालाँकि उनका काम डेरे के अधिकारियों, सरकारी अफसरों, राजनीतिज्ञों आदि अनेक लोगों से पड़ता है।

संगत कई गुना बढ़ गई है; डेरे के कार्यों की विविधता और डेरे का विस्तार दोनों ही बहुत बढ़ गये हैं। इसलिए महाराज जी के सामने अनेक तरह की समस्याएँ आती हैं और कई बार वे बड़ी जटिल या पेचीदा भी होती हैं। महाराज जी मनुष्य-स्वभाव की गहरी समझ और अपने मधुर तथा प्रेमपूर्ण व्यवहार के द्वारा सभी तरह के लोगों को प्रभावित करते हैं और समस्याओं को असाधारण सूझ-बूझ से निपटा लेते हैं। वे किसी को नाराज़ नहीं करते फिर भी काम निकलवा लेते हैं, यद्यपि इस सबसे उनके स्वास्थ्य पर काफी बोझ पड़ता है।

आज यह बड़े गर्व के साथ कहा जा सकता है कि डेरा एक अद्वितीय संस्था है, जिसकी अपूर्व प्रतिष्ठा और मान है, और यह प्रतिष्ठा केवल गवर्नमेंट में ही नहीं बल्कि अन्य कई संस्थाओं में भी है। यह सब महाराज जी की दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता तथा लोगों के साथ व्यवहार करने में कुशलता का फल है।

तीन प्रकार के पुत्र

महाराज जी ने एक दिन सत्संग में एक घटना बड़े महाराज जी के सम्बन्ध में सुनाई, जिसको सुनना हमारे लिये एक नया अनुभव था। एक दिन

बड़े महाराज जी ने महाराज जी को और उनके भाई (शोती) को बुलाया और उनसे एक सवाल पूछा, "तुम क्या बनना चाहोगे–पूत, कपूत या सपूत ?"

महाराज जी ने जवाब दिया कि वे सवाल पूरी तरह समझ नहीं पाये हैं।

सो बड़े महाराज जी ने समझाया कि 'पूत' वह लड़का होता है जो अपने पिता से मिली हुई ज़मीन, जायदाद और खानदान की मान-प्रतिष्ठा को सँभालकर वैसी की वैसी रखता है, न तो उसको बढ़ाता है न बरबाद करता है। 'कपूत' वह है जो पिता से उत्तराधिकार में मिला हुआ सबकुछ बरबाद कर देता है, गँवा देता है ; और 'सपूत' वह है जोकि पिता से प्राप्त हुई दौलत को बढ़ाता है, अपने पिता तथा परिवार के नाम और मान-प्रतिष्ठा को और ऊँचा उठाता है, उसमें चार चाँद लगाता है।

बड़े महाराज जी ने यह कहकर फिर पूछा, "तुम क्या बनना चाहोगे ?" महाराज जी के भाई तो चुप रहे, परन्तु महाराज जी ने जवाब दिया, "हुजूर, मैं तो सपूत ही बनना चाहूँगा, पर सबकुछ आपके हाथ में है।"

बड़े महाराज जी ने फ़रमाया, "मालिक तुम्हें सपूत बनायेगा।"

आज हम देख सकते हैं कि महाराज जी, बड़े महाराज जी के कितने उत्तम सपूत निकले। न केवल सांसारिक दौलत हज़ार गुना बढ़ी है, बल्कि रूहानी दौलत का विस्तार तो असीम हुआ है। महाराज जी की निस्वार्थ सेवा और समर्पण के फलस्वरूप हुजूर बड़े महाराज जी के उपदेश आज संसार के कोने-कोने में फैल गये हैं।

सत्संगियों की संख्या में कई गुना वृद्धि

किसी ने एक दिन महाराज जी से कहा कि महाराज जी के गद्दीनशीन होने के बाद सत्संगी दस गुना बढ़ गये हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि यह सब स्वामीजी, बाबाजी और बड़े महाराज जी के बोए हुए बीज का फल है, और असल में हम तो उनकी बोई हुई फसल को पूरी तरह पानी भी नहीं दे पा रहे हैं। इस सम्बन्ध में महाराज जी हमेशा बरगद के पेड़ का उदाहरण देते हैं। इसका बीज दिखने में तो बहुत छोटा होता है, पर वह बढ़कर एक विशाल वृक्ष हो जाता है। पेड़ की विशालता देखकर अचरज होता है कि कैसे इतने छोटे-से बीज ने इतने बड़े पेड़ का रूप ले लिया। सो महाराज जी कहते हैं कि

आज जो कुछ भी नज़र आ रहा है वह सब हुज़ूर बड़े महाराज जी और उनके पहले के गुरुओं के लगाये हुए बीज के कारण ही है। यह सब महाराज जी की नम्रता और अपने सतगुरु के प्रति प्रेम और समर्पण की भावना का फल है।

हमेशा दो, माँगो नहीं

एक और प्रसंग महाराज जी ने सुनाया जोकि बड़े महाराज जी के चोला छोड़ने के कुछ दिन पहले का है। बड़े महाराज जी ने अपने पुत्रों और उनके परिवार-जनों को बुलाया और फ़रमाया, "मैंने तुम सबको अलग-अलग और पूरी तरह काम-काज में स्थापित कर दिया है और अब तुम सब अच्छी तरह कमा रहे हो। मैं तुम सभी को सलाह देता हूँ, 'कभी अपना हाथ माँगने के लिए मत फैलाना, हमेशा देने के लिए ही बढ़ाना।' उनके पुत्रों ने जवाब दिया, "आपके आशीर्वाद से जैसा आप चाहते हैं वैसा ही होगा।"

आज यहाँ हर सत्संगी जानता है कि महाराज जी और उनका परिवार अपने खेतों से डेरे के लिए कितनी सेवा दे रहे हैं। उन्होंने और उनके परिवार ने हमेशा दिया ही है और देते ही रहते हैं। उन्होंने अपनी बहुत कीमती कृषि-भूमि सिकन्दरपुर में सत्संग-घर बनाने के लिये दी है; फिर और ज़मीन दी जहाँ कि राधास्वामी सत्संग ब्यास सोसायटी एक चेरिटेबल अस्पताल बना रही है।

महाराज जी की अपनी माता के प्रति भावना

महाराज जी के अपनी माता, जिनको वे प्रेमपूर्वक बेजी कहते हैं, के साथ अद्वितीय सम्बन्ध हैं। जो प्यार और आदर महाराज जी उन्हें देते हैं, वह केवल हृदय को छूने वाला ही नहीं बल्कि खासकर आज के ज़माने में एक मिसाल है। इस भौतिकवाद और स्वार्थ के समय में रिश्तों का मतलब खत्म हो गया है और आज कोई किसी की परवाह नहीं करता। परन्तु जिस तरह महाराज जी सच्चे प्रेम की भावना के साथ अपनी माता की सँभाल तथा देख-भाल करते हैं, उनका ख़याल रखते हैं, उस पर केवल देखने से ही विश्वास आ सकता है। हर रोज़ सुबह अपना कार्यक्रम शुरू करने से पहले,



हाथ लेने के लिये मत फैलाओ



हाथ सदा देने के लिये निकालो

महाराज जी अपनी माता के पास जाते हैं और उनको मत्था टेकते हैं। उनके साथ कुछ देर बैठकर बातचीत करते हैं।

इस सम्बन्ध में महाराज जी के पिताजी द्वारा अपने आख़री दिनों में कही हुई बात कितनी सही निकली है। महाराज जी के पिताजी ने बेजी से कहा था कि वे उनको कोई जायदाद या नगद रुपया नहीं दे रहे हैं। उन्होंने कहा, "अगर मैं तुम्हें देता भी तो उससे ज़्यादा दिन तक काम नहीं चलता। लेकिन मैंने तुम्हें दो प्यार करने वाले समर्पित बेटों के रूप में सच्ची 'सम्पत्ति' दी है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि वे तुम्हारी अच्छी तरह सँभाल ही नहीं करेंगे, बल्कि तुम्हारी ज़िन्दगी की सारी ज़िम्मेदारियों और ज़रूरतों को तुम्हारे कहे बिना ही पूरा करेंगे।" यह कहकर उन्होंने बेजी का एक हाथ लेकर महाराज जी (बड़े पुत्र) के हाथ में पकड़ा दिया, और बेजी से कहा, "तुम्हें कभी किसी चीज़ की कमी महसूस नहीं होगी।"

यह सब सही निकला है। महाराज जी और उनके भ्राता ने अपनी बहन की शादी की। तीन अन्य बहनों का विवाह पहले ही हो चुका था। उन्होंने अपनी विधवा बड़ी बहन के बच्चों को पढ़ाया, उनकी शादियाँ कीं, और उनको जिन्दगी में काम-काज में लगवाया। बेजी के हाथ में हमेशा सिकन्दरपुर के घर का पूरा काम-काज रहा है। उनकी हर इच्छा हमेशा उनके दोनों पुत्रों के लिये हुक्म रही है, जिन्होंने कभी कोई सवाल नहीं किया, केवल हुक्म माना। आज के ज़माने में कौन-सी माता इतनी भाग्यशाली है जिसे ऐसे पुत्र मिले हों?

पिछले दो वर्षों से बेजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है। वे प्रबल इच्छा-शक्ति और मज़बूत शारीरिक प्रकृति वाली महिला हैं, फिर भी अब इस नब्बे साल की उम्र में उनके लिये बार-बार सफ़र करना मुश्किल है। इसलिए महाराज जी उन्हें सिकन्दरपुर से डेरे ले आये हैं ताकि उनकी देखभाल महाराज जी की देख-रेख में हो सके। महाराज जी अपने इतने व्यस्त कार्यक्रम में भी उनके साथ बिताने के लिये कुछ समय निकाल ही लेते हैं। वे भोजन उनके साथ करते हैं, उनको हँसाते हैं और हर तरह से उन्हें खुश और आराम से रखने की कोशिश करते हैं। यह देखकर हैरत होती है कि आज के ज़माने में भी इतने मातृ-परायण पुत्र इस संसार में हैं।

महाराज जी पूर्णता की मूर्ति हैं, एक दिव्य पुरुष हैं, हर प्रकार से

दोष-रहित हैं; शब्द उनका वर्णन कर नहीं सकते। हम उन्हें किसी भी दृष्टि से देखें—एक भाई, पिता, पति, पुत्र, मित्र और अवश्य ही सतगुरु के रूप में—वे अनुपम हैं, बेजोड़ हैं और मानव समाज के एक सच्चे मित्र हैं।

प्रेम और दर्शन

महाराज जी ने एक अमेरिकी सत्संगी महिला को देहधारी सतगुरु के दर्शन के लाभ के बारे में जो सलाह दी थी उसमें से कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं। यह १९५२ में किसी समय लिखी गई थी, जोकि आज ही मुझे मिली है :

"सन्त देहधारी गुरु के दर्शन को बहुत महत्व देते हैं। सतगुरु के दर्शन-मात्र से आनन्द प्राप्त करना बहुत बड़ी चीज है, क्योंकि इससे प्रकट होता है कि शिष्य के अन्दर प्रेम है, और उसके अन्तर में दर्शन तथा और अधिक दर्शन के सिवाय कोई अभिलाषा नहीं है। वह हमेशा सतगुरु के जितने ज़्यादा दर्शन हो सकें करना चाहता है, जिसके फलस्वरूप वह आन्तरिक मण्डलों में अपने सतगुरु के निकट आता जाता है।"

महाराज जी ने कहा कि कभी-कभी सतगुरु सत्संगी पर बगैर किसी स्पष्ट कारण और बिना उसके किसी प्रकट अभ्यास के रूहानी दौलत की बख़्शिश कर देते हैं। परन्तु इस दया-मेहर को पाने का अधिकार शायद उसने पिछले जन्मों में कमाया हो।

"प्रेम और भक्ति भजन से ज़्यादा महत्वपूर्ण है। प्रेम अपने आपमें सम्पूर्ण है। प्रेम में प्रेमी और प्रियतम दोनों एक हो जाते हैं, आशिक और माशूक एक हो जाते हैं। प्रेम से बड़ा कोई भजन नहीं है। प्रेम से ऊँचा कोई कानून नहीं है, प्रेम के बाद कोई मंज़िल नहीं है। परमात्मा और प्रेम एक ही हैं। भजन में मेहनत करनी पड़ती है; प्रेम अपने आप होता है। प्रेम का अर्थ है शब्द में लीन हो जाना, अपने आपको, अपनी खुदी को खो देना।

"प्रेम और काम में बहुत अन्तर है। काम हमें नीचे खींचता है, प्रेम ऊपर ले जाता है। काम में दुःख है, प्रेम में एकता और आनन्द है। काम इन्द्रियों की लालसा है, प्रेम आत्मा की तड़प है। काम काल का एक अस्त्र

है, प्रेम गुरु का प्रसाद है। सतगुरु द्वारा जाग्रत किया हुआ प्रेम एक अनूठी देन है, मुक्ति का दाता है।"

इससे मुझे याद आया कि महाराज जी ने हमें एक बार अंग्रेज़ी के सत्संग में बताया था कि गद्दी पर आने से पहले उन्होंने सन्तमत की एक भी पुस्तक नहीं पढ़ी थी, हालाँकि वे बच्चे से बड़े डेरे में ही हुए और बड़े महाराज जी की प्रेमपूर्ण देख-रेख में बीबी रली ने उनका पालन किया। लेकिन जो गहरा प्रेम उनको बड़े महाराज जी और सरदार बहादुर जी से था, उसकी वजह से उन्हें कभी कोई किताब पढ़ने की ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई। उन्होंने कहा, "मैंने बड़े महाराज जी के द्वारा ही सन्तमत को जाना है, जो कुछ भी वे कहते थे वही मेरे लिए सन्तमत था। पर आप लोग सतगुरु को पुस्तकों और उपदेशों के द्वारा जानते हैं।"

एक बार महाराज जी ने सरदार बहादुर जी से कहा, "आपके सत्संग बहुत छोटे होते हैं।" सरदार बहादुर जी केवल पैंतालीस मिनिट ही सत्संग किया करते थे। इस पर सरदार बहादुर जी ने जवाब दिया, "मैं अपनी सारी ज़िन्दगी प्रोफेसर रहा हूँ, मैं जानता हूँ कि कोई पैंतालीस मिनिट से ज़्यादा एकाग्रता के साथ नहीं सुन सकता।"

यह सुनकर महाराज जी ने उनसे कहा, "लेकिन सत्संग सुनने के लिये कौन जाता है! हम तो जाते हैं आपके दर्शन के लिये।" इस पर सरदार बहादुर जी मुस्करा दिये, क्योंकि वे जानते थे कि ये शब्द एक पूर्ण शिष्य के हृदय से निकल रहे हैं, जोकि एक दिन सतगुरु बनने वाला है।

एक बार एक इंग्लिश मीटिंग में किसी ने महाराज जी से दर्शन के बारे में पूछा। महाराज जी ने जवाब दिया, "दर्शन तो एक शिष्य की मजबूरी है, वह अपने प्रियतम को लगातार देखते रहना चाहता है; इसके बगैर रह नहीं सकता। हमें यह हिसाब नहीं लगाना चाहिये कि दर्शन के फलस्वरूप हमें क्या मिलेगा, और कितनी रूहानी तरक्की प्राप्त होगी। सच्चा दर्शन तो अपने आपको दर्शन में खो देना है, बिना किसी आशा या इच्छा के अपने आपको सतगुरु में लीन कर देना है। सतगुरु की ओर निरन्तर देखते रहने की विवशता ही दर्शन है।"

महाराज जी के सम्बन्ध में उनके दो मित्रों का पत्र-व्यवहार

कुछ दिन हुए मुझे महाराज जी के दो मित्रों के आपसी पत्र-व्यवहार में महाराज जी के सम्बन्ध में उनकी दिलचस्प टिप्पणियाँ पढ़ने को मिलीं :

"अफ़सोस है कि जहाँ मेरा उनके प्रति प्रेम बढ़ता ही जा रहा है, वहीं वे अपनी निराली खामोशी बनाये रखने में खुश हैं। कम से कम मुझे तो ऐसा ही लगता है। यह तो कभी हो नहीं सकता कि वे मेरे प्रति प्रेम रखना छोड़ दें ; वे तो जिसे भी एक बार अपना प्यार देते हैं उसके प्रति वही प्रेम-भाव हमेशा बनाये रखते हैं। यही उनकी कमज़ोरी है, और इसी में है उनकी महानता।" पत्र समाप्त करने के बाद कुछ लाइनें और जोड़ी गई हैं :

"मुझे यह लिखते हुए खुशी हो रही है कि इस पत्र का बड़ी जल्दी फल मिला है—आज ही उनका पत्र आया है।"

दूसरे पत्र में इसी मित्र ने महाराज जी के साथ सफ़र करते हुए लिखा है :

"मैं धनी नहीं हूँ फिर भी मुझे उनके साथ रहने के लिए खर्च करना पड़ता है। मैं उनके पीछे-पीछे उनसे कुछ अलग रहता हूँ, और उनके पास आने की कोशिश करता हूँ, फिर भी मैं बहुत खुश हूँ। इच्छा पूरी करने के उनके (महाराज जी के)अपने तरीके हैं और इसमें वे बहुत उदार हैं। एक तरह से तुम्हारा भी वही हाल है जो मेरा है। कम से कम हम सब इस बात को समझते हैं। यह देहधारी परमात्मा भी एक निराली हस्ती है। ये बहुत सरल हैं, पर साथ ही समझने में बहुत जटिल। लेकिन वे हमारे हैं। इस बात की हमें बड़ी खुशी है। वे महान हैं। लोग उनका आदर करते हैं, उनसे प्यार करते हैं, और उनके आकर्षण तथा जलाल ने सबको जीत लिया है।"

———

महाराज जी के पत्रों के कुछ अंश

महाराज जी द्वारा अपने मित्र को लिखे एक पत्र में से कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं :

"पता नहीं क्यों जब भी मैं भारत छोड़कर बाहर जाता हूँ, मेरी मनोदशा एक दार्शनिक की तरह कुछ अजीब-सी हो जाती है, और मुझे ऐसा लगता है मानों मेरा यहाँ कुछ है ही नहीं। मैं जब कभी भी इस 'पवित्र वातावरण' को छोड़कर जाता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं इसका कभी था ही नहीं। मुझे यह मानने के लिये अपने आपको मजबूर करना पड़ता है कि यहाँ मेरी कुछ ज़िम्मेदारियाँ हैं, उत्तरदायित्व हैं और कहने के लिए कुछ मोह के बन्धन भी हैं। इसलिए तुम मेरी खामोशी का कारण समझ सकते हो। जितना ज़्यादा मैं दुनिया के लोगों को देखता हूँ, उतना ही ज़्यादा मुझे लगता है कि मैं यहाँ का नहीं हूँ। मेरी इच्छा हमेशा अपने आपमें रहने की ही होती है। मुझे लगता है कि मेरी अपनी अलग ही दुनिया है, जो कुछ मैं अपने आसपास देखता हूँ उससे वह बिलकुल ही अलग है।"

महाराज जी के व्यक्तिगत पत्रों में से एक और पत्र के कुछ अंश :

तारीख २३ जनवरी, १९६३

"शारीरिक और मानसिक रूप से मैं जीते हुए भी निष्प्राण हूँ। महाराज जी का उपदेश दुनिया के हर कोने में पहुँच गया है, लेकिन मैंने अपने को और अपने स्वास्थ्य को अस्त-व्यस्त कर लिया है। मैं नहीं चाहता कि अपनी ज़िम्मेदारियाँ पूरी करने में मेरी ओर से ज़रा-सी भी कोताही हो; और मेरे प्यारे महाराज जी की मुझसे जो आशाएँ हैं उन पर मैं पूरा उतरना चाहता हूँ। जो कुछ भी मेरे पास है, मैंने संगत को अर्पण कर दिया है। जो मैं नहीं दे पाया हूँ, वह मेरे पास था ही नहीं। मैं जो कुछ भी करता हूँ अपने कर्तव्य अदा करने के लिये करता हूँ, अपने प्रियतम के प्रेम की ख़ातिर करता हूँ। अगर कोई मेरे रोज़ के कार्यक्रम के मिनिट-मिनिट का हिसाब करे, तभी पता लग



महाराज जी अपने विवाह के समय अपने भाई के साथ

सकता है कि मेरा क्या हाल है। ८ सितम्बर से आज तक मैं लगातार एक सप्ताह से ज़्यादा एक जगह नहीं सोया हूँ, और यही क्रम मई के आख़िर तक चलेगा। मुझसे इस बार की गर्मियों में अमेरिका जाने का बहुत आग्रह किया जा रहा है.....।''

* * *

इतने व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद भी महाराज जी अपने दोस्तों का ख़याल रखते हैं और उनको पत्र लिखने का समय निकाल लेते हैं। समझ में नहीं आता कि वे औरों का इतना ध्यान और फिक्र कैसे रख पाते हैं। वे अपने मित्रों में से एक को लिखते हैं :

''मैं तुम्हारे प्यार की बहुत कद्र करता हूँ और यह भी जानता हूँ कि इतने लम्बे समय तक मुझसे दूर रहना तुम्हारे लिए कितना मुश्किल है। शायद अपनी ज़िन्दगी में पहली बार ही तुम्हें इसका अनुभव करना पड़ रहा है। लेकिन तुम्हें जीवन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। तुम्हारे कई उत्तरदायित्व हैं और तुम उन्हें मुस्कराते हुए निभा रहे हो, यह देखकर मुझे खुशी होती है। मुझे अफ़सोस है कि तुम्हारे जल्दी-जल्दी आने वाले पत्रों का समय पर जवाब देना मेरे लिये मुश्किल है, पर मेरी भावनाएँ हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

''डेरा बड़ी तेज़ गति से बढ़ रहा है और यहाँ चल रहे दैनिक कार्यों को निपटाने में काफी समय लग जाता है।''

* * *

महाराज जी द्वारा अपने एक मित्र को २२ अक्तूबर, १९६४ को लिखे पत्र के कुछ अंश :

''कृपया यह मत समझना कि मैं तुम दोनों को नज़र-अन्दाज़ कर रहा हूँ और अब मेरे प्रेम और दोस्ती पर तुम्हारा अधिकार नहीं रहा है। जो भी मेरे दिल तक एक बार पहुँच गया है, वह हमेशा वहीं रहता है।''

एक दूसरे पत्र में महाराज जी २२ अप्रेल, १९६२ को विदेश से लिखते हैं :

"मैं हुज़ूर महाराज जी का सन्देश इन देशों में ले जा रहा हूँ और उनकी दया-मेहर का हाथ लगातार मेरे ऊपर है। इस बारे में कोई चिन्ता मत करना। वे इस गुनहगार पर हमेशा बहुत मेहरबान हैं।"

यह महाराज जी की स्वाभाविक नम्रता है कि पूर्ण समर्थ होते हुए भी सबकुछ अपने गुरु के नाम से करते हैं और उनको ही यश देते हैं।

सरदार बहादुर जी के सम्बन्ध में

दोस्तों के सम्बन्ध में महाराज जी ने सरदार बहादुर जी के साथ हुई एक और घटना हमें बताई। एक बार महाराज जी डेरे में अपने दोस्तों के साथ दफ़्तर की ओर जा रहे थे, जहाँ उस समय सरदार बहादुर जी बैठे हुए थे। चलते-चलते वे अपने एक दोस्त को मज़ाक में चिढ़ा रहे थे, और उसे इतना चिढ़ाया कि उसके आँसू आ गये। सरदार बहादुर जी यह सब देख रहे थे, उन्होंने महाराज जी को उंगली के इशारे से बुलाया और बड़े मिठास के साथ कहा, "चौधरी (जैसा कि वे प्यार से महाराज जी को पुकारते थे), मज़ाक वह होता है जिसका जितना करने वाला स्वाद लेता है, उतना ही जिसके साथ किया जाये वह भी स्वाद ले।"

सरदार बहादुर बहुत सादे और सरल व्यक्ति थे, बहुत कम बोलते थे और जिस विषय पर चर्चा करते बातचीत की धारा को उससे अलग नहीं जाने देते थे। बड़े महाराज जी के समय में वे एक कोने में चुपचाप बैठे रहते और बड़े महाराज जी के प्रेमपूर्ण चेहरे की ओर एकटक देखते रहते; उस समय वहाँ डेरे की ज़मीन और अन्य मामलों पर डेरे के अधिकारियों के साथ चर्चा चलती रहती, जिसमें सब लोग भाग लेते। कभी-कभी बड़े महाराज जी एकाएक सरदार बहादुर जी की ओर देखकर पूछते, "तुम्हारी क्या राय है ?" उनका जवाब सदा एक ही होता था, "हुज़ूर, आपसे ज़्यादा कौन जानता है ?" इस पर बड़े महाराज जी मुस्करा देते थे।

महाराज जी ने हमसे कहा कि गद्दी पर आने के कुछ समय बाद सरदार बहादुर जी सिरसा गये। महाराज जी, उनकी सब बहनें और बेजी भी वहीं थे। हर रोज़ सुबह पूरा परिवार उनको मत्था टेकने जाता था। सरदार

बहादुर जी को मालूम नहीं था कि महाराज जी की कितनी बहनें हैं और उनके क्या नाम हैं, हालाँकि वे महाराज जी के माता-पिता के काफ़ी निकट थे। सो उन्होंने महाराज जी से पूछा कि उनकी कितनी बहनें हैं ? महाराज जी ने जवाब दिया, "चार।" "कितनी की शादी हो गई है ?" उनका अगला सवाल था ; और उत्तर था, "दो की शादी हो चुकी है।" फिर उन्होंने सबके नाम महाराज जी से पूछे, क्योंकि वे उन सबसे नाम लेकर बात करना चाहते थे, ताकि निकटता प्रकट कर सकें।

लेकिन अगले दिन जब रोज़ की तरह वे सब मत्था टेकने आईं, तो सतनाम गुरनाम हो गई, गुरनाम हो गई देवी और देवी महिन्दर बन गई। महाराज जी मुस्करा दिये और फिर से सरदार बहादुर जी को सबके सही नाम बताये। अगले दिन उन्होंने सबको सही नाम से पुकारा।

एक दिन बातों ही बातों में महाराज जी ने सरदार बहादुर जी के बारे में बताया, "एक बार मैं डेरे आया हुआ था और उनके पास बैठा था। उन्होंने मुझसे मेरे एक दोस्त के बारे में पूछा। मैंने उन्हें बताया कि मैं अब उस मित्र से नहीं मिलता और अब हमारी कोई मित्रता नहीं रही है।"

यह सुनकर सरदार बहादुर जी ने मुझसे कहा, "एक बार बनाया हुआ मित्र, हमेशा मित्र रहता है। अगर तुम अपने मित्रों की परीक्षा ही लेते रहोगे तो तुम्हारा कोई मित्र ही नहीं रहेगा।"

लंगर का विकास

अभी कुछ ही दिन पहले, सुबह के सत्संग में महाराज जी ने लंगर के विषय में कुछ सुनाया। वे बोले कि बाबाजी ने अपने जीवन-काल में बड़े महाराज जी से कहा था कि वे बाबाजी के चोला छोड़ने के बाद सत्संग करें और डेरे का बन्दोबस्त भी सँभालें। सो बाबाजी के बाद जब बड़े महाराज जी गद्दी पर आये तो उन्हें अपनी पहली और सबसे बड़ी समस्या यह लगी कि बाबाजी द्वारा शुरू किये गये लंगर को कैसे चालू रखा जाये। इसे चलाने के लिए काफ़ी रुपये की ज़रूरत थी ताकि अनाज आदि खरीदा जा सके। बड़े महाराज जी कहा करते थे, "मैंने कभी किसी तरह के दान या चन्दे की माँग नहीं की। अपनी नौकरी के दिनों में जब मैं कई धार्मिक या सामाजिक

संस्थाओं का अध्यक्ष या सदस्य रहा, तब भी मैंने कभी कुछ नहीं माँगा।

"सो मैंने बाबाजी से अन्तर में प्रार्थना की, 'हुज़ूर, आपने लंगर शुरू किया है। मैं तो हमेशा अपनी कमाई की सीमा में रहा हूँ और कभी किसी से कुछ नहीं माँगा है। मैं इतना बड़ा लंगर कैसे चला सकूँगा ?' उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया, 'तुम इस बारे में कोई फिक्र मत करो। यह स्वामीजी महाराज के आशीर्वाद से शुरू हुआ है। तुम इसे जैसा चल रहा है चलाओ और यहाँ कभी किसी समय भी खाने की कमी नहीं होगी ; हमेशा सबकुछ भरपूर रहेगा'।"

"बाबाजी की दया-मेहर और आशीर्वाद से लंगर हमेशा चलता ही रहा है–बड़े महाराज जी के समय में, सरदार बहादुर जी के समय में और, जैसा कि सब जानते हैं, आज भी जब संगत की संख्या बढ़कर लाखों हो गई है, चल रहा है और खाना सबको आराम से मिलता है।

महाराज जी ने आगे फ़रमाया, "मैंने लंगर को लड़ाई के दिनों में भी चलते देखा है और देश के विभाजन के भयंकर समय में भी, जबकि अनाज की हर जगह सख़्त कमी थी। पाकिस्तान से आने वाले अनेक शरणार्थी और हिन्दुस्तान से पाकिस्तान जाने वाले डेरे में इकट्ठे हो गये थे। फिर भी लंगर वैसे ही चलता रहा जैसे कि आज चल रहा है।

"देश के विभाजन के समय, महाराज जी के हुक्म से बना-बनाया खाना ब्यास रेलवे स्टेशन पर सभी शरणार्थियों को दिया जाता था, चाहे वे पाकिस्तान से आ रहे हों या वहाँ जा रहे हों, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान। इस तरह हर भरी हुई रेल को अच्छी तरह खाना खिलाया जाता था और सत्संगी उन्हें खिलाकर बड़े खुश होते थे।

"मुझे नहीं मालूम कहाँ से और किस तरह इतना खाना आता था। अपने बचपन से अब तक लगातार मैंने लंगर के भण्डार हमेशा अनाज से भरे देखे हैं। अब तो हमारे पास अपनी ज़रूरतों से कहीं ज्यादा अनाज है। यह इसके बावजूद है कि लाखों लोग रोज़ खाना खाते हैं, खासकर हमारे मासिक सत्संगों के समय। यह सब संगत की भक्ति और प्रेम का फल है। अब डेरे के प्रबन्धकों को बाज़ार से कोई अनाज नहीं खरीदना पड़ता।

"बड़े महाराज जी अक्सर कहा करते थे कि बाबाजी ने इस डेरे की नींव प्यार और सेवा पर रखी है।"

आज यहाँ जो कुछ हो रहा है उससे बड़े महाराज जी के वचन की पुष्टि होती है। लाखों लोग भण्डारों के दिनों में लंगर में खाना खाते हैं। सेवादार बड़े प्रेम और लगन से खाना पकाते और खिलाते हैं। जब महाराज जी भण्डारों के दिनों में लंगर में जाते हैं, तब खाना बनाने वाली बीबियाँ शब्द गाती हैं और दोनों हाथ जोड़कर महाराज जी के एकटक दर्शन करती हैं; उस समय उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहती रहती है। यह एक बड़ा खूबसूरत और मर्मस्पर्शी नज़ारा होता है, जिसका खुद देखकर अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं। प्रेम और भक्ति सेवादारों के चमकते चेहरों पर स्पष्ट झलकती है। महाराज जी के कुछ ही क्षणों के दर्शनों से वे आनन्द-विभोर हो जाते हैं और उनके मुख पर सन्तोष तथा आनन्द की अनोखी छटा छा जाती है, जोकि सेवा से ही प्राप्त होती है।

भण्डारों के समय पर लंगर वास्तव में एक अद्वितीय नज़ारा है, क्योंकि मेरे ख़याल से दुनिया में कहीं भी शायद ही मुफ़्त खाना इतने बड़े समुदाय को खिलाया जाता हो। पचास हज़ार स्त्री और पुरुष एक बार में खाने के लिए बैठते हैं, और उन्हें खाना परोसा जाता है। हर खाने के वक्त ऐसी कई पंगतें बैठती हैं, क्योंकि भण्डारों पर लाखों लोग यहाँ इकट्ठे होते हैं। इतने लोगों के खाना खा लेने के बाद भी लंगर की सफाई देखते ही बनती है।

सभी जानते हैं कि भण्डारों के समय आनेवाली संगत हर साल बढ़ती जा रही है। ख़ास कर भण्डारे के दिन बाहर से चार से पाँच लाख या शायद इससे भी ज़्यादा लोग डेरे में आते हैं। आने वाली संगत की संख्या के बारे में पहले से जो भी अनुमान लगाये जाते हैं उससे कहीं अधिक संगत आ जाती है। ज़ाहिर है कि लंगर में खाने वालों की संख्या भी इसी तरह बढ़ जाती है, और आशा से कहीं ज़्यादा होती है। परन्तु लंगर के भण्डार कभी खाली नहीं हुए और किसी भी दिन खाने की कमी महसूस नहीं हुई। ऐसी है सन्तों की दया-मेहर।

महाराज सावनसिंह चेरिटेबल अस्पताल, ब्यास

जब महाराज सावनसिंह चेरिटेबल अस्पताल ब्यास के निर्माण की योजना बनाई जा रही थी, इसकी लागत का अनुमान तीन करोड़ रुपये के

करीब किया गया था। डेरे के पास उस समय इतनी पूँजी नहीं थी, इसलिये डेरे के अधिकारियों का चिन्तित होना स्वाभाविक था। उन्होंने महाराज जी से पूछा कि क्या डेरा इतनी बड़ी योजना हाथ में लेने की सामर्थ्य रखता है? महाराज जी ने जवाब दिया, "बड़े महाराज जी इसकी भी व्यवस्था कर देंगे, आप देखते जायें।" अब न केवल अस्पताल पूरा बन गया है और इसमें पूरे उपकरण लग गये हैं, बल्कि महाराज जगतसिंह मेडिकल रिलीफ सोसायटी के पास, जोकि अस्पताल चलाती है, कल्पना से कहीं अधिक पूँजी इकट्ठी हो गई है।

एक सत्संगी ने मुझे अस्पताल के बारे में आगे लिखी बात सुनाई। अस्पताल के निर्माण के दौरान, कुछ खास तरह के लोहे के सामान की ज़रूरत पड़ी, जिसकी बाज़ार में कमी थी। इसलिए निर्माण-कार्य में रुकावट आने लगी। यह लोहे का सामान टाटा आयर्न एण्ड स्टील कम्पनी से मिल सकता था। महाराज जी ने उस सत्संगी से कहा कि उसकी टाटा के प्रबन्धकों में से कुछ के साथ जान-पहचान है, सो वह उनसे मिले और ज़रूरत के अनुसार लोहा लेने की कोशिश करे। सत्संगी श्री नवल टाटा के पास गया और अस्पताल की योजना उन्हें समझाई। श्री टाटा ने समझा कि उनकी कम्पनी से कुछ दान माँगा जा रहा है, सो उन्होंने पूछा कि उनसे कितनी रकम की उम्मीद की जा रही है। जब सत्संगी ने स्पष्ट किया कि वह उनसे किसी प्रकार की आर्थिक सहायता के लिये नहीं आया है, बल्कि केवल अपनी लोहे की ज़रूरत जल्दी पूरी करवाने आया है, और वह भी नगद भुगतान पर, तो श्री नवल टाटा आश्चर्यचकित रह गये। वे कहने लगे, "तुम कहते हो तीन करोड़ रुपये की लागत का अस्पताल बन रहा है, फिर भी तुम्हें उसके लिये कोई दान या चंदा नहीं चाहिये? इस बात पर विश्वास नहीं होता। मैं अभी केवल ७० लाख रुपये की लागत का एक अस्पताल बना रहा हूँ। मैं उसके लिए चंदा इकट्ठा कर रहा हूँ, और मुझे रुपया प्राप्त करने में मुश्किल हो रही है।"

टाटा से हमारे अस्पताल के लिए लोहा मिल गया। लेकिन ख़ास बात तो यह है कि महाराज जी ने जो भी योजना हाथ में ली, चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न रही हो, उनकी दया-मेहर से रुपये की कभी कोई कमी नहीं आई, हालाँकि डेरे के लिये आज तक किसी से कभी आर्थिक सहायता के

लिये माँग नहीं की गई। सब रुपया संगत खुद अपनी इच्छा से सेवा में देती है।

कई बार महाराज जी ने भारतीय और विदेशी करोड़पतियों की बड़ी रकम को नम्रतापूर्वक अस्वीकार किया है। महाराज जी की एक विदेश-यात्रा के दौरान एक गैर-सत्संगी अरबपति ने, जोकि विदेश में रहने वाले भारतीय थे, महाराज जी को बिना कोई रकम भरे एक चेक (ब्लैंक चेक) अपने दस्तख़त करके पेश किया और निवेदन किया कि वे चाहे जो रकम चेक में भर लें और उसे अस्पताल के लिए उनकी ओर से भेंट के रूप में स्वीकार कर लें। लेकिन महाराज जी ने बड़ी नम्रता से चेक लेना अस्वीकार कर दिया।

महाराज जी की डायरी से कुछ अंश—पिता की मृत्यु

आज महाराज जी की एक पुरानी डायरी मुझे मिली जिसमें उनके पिता के इस दुनिया से जाने के सम्बन्ध में उनके हाथ से कुछ लिखा है। उनमें से कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं :

जुलाई ७, १९५६

पिता जी ने अपनी वसीयत बनाई, जिसमें सिकन्दरपुर की ज़मीन कुक्कू और राणा को तथा दरबी रसूलपुर की हरजीत को दी है। रुपये १००० सरवन (एक पुराना नौकर) को उसकी सेवाओं के लिए दिये हैं।

उन्होंने बेजी का हाथ मेरे हाथ में थमा दिया।

महाराज जी मुझे इस विश्वास को निभाने के योग्य बनायें।

वे इस शरीर को छोड़ने के लिए बहुत उत्सुक हैं।

जुलाई ९

पिताजी की हालत काफ़ी गम्भीर है।

जुलाई ११

ऐसी घटनाएँ हो रही हैं जिनका सामना करना सुखदायी नहीं है। भुआ रक्खी का रात को २.३० बजे देहावसान हो गया।

जुलाई १७

साधूसिंह ने, जिसने मेरे खिलाफ़ कुछ साल पहले दीवानी दावा दायर किया था, माफ़ी माँग ली है। मुझे तो उससे कभी कोई गिला था ही नहीं।

अगस्त ५

पिताजी बहुत शान्त हैं। वे कहते हैं कि महाराज जी हमेशा उनके साथ हैं; और वे बहुत खुश हैं।

अगस्त ८

पिताजी ने मुझसे उनके बाद परिवार की देखभाल करने को कहा।

अगस्त १४

पिताजी ने मुझे बुलाया और पूछा, "सकराँत में कितने दिन बाकी हैं?" वे उस दिन जाने के लिए तैयार मालूम होते हैं।

अगस्त १५

पिताजी ने पासपोर्ट माँगा। वे कहते हैं कि वे जाने के लिए तैयार हैं।

[मैंने महाराज जी से इसका मतलब पूछा, उन्होंने बताया, "मेरे पिताजी ने मुझसे मुस्कराते हुए कहा कि बड़े महाराज जी (अन्दर) कहते हैं, तुम्हें चरन से पासपोर्ट माँगना होगा, और उसके बाद ही मैं तुम्हें वीसा दूँगा।"]

अगस्त १६

मैं सकराँत के सत्संग के बाद ११ बजे मोगा के लिए रवाना हुआ, और ६ बजे शाम को वापस आ गया। पिताजी की मृत्यु मेरी गैर-मौजूदगी में १२.४५ दोपहर के वक्त हो गई।

अगस्त १७

सुबह पिताजी का दाह-संस्कार हुआ। मैंने संस्कार के बाद सत्संग किया।

यह पढ़ने पर मुझे और अधिक जानने की बड़ी इच्छा हुई, इसलिये मैंने महाराज जी से पूछा कि जब उन्हें मालूम था कि उनके पिताजी शरीर छोड़ने

वाले हैं तो फिर वे उन्हें छोड़कर मोगा क्यों गये ? महाराज जी ने जवाब दिया, "बेजी का मेरे पिताजी से बहुत मोह था। लेकिन मेरे पिताजी के सारे सांसारिक बन्धन छूट चुके थे और उनका ध्यान अन्दर लगा हुआ था। इसलिये मैंने सोचा कि अगर बेजी उनकी मृत्यु के समय उनके पास रहे तो परिवार की कोई छोटी-सी बात करके कहीं उनका ध्यान बाहर की ओर न खींच लें।

"और फिर, उस दिन सुबह के अख़बार में मैंने पढ़ा कि उनके भाई का देहान्त मोगा में हो गया था, सो मुझे उन्हें बाहर ले जाने का कारण मिल गया। मैंने सुझाव रखा, 'अफ़सोस ज़ाहिर करने के लिए हमें परिवारजनों से मिल आना चाहिये, इसमें कुछ ही घण्टे लगेंगे'। बेजी मान गईं, लेकिन मुझे ही साथ जाना पड़ा, क्योंकि वे किसी और के साथ जाने को तैयार न होतीं।"

—

बच्चों के नाम रखना

इससे मुझे महाराज जी के बारे में एक दिलचस्प बात याद आयी, जो प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल ने सुनायी थी। उन्होंने कहा था कि सन्तों को मालूम होता है कि क्या होने वाला है, लेकिन वे अपनी नम्रता के कारण कुछ बताते नहीं। महाराज जी की पहली सन्तान, एक कन्या, बड़े महाराज जी के समय में ही पैदा हो गई थी। महाराज जी उस समय अमृतसर में बड़े महाराज जी के पास थे, जोकि वहाँ अपना इलाज करवाने गये हुए थे। वहीं पिसावा से राव साहिब (महाराज जी के ससुर) का तार आया कि 'हरजीत को पुत्री हुई है।'

बीबी लाजो ने, जो उस समय बड़े महाराज जी की सेवा में थी, लड़की होने पर निराशा ज़ाहिर की, परन्तु बड़े महाराज जी ने कहा, "फ़िक्र मत करो, आगे लड़के भी होंगे।"

यह बात २४ अक्तूबर, १९४७ की है। इसके बाद अप्रेल में बड़े महाराज जी ने चोला छोड़ दिया और सरदार बहादुर जी गद्दी पर आये। बेजी महाराज जी की पुत्री और पत्नी को साथ लेकर सरदार बहादुर जी के पास आशीर्वाद लेने आईं और उनसे बच्ची का नाम रखने का निवेदन किया। लेकिन सरदार बहादुर जी सिर्फ मुस्करा दिये और बोले, "माता और

पिता से कहो कि नाम रखें, वे महीनों से नाम इकट्ठे कर रहे हैं।" बेजी सिरसा आ गईं और सरदार बहादुर जी का सन्देश महाराज जी को दे दिया।

महाराज जी उस समय अपनी बहनों के साथ रसोईघर में खाना खा रहे थे। उन्होंने जवाब दिया, "ठीक है, हम सब इस बारे में चर्चा करें और बच्ची का नाम रख दें।" बेजी ने कहा कि नामकरण रीति-रिवाज के मुताबिक किया जाना चाहिए। महाराज जी ने उत्तर दिया, "सरदार बहादुर जी का हुक्म ही हमारे लिए नामकरण का रीति-रिवाज है।" इस प्रकार नवजात कन्या का नाम निर्मलजीत रखा गया।

फिर महाराज जी ने मज़ाक करते हुए कहा, "इस वक्त हम सब यहाँ मौजूद हैं, इसलिये आगे होने वाले दोनों लड़कों के नाम भी रख ही लें।"

बेजी आश्चर्य में पड़ गईं, पूछा, "तुम्हें यह कैसे मालूम ?"

महाराज जी ने जवाब दिया, "बड़े महाराज जी पहले ही यह बात बता चुके हैं।"

सो महाराज जी ने उनका नाम ज़सबीर और रनबीर रखा, और कहा, "हम उन्हें 'कुक्कू' और 'राणा' कहकर पुकारेंगे।" जैसा कि सबको मालूम है, महाराज जी के दो पुत्र हैं और वे कुक्कू और राणा कहलाते हैं।

इस घटना से यह भी प्रकट होता है कि महाराज जी शुरू से ही किसी रीति-रिवाज या प्रथा में विश्वास नहीं करते हैं।

बड़े महाराज जी की बीमारी

एक बार बड़े महाराज जी की चर्चा करते हुए महाराज जी ने हमसे कहा, "गर्मियों की बात है, एक दिन सिकन्दरपुर में मेरे पिताजी के नाम डलहौज़ी से तार आया कि बड़े महाराज जी सख्त बीमार हैं और वे फौरन वहाँ पहुँचे। मेरे पिताजी सिरसा आये ताकि वहाँ से वे रेल पकड़ें और साथ ही मुझे बता दें कि वे अचानक डलहौजी क्यों जा रहे हैं।"

बड़े महाराज जी की सख़्त बीमारी का समाचार सुनकर महाराज जी बहुत परेशान हो गये और बोले, "मैं भी आपके साथ चलूँगा।" परन्तु उनके पिताजी ने उन्हें मना कर दिया और कहा, "तुम्हें नहीं बुलाया है, इसलिए मैं तुम्हें नहीं ले जा सकता।"

इस पर महाराज जी की आँखों से आँसू बहने लगे। पिताजी ने उन्हें धीरज बँधाते हुए कहा, "मुझे जाने दो, मैं बड़े महाराज जी को बता दूँगा कि तुम आना चाहते हो और अगर वे मंज़ूरी देंगे, तो मैं तुम्हें खबर दे दूँगा।"

सो डलहौजी पहुँचने पर जब बड़े महाराज जी को महाराज जी के पिता ने बताया कि चरन बहुत परेशान थे और वहाँ आने की इजाज़त माँग रहे थे, तो बड़े महाराज जी ने अपने सेक्रेटरी द्वारा पत्र लिखवाया कि अब उनकी तबियत काफ़ी ठीक है और जल्दी ही बिलकुल अच्छे हो जायेंगे। और साथ ही यह भी लिखा कि भविष्य में यदि ऐसा कोई मौका आया तो वे अवश्य महाराज जी को बुला लेंगे।

अक्तूबर १९४७ में बड़े महाराज जी बहुत बीमार हो गये और इलाज के लिए उन्हें अमृतसर सत्संग-घर ले जाया गया। उन्होंने लाला मुन्शीराम से कहा कि चरन को आने के लिये कहला दिया जाये। जैसे ही महाराज जी को यह सन्देश मिला, उन्होंने अपने पास के सारे मुकद्दमे अपने एक सहयोगी को दे दिये और अगले दिन सुबह ब्यास के लिए रवाना हो गये, और वहाँ से सीधे अमृतसर चले गये।

महाराज जी ने हमें बताया, "मुझे बड़े महाराज जी के पास बीस दिन रहने का मौका मिला। जब मैं वहाँ था, हिसार के डिप्टी कमिश्नर का एक पत्र मेरे पास आया, जिसमें लिखा था कि मेरा नाम ज्यूडिशियल सर्विस (न्यायिक सेवा) के लिए आगे भेज दिया गया है। मैं यह पत्र महाराज जी के पास ले गया। वे उस समय लेटे हुए थे, पर एकदम उठकर बैठ गये और मुझसे बड़े प्यार से बोले, 'वकालत और ज्यूडिशयल सर्विस तुम्हारे लिए नहीं हैं—मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता था कि तुम्हें कचहरी का अनुभव हो जाये। अब तुम्हारे पिता की तबियत ठीक नहीं रहती है और वे खेतों का इन्तिज़ाम बराबर नहीं देख पाते हैं और तुम्हारा छोटा भाई फौज में है, इसलिए तुम्हें वकालत छोड़ देनी चाहिए और अपने पिता के साथ खेती का काम देखना चाहिये, ताकि उनका बोझ हलका हो सके।' और उन्होंने अगले दिन ही मुझे सिरसा भेज दिया।"

इसके बाद महाराज जी खेत पर रहने चले गये और अपने पिता की मदद करने लगे।

दिसम्बर के तीसरे हफ्ते में महाराज जी के पास डेरे से तार आया कि वे

देहली डा. स्मिथ को लेने जायें और अपने साथ डेरे ले आयें। डा. स्मिथ जिनेवा से बड़े महाराज जी का इलाज करने के लिये भारत आ रहे थे।

महाराज जी उस वक्त देहली गये, जहाँ उन्हें मालूम पड़ा कि श्री मेहता डा. स्मिथ को पहले ही ब्यास ले गये हैं। सो वे भी फौरन डेरा आ गये। और फिर बड़े महाराज जी ने अपने वादे के अनुसार महाराज जी को तबसे अन्त समय तक अपने पास ही रखा। यह समय तीन महीने से कुछ ज़्यादा का था (दिसम्बर २५ से अप्रेल २ तक)।

सरदार बहादुर जी की सलाह

महाराज जी ने कहा कि वे एक बार सरदार बहादुर जी के समय में किसी पारिवारिक समस्या के बारे में बहुत परेशान हो गये थे और उन्होंने कोई सख़्त फैसला कर लिया था। सरदार बहादुर जी उस समय देहली में सत्संग के लिये गये हुए थे, और नामदान दे रहे थे। उन्हें किसी तरह इस बात का पता चल गया। महाराज जी और उनके पिताजी भी इस दौरे में उनके साथ थे।

जैसा कि सब जानते हैं, सरदार बहादुर जी बहुत कम बोलते थे। उन्होंने महाराज जी से, जोकि वहीं पास में खड़े थे, कहा कि चौधरी, तुम्हें जाकर ऐसे-ऐसे करना चाहिये। यह बात महाराज जी द्वारा किये हुए फैसले से बिलकुल उलट थी और उन्हें अपना फैसला बदलना बड़ा मुश्किल लग रहा था। महाराज जी को इतना गहरा आश्चर्य हुआ कि वे एकदम बिना हिले-डुले खड़े रह गये, कुछ भी कह न सके, और सरदार बहादुर जी नीचे नामदान के लिए आये हुए लोगों की छँटनी करने चले गये।

आधे घण्टे बाद सरदार बहादुर जी वापस आये तो उन्होंने महाराज जी को वहीं, अपने आपमें खोये हुए, खड़ा पाया। सरदार बहादुर जी ने फिर उनकी ओर देखा, और उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा, "इस जिन्दगी में ऐसा क्या है जिसे हम ज़बान को दाँतों तले दबाकर सहन नहीं कर सकते ?"

महाराज जी ने हमसे कहा, "मैं अपना सिर झुकाकर चुपचाप उनका हुक्म मानने चला गया।" उन्होंने फिर कहा, "सरदार बहादुर जी की सलाह

कई मौकों पर मेरे लिये बहुत उपयोगी और सहायतापूर्ण रही है।"

एक पूर्ण गुरु के पूर्ण शिष्य!

गद्दीनशीनी के समय संगत से कहे कुछ शब्द

मुझे डेरे में प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल के पास जाने का बड़ा शौक था, और उनसे महाराज जी के बारे में बड़े प्रेम और चाव से बातें सुना करती थी। प्रोफ़ेसर साहिब बड़े महाराज जी के बहुत निकट थे और उन्होंने महाराज जी को बच्चे से बड़े होते देखा था। और बड़े महाराज जी ने महाराज जी को सतगुरु के पद के लिए शुरू से कैसे तैयार किया, यह भी वे जानते थे। महाराज जी उनके विद्यार्थी भी रह चुके थे।

एक दिन प्रोफ़ेसर साहिब ने हमको महाराज जी द्वारा ४ नवम्बर, १९५१ को गद्दीनशीनी के समय दिये गये भाषण के बारे में बताया। गद्दीनशीनी के एक दिन पहले प्रोफ़ेसर साहिब महाराज जी के पास बैठे हुए थे, उस समय बाबू गुलाबसिंह (एक पुराने सत्संगी) महाराज जी के पास आये और बोले, "कल आपको संगत से कुछ कहना पड़ेगा, इसलिए मैंने आपके लिए यह भाषण लिख दिया है, जिसे आप उन्हें पढ़कर सुना दें।"

प्रोफेसर साहिब ने बताया, "महाराज जी ने उन्हें धन्यवाद दिया और कागज़ रख लिया। लेकिन मैं जानता था कि महाराज जी कभी भी भाषण नहीं पढ़ेंगे। इसलिए मैंने पूछा, 'आपने संगत से क्या कहने का सोचा है?' वे बोले, 'प्रोफ़ेसर साहिब, मेरा तो दिल टूट रहा है, मुझे नहीं मालूम यह अपने आपको कैसे ज़ाहिर करेगा।'

"फिर पगड़ी की रस्म के वक्त महाराज जी ने बिना कोई नोट या कागज़ हाथ में लिए, मौखिक भाषण दिया। उनकी आँखें गीली थीं और गला रुँधा हुआ था और वे करीब-करीब सिसक रहे थे।"

उनके भाषण का सीधा अनुवाद नीचे दिया जा रहा है। प्रेम और नम्रता से भरे उनके भाव-भीने, मर्मस्पर्शी शब्द सुनकर वहाँ कई लोगों की आँखों में सहज ही आँसू उमड़ आये :

> "हुजूर महाराज जी के प्रति मेरा प्यार, सरदार बहादुर महाराज जी का हुक्म और संगत का प्रेम मुझे मजबूर करता है

कि डेरे और संगत की सेवा करने का जो हुक्म सरदार बहादुर जी मुझे दे गये हैं, उसका पालन करने की पूरी-पूरी कोशिश करूँ। लेकिन जब मैं अपने आपको और अपनी कमज़ोरियों को देखता हूँ , तो समझ में नहीं आता और दिल घबराता है कि उनके इतने बड़े हुक्म का पालन कैसे करूँ। इसी सोच में इतने दिन मैं संगत के दर्शन न कर सका, जिसके लिए मैं संगत से माफ़ी माँगता हूँ।

"मैं संगत से साफ़-साफ़ अर्ज़ कर देना चाहता हूँ कि मैं किसी प्रकार की रूहानियत का दावा नहीं करता, बल्कि जो गुण एक अच्छे सत्संगी में होने चाहियें उनमें से कोई भी गुण मुझे अपने में दिखाई नहीं देता।

"हुज़ूर महाराज जी के आख़िरी दिनों में उनके चरणों में रहकर उनकी सेवा करने का सौभाग्य तो मुझे ज़रूर मिला है, लेकिन सरदार बहादुर जी ने तो मुझे यह अवसर भी नहीं दिया। मैं इतना बदकिस्मत हूँ कि उनके संस्कार के बाद पहुँचा और उनके अन्तिम दर्शन भी नहीं कर सका।

"यहाँ आकर उनका हुक्म सुनकर मैं हैरान हो गया। उनके इस हुक्म का पता मुझे उन भाग्यशाली प्रेमी सत्संगियों से चला जोकि उनके निकट मौजूद थे। मुझे इसके सिवाय कोई चारा नज़र नहीं आता कि उनके हुक्म के अनुसार साध-संगत और डेरे की सेवा करूँ। मैं संगत से विनती करता हूँ कि मुझे अपना एक छोटा अज़ीज़ समझकर, छोटा भाई समझकर, संगत अपनी और डेरे की सेवा करने का मौका दे। लेकिन अगर संगत मुझे किसी और दृष्टि से देखने की कोशिश करेगी तो मैं समझूँगा कि संगत अपनी तथा डेरे की सेवा करने का मुझे मौका नहीं देना चाहती और यह मेरे साथ बड़ा अन्याय होगा।

"सरदार बहादुर जी के जाने का हम सबको बड़ा सदमा पहुँचा है। अभी हम हुज़ूर महाराज जी के वियोग के दुःख को ही न भूले थे कि सरदार बहादुर जी भी हमें छोड़ गये हैं। उन जैसी विभूतियाँ संसार में बहुत कम आती हैं। कोई बिरला महान

योगीश्वर ही उनके जैसी पवित्र बेदाग ज़िन्दगी गुज़ार सकता है।

"इस दुःख के समय में हमें घबराना नहीं चाहिए, बल्कि सुरत-शब्द का जो मार्ग वे हमें बता गये हैं, उस पर दृढ़तापूर्वक चलने की कोशिश करनी चाहिए। हुज़ूर सच्चे पातशाह फ़रमाया करते थे कि वे सबके अंग-संग हैं। उनका फ़रमान सिर्फ़ मेरे लिए ही नहीं, बल्कि सारी संगत के लिये है। डेरे के सभी प्रेमी सेवादारों से मेरी विनती है कि जो भी सेवा वे किसी के सुपुर्द कर गये हैं, उसे वह पूरी तरह निभाये।

"संगत आज सरदार बहादुर जी की याद में दूर-दूर से इकट्ठी हुई है। यहाँ आकर दर्शन देने के लिए मैं सारी संगत का शुक्रिया अदा करता हूँ।

"मैंने कल भी डेरे के कुछ प्रेमी सत्संगियों को बुलाकर अर्ज़ की थी और आज भी सारी संगत से यही अर्ज़ करता हूँ कि मैं अपने आपको इस योग्य नहीं समझता कि इतने श्रेष्ठ महापुरुषों की पगड़ी अपने सिर पर बाँध सकूँ। लेकिन हुज़ूर महाराज जी के प्रति संगत के विश्वास और प्रेम से मजबूर होकर मैंने अपने आपको संगत के हवाले कर दिया है। जो संगत उचित समझे, कर सकती है।"

महाराज जी की दादी

अपनी दादी (बड़े महाराज जी की पत्नी) के बारे में बात करते हुए महाराज जी ने कहा, "उनको मुझसे बड़ा प्यार था।" महाराज जी जब सिरसा में वकालत करते थे उस समय करीब दो साल तक अकेले ही रहे, तब उनकी दादी अक्सर उनके पास रहने आ जाती थीं और महीनों रहती थीं।

महाराज जी जो भी फ़ीस कमाकर लाते उसे रोज़ अपनी दादी को दे देते थे। और वे उन रुपयों को अपनी चुन्नी के कोने में बाँध लेती थीं। कुछ समय बाद सारी चुन्नी महाराज जी के दिये हुए रुपयों से भर गई। उन्होंने बड़े सहज भाव से कहा, "बेटा, मेरी चुन्नी तो पूरी भर गई है, अब मैं तुम्हारे रुपये कहाँ रखूँगी?"

सदस्य अफ़सोस ज़ाहिर करने आये। राव साहिब भी आये और उन्होंने महाराज जी का तार बड़े महाराज जी को दिखाया। उसे पढ़कर उन्होंने महाराज जी को बुलाया और पूछा, "क्या वह मुझसे या तुम्हारे पिता से ज़्यादा तुम्हारे नज़दीक थीं ?" महाराज जी चुप रहे। फिर बड़े महाराज जी ने कहा, "जो भी यहाँ आया है, उसे जाना है। वह बाबाजी की आत्मा थी, वे उसे ले गये हैं। तुम उसके बारे में फ़िक्र क्यों करते हो ? तुम्हारी शादी मुल्तवी नहीं हो सकती।" और उनकी शादी जिस दिन के लिये तय की गई थी उसी दिन हुई।

* * *

महाराज जी जब अपनी दादी के बारे में ये सब बातें सुना रहे थे तब देहली के श्री रामनाथ मेहता भी वहीं बैठे थे। उन्होंने बताया कि जब माताजी ने चोला छोड़ा तब वे डेरे में ही थे। वे अपनी पत्नी और बच्चों के साथ एक सप्ताह के लिए डेरे आये हुये थे। रोज़ सुबह वे बड़े महाराज जी के पास मत्था टेकने जाते थे और साथ ही माताजी से मिलने भी जाते थे जोकि उस समय अस्वस्थ थीं। उन्होंने कहा कि मृत्यु के तीन दिन पहले बड़े महाराज जी से माताजी ने विनती की, "अब मुझे ले चलिये।" परन्तु बड़े महाराज जी ने जवाब दिया, "बाबाजी से कहो।"

इस पर माताजी थोड़ी-सी नाराज़ होकर बोलीं, "बाबाजी कहते हैं कि मैं आपसे कहूँ।"

यह सुनकर बड़े महाराज जी मुस्करा दिये और बोले, "क्या जल्दी है ? पहले अपने पोते की शादी तो देख लो।"

माताजी ने जवाब दिया, "मैं जाना चाहती हूँ। मेरे सारे लड़के कमा रहे हैं, और सारा परिवार खुश है, फल-फूल रहा है। मैं अब जाना चाहती हूँ , मुझे अब किसी में कोई दिलचस्पी नहीं रही है।"

बड़े महाराज जी ने जवाब दिया, "ठीक है, अपना ख़याल अन्दर रखो और बाबाजी का ध्यान करो।"

अगले दिन जब मेहता साहिब बड़े महाराज जी के साथ उनसे मिलने गये, तब माताजी का ध्यान अन्दर लगा हुआ था। जो डाक्टर उनका इलाज कर रहा था उसने विदेश से उनके लिए इंजेक्शन मँगवाई थीं और उसे पूरी उम्मीद थी कि इनसे वे ठीक हो जायेंगी। दवाइयाँ उसी समय आई थीं। खुले

हुए डब्बे को डाक्टर ने बड़े महाराज जी के सामने प्रसाद करने के लिए पेश किया, क्योंकि वह इंजेक्शन उसी समय लगाना चाहता था। बड़े महाराज जी ने उन्हें प्रसाद किया और डाक्टर को इंजेक्शन लगाने की इजाज़त दे दी।

परन्तु मेहता साहिब दुबिधा में पड़ गये। उन्होंने महाराज जी से सत्संग में जाते हुए पूछा, "आपने ऐसे समय डाक्टर को उन्हें सुई चुभाने की इजाज़त क्यों दी ?"

बड़े महाराज जी ने जवाब दिया, "चुप रहो। मालिक को अपना काम करने दो और डाक्टर को अपना। तुम्हारी माताजी को कुछ भी महसूस नहीं होगा। अगर मैं डाक्टर को इंजेक्शन लगाने से मना कर दूँ, तो उनके गुज़र जाने के बाद वह यही सोचेगा कि अगर इंजेक्शन लगाने की इजाज़त दे दी जाती तो वे शायद ठीक हो जातीं।"

अगले दिन मेहता साहिब रावलपिंडी लौटने से पहले बड़े महाराज जी से इजाज़त लेने लगे। परन्तु बड़े महाराज जी बोले, "पहले मेरा एक काम करते जाओ, लेकिन किसी को बताना मत। कल तुम्हारी माताजी दोपहर ३.३० बजे शरीर छोड़ देंगी। तुम लाहौर जाकर मोतिया और दूसरे सफ़ेद फूल और हार उनके दाह-संस्कार के लिये ले आओ।"

मेहता साहिब अपनी पत्नी और बच्चों को लाहौर ले गये। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "तुम बच्चों के साथ रावलपिण्डी चली जाओ। मैं यहाँ बड़े महाराज जी का कुछ काम करके जल्दी ही आ जाऊँगा।"

अपनी पत्नी को स्टेशन पर छोड़कर, उन्होंने बड़े महाराज जी के हुक्म के अनुसार फूल इत्यादि खरीदे और उन्हें टोकरी में रखकर अच्छी तरह ढक दिया।

मेहता साहिब ने मुझसे कहा कि वे तब नये-नये सत्संगी बने थे, उन्हें नाम लिये कुछ ही साल हुए थे। वे इसी सोच में रहे कि बड़े महाराज जी ने जो कुछ कहा है वह होगा या नहीं। वे अपने साथ फूलों की टोकरी लेकर शाम की गाड़ी से डेरे पहुँचे, स्टेशन पर उनके लिए ताँगा खड़ा था। जब वे डेरे पहुँचे तो उन्हें मालूम हुआ कि माताजी की ३.३० बजे मृत्यु हो चुकी थी। मेहता साहिब आश्चर्य-चकित रह गये और इस घटना के फलस्वरूप उन्हें अपने सतगुरु पर अटल विश्वास हो गया। उन्होंने फूल बड़े महाराज जी

के पास पहुँचाये और श्रद्धापूर्वक मत्था टेका। माताजी का दाह-संस्कार उसी शाम को कर दिया गया।

बड़े महाराज जी के अन्तिम दिनों की एक वार्ता

बड़े महाराज जी के अन्तिम दिनों की बात करते हुए महाराज जी ने बताया कि उन्हें सिकन्दरपुर से दिसम्बर १९४७ में बड़े महाराज जी ने बुला लिया था और बीमारी में वे आख़िर तक उनके पास ही रहे। उस समय महाराज जी के छोटे भाई केप्टन पी. एस. ग्रेवाल (शोती) फौज में नौकरी कर रहे थे। बड़े महाराज जी की तबियत का हाल देखते हुए महाराज जी ने कप्तान साहिब को जनवरी में लिखा, "बड़े महाराज जी हर रोज़ कमज़ोर होते जा रहे हैं। तुम्हें छुट्टी लेकर आ जाना चाहिए, नहीं तो सारी ज़िन्दगी इस बात का पछतावा रह जायेगा।" इससे मालूम होता है कि महाराज जी यह समझ चुके थे कि बड़े महाराज जी जल्दी ही परलोक सिधारने वाले हैं।

उनके भ्राता ने जवाब में लिखा कि वे पूरी कोशिश कर रहे हैं, लेकिन अधिकारी उन्हें छुट्टी देने से इंकार कर रहे हैं, फिर भी उनकी कोशिश जारी है।

महाराज जी ने जवाब में लिखा, "अगर तुम्हें फौज से इस्तीफ़ा देने के लिए अपना पैर तोड़ना पड़े तो भी यह सौदा महँगा नहीं होगा। ये दिन तो उनके पास रहकर सेवा करने के हैं। इसलिए आ ही जाओ।" किसी न किसी तरह उनके भाई ने छुट्टी ले ही ली और बड़े महाराज जी के महाप्रयाण के दस दिन पहले आ गये। महाराज जी ने कहा, "उससे मुझे बड़ा नैतिक बल मिला।"

डा. स्मिथ जिनेवा से बड़े महाराज जी के शरीर त्यागने के कुछ महीने पहले, उनकी अन्तिम बीमारी में इलाज करने के लिये आये थे। महाराज जी ने हमसे कहा, "एक दिन बड़े महाराज जी ने मुझे बुलाया और कहा, 'मेरे जाने के बाद तुम डा. स्मिथ का ख़याल रखना, क्योंकि बाकी सब लोग उनके बारे में भूल जायेंगे। इसलिए तुम उन्हें जहाँ वे जाना चाहें ले जाना, जो कुछ भी वे देखना चाहें दिखाना और जब तक वे अपने देश के लिये रवाना न हों,

उनके साथ रहना। उन्होंने मेरी सेवा प्यार और लगन के साथ की है। मैं उनसे बहुत खुश हूँ।'

बड़े महाराज जी के देहावसान के बाद, महाराज जी ने डा. स्मिथ से पूछा कि वे कहाँ-कहाँ जाना चाहेंगे। डा. स्मिथ शिमला और आगरा जाना चाहते थे। सो महाराज जी खुद उन्हें इन स्थानों पर ले गये। आगरा में वे दयालबाग के अतिथि-गृह में ठहरे और वहाँ के उस समय के गुरु मेहता साहिब जी महाराज से भी मिले। वहाँ के व्यवस्थापकों ने उनकी बड़ी अच्छी तरह देखभाल की। महाराज जी डा. स्मिथ को स्वामीबाग और खासकर स्वामीजी की समाधि दिखाने भी ले गये। महाराज जी ने कहा, "मुझे अभी भी डा. स्मिथ की टिप्पणी याद है, 'स्वामीजी के उपदेशों को ध्यान में रखते हुए समाधि बनाने को कैसे सही कहा जा सकता है?' मैंने कोई जवाब नहीं दिया। आगरा के अन्य ऐतिहासिक स्थल भी मैंने उनको दिखाये।"

फिर वे डाक्टर स्मिथ को देहली ले गये, जहाँ महाराज जी ने उनको मेडन्स होटल में ठहराया। महाराज जी ने स्वयं इस यात्रा का सारा खर्च उठाया और डा. स्मिथ को कहीं भी कुछ खर्च नहीं करने दिया। फिर उन्होंने डा. स्मिथ को बम्बई के लिये रवाना किया जहाँ से उन्हें जिनेवा के लिये हवाई जहाज़ पकड़ना था। महाराज जी ने बम्बई के सत्संगियों को उनके आने की खबर दे दी थी और वहाँ भी उनकी बड़ी अच्छी तरह देखभाल की गई। डा. स्मिथ ने महाराज जी को धन्यवाद देते हुए अपने पत्र में लिखा कि हर जगह सत्संगियों के प्रेम और भक्ति ने उन्हें चकित कर दिया है। उन्होंने लिखा कि सत्संगियों ने बड़े महाराज जी के स्वस्थ न होने पर भी उनकी इतनी अच्छी तरह देखभाल की, अगर कहीं बड़े महाराज जी स्वस्थ हो जाते तो "मुझे विश्वास है सत्संगी मुझे सोने से तोलते।"

इस घटना से पता चलता है कि महाराज जी अपने सतगुरु के हुक्म का किस पूर्णता और लगन के साथ पालन करते थे। यहाँ तक कि जब डा. स्मिथ कई साल बाद (महाराज जी के गद्दीनशीन होने पर) हिन्दुस्तान आये तो महाराज जी ने उनको अपनी खरीददारी तक के लिये कुछ भी खर्च नहीं करने दिया। मुझे याद है, डा. स्मिथ महाराज जी के साथ इन्दौर सत्संग के दौरे पर आये थे। इन्दौर में जब डा. स्मिथ अपनी पसन्द की कुछ भारतीय

टोपियाँ ले रहे थे तो महाराज जी ने आदेश दिया, "जो भी डा. स्मिथ खरीदें उसका मूल्य उनसे नहीं लिया जाये, मेरे हिसाब में लिख दिया जाये।"

* * *

ऊपर लिखी घटना से सम्बन्धित एक और वार्ता है जो महाराज जी ने हमें बताई। बड़े महाराज जी ने अपने जीवन के आख़िरी महीनों में महाराज जी को अपने पास रहने के लिये डेरे बुला लिया था। महाराज जी अपने साथ थोड़े-से ही कपड़े लाये थे, क्योंकि उन्हें मालूम नहीं था कि डेरे में कितने दिन रहना पड़ेगा। एक दिन अपने घर से बड़े महाराज जी के पास जाते समय उनका पाजामा पैर में आकर फट गया। जब बड़े महाराज जी ने उनका पाजामा फटा हुआ देखा तो बोले, "क्या तुम्हारे पास कपड़े नहीं हैं?" महाराज जी चुप रहे।

फिर बड़े महाराज जी ने बीबी रली को बुलाया और कहा, "जाओ, अलमारी में तुमने रुमाल में जो रुपये बाँधकर रखे हैं, उन्हें ले आओ और चरन को दे दो। ये उसके ही रुपये हैं जोकि वह मुझे देता रहा है।" बीबी रली गईं और रुमाल लाकर बड़े महाराज जी को दिया जिसे उन्होंने महाराज जी को दे दिया और कहा कि इन रुपयों से कुछ कपड़े बनवा लें।

महाराज जी ने हमें बताया कि जो भी रुपया बचता था, वे उसे डेरे ले आते थे और बीबी रली के पास बड़े महाराज जी को देने के लिये छोड़ जाते थे, ताकि वह घर-खर्च के काम में आ सके। महाराज जी को यह पता नहीं था कि बड़े महाराज जी इस रुपये को खर्च नहीं करते थे, बल्कि उन ही के लिये रख छोड़ते थे। महाराज जी ने बताया कि यह रुपया डा. स्मिथ को शिमला और आगरा घुमाने में बहुत काम आया। उन्होंने श्री रामचन्द मेहता से उनकी नई शेवरलेट कार माँग ली थी, जिसमें उन्होंने डा. स्मिथ को शिमला, आगरा और देहली घुमाया। महाराज जी डा. स्मिथ को जब बम्बई के हवाई जहाज़ पर बिठाने गये तब तक यह गाड़ी उनके पास रही।

युवा वकील

आज बेजी (महाराज जी की माताजी) ने महाराज जी की युवावस्था का एक बड़ा दिलचस्प वृत्तान्त सुनाया। महाराज जी अभी वकील बने ही थे और

सिरसा में वकालत शुरू की ही थी। उस प्रदेश में वे ही वकालत शुरू करने वाले पहले सिख थे, हालाँकि सिरसा के आसपास काफी सिख आबादी थी। महाराज जी की वकालत के शुरू के दो-तीन दिनों में ही एक वृद्ध पुरुष कचहरी में आया और कुछ अन्य बड़े वकीलों से बोला, "मैं अपना मुकद्दमा उस नौजवान वकील को देना चाहता हूँ जो अभी नया ही आया है—वह कहाँ है ?"

बुजुर्ग वकीलों ने पूछा, "तुम उन्हें क्यों रखना चाहते हो ? उन्होंने तो अभी वकालत शुरू ही की है, उन्हें मुकद्दमा लड़ने का कोई अनुभव नहीं है।" परन्तु वह वृद्ध अपनी बात पर अड़ा रहा, और कहता रहा कि उसे तो वही नौजवान वकील करना है। "वह कितना सुन्दर है", उसने कहा, "कम से कम मेरा मुकद्दमा लड़नेवाला वकील खूबसूरत और रोबीला तो नज़र आयेगा।" उसने यह इसलिए कहा कि महाराज जी कपड़े बहुत सुरुचिपूर्ण पहनते थे और उनका व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। वह मुकद्दमा उन्हें मिला जिसे उन्होंने जीत लिया। इसके बाद वे बड़े लोकप्रिय वकील हो गये और उनकी बड़ी माँग होने लगी।

महाराज जी की विनोदप्रियता

एक दिन मैं बेजी से मिलने गई थी। बातों के सिलसिले में उन्होंने महाराज जी के बारे में एक रोचक बात सुनाई। मुझे तो हमेशा आश्चर्य होता है कि नब्बे साल से अधिक उम्र होने पर भी बेजी की याददाश्त कितनी अच्छी है। उन्होंने कहा, "तुम जानती हो स्वभाव से ही महाराज जी बहुत मज़ाक-पसन्द हैं, और मज़ाक करने में उन्हें मज़ा आता है।" एक बार वे सरदार बहादुर महाराज जी के साथ मोटर में पठानकोट गये थे। वापस आते समय कार में सरदार बहादुर जी, लाला मुन्शीराम और महाराज जी पीछे की सीट पर बैठे थे और भाई शादी अगली सीट पर ड्राइवर के पास थे। रास्ते में महाराज जी ने एक नागा साधु को घोड़े पर जाते हुए देखा, और उसका शिष्य पीछे पैदल चल रहा था। शिष्य घोड़े के साथ नहीं चल पा रहा था, इसलिये उसे करीब-करीब दौड़ना पड़ रहा था। गर्मियों के दिन थे, धूप बड़ी तेज़ थी और सड़क गर्मी से तप रही थी। बेचारे शिष्य के पसीने बह रहे थे और पैर जल रहे थे, क्योंकि उसके पैरों में जूते भी नहीं थे।

यह दृश्य देखकर महाराज जी ने अपने दोनों हाथ जोड़े और मस्तक झुका लिया। सरदार बहादुर जी ने यह देखा और मुस्कराते हुए पूछा, "चौधरी, तुमने ऐसा क्यों किया?" पहले तो महाराज जी चुप रहे, परन्तु सरदार बहादुर जी के फिर से पूछने पर बोले, "मैं मालिक का शुक्र कर रहा था। सच में मैं उसका बहुत अहसानमन्द हूँ, क्योंकि उसे अगर मुझे किसी का शिष्य बनाना ही था तो मुझे आप और बड़े महाराज जी जैसे सतगुरु प्रदान किये। आपकी दया-मेहर से हम अच्छे कपड़े पहनते हैं और आपके साथ मोटर में बैठते हैं। मैं सोच रहा था कि अगर मालिक ने मुझे ऐसे घोड़े पर सवार साधु का शिष्य बना दिया होता तो मेरा क्या हाल होता! मैं तो यह सोचकर भी काँप उठता हूँ।" यह सुनकर सरदार बहादुर जी खिलखिला कर हँस पड़े। कहते हैं कि सरदार बहादुर महाराज जी भी बड़े हास्य-प्रिय थे।

बड़े महाराज जी के अन्तिम दिन

आज महाराज जी ने हमें बड़े महाराज जी के अन्तिम दिनों की एक महत्वपूर्ण घटना सुनाई। एक बड़े प्रेमी सत्संगी, जालन्धर वाले बाबा करमसिंह, डेरे आये। उन्होंने भाई गाँधी (बड़े महाराज जी के एक निजी सेवादार) को सूचित किया कि एक गोपनीय सूत्र से पता चला है कि एक सेवादारनी ने, जो बड़े महाराज जी की सेवा में है, अपने भाई से एक दस्तावेज़ तैयार करवाया है। इस दस्तावेज़ में लिखा है कि उस सेवादारनी की बड़े महाराज जी के प्रति की हुई भक्तिपूर्ण सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप बड़े महाराज जी उसे अमृतसर का सत्संग-घर दे रहे हैं। बाबा करमसिंह ने भाई गाँधी को बताया, "यह दस्तावेज़ टाईप किया हुआ तैयार है। वह उस सेवादारनी के पास है और बड़े महाराज जी के दस्तख़त होने बाकी हैं। कृपया उस पर दस्तख़त मत होने दीजिये।"

महाराज जी उस समय यहीं बड़े महाराज जी की सेवा में थे, सो भाई गाँधी ने उन्हें पूरी बात सुनाई और उनसे कहा कि वे यह सब बड़े महाराज जी को बता दें और उनसे निवेदन करें कि वे दस्तख़त न करें।

महाराज जी ने जवाब दिया, "मैं उनसे ऐसा कैसे कह सकता हूँ? यह उनकी जायदाद है, और अगर वे उसे देना चाहते हैं तो मैं रोकने वाला कौन होता हूँ?" महाराज जी ने कहा, "मैंने सोचा कि अगर यह सचमुच फ़रेब

किया जा रहा है तो कैसे भी इसका पता लगाना चाहिये। और अगर यह फ़रेब है तो इसे रोकना होगा।" उन दिनों सब लोग बड़े महाराज जी की कोठी में ही सोया करते थे। बड़े महाराज जी बीच के कमरे में सोते थे और पास के एक तरफ़ के कमरे में सेवा करनेवाली महिलाएँ सोती थीं। दूसरी ओर महाराज जी के साथ अन्य लोग सोते थे।

रात होते-होते सब लोग बहुत थककर गहरी नींद सो जाते थे। तब महाराज जी जहाँ सेवादार बीबियाँ सो रही थीं वहाँ धीरे से गये और बड़ी आहिस्ता से वह कागज़ उस महिला की जेब से निकाल लाये। उसे पढ़कर महाराज जी को पता चल गया कि जो कुछ भी कहा गया था वह बिलकुल सही था, और उस कागज़ पर अभी बड़े महाराज जी के दस्तख़त होने ही बाकी थे। फिर महाराज जी ने उस कागज़ को धीरे से उस सेवादारनी की जेब में वापस रख दिया।

महाराज जी ने हमसे कहा कि इसके बाद वे बड़े परेशान हो गये, क्योंकि उन्हें इस समस्या का कोई हल नहीं मिल रहा था। एक ही सवाल उनके मन में बार-बार आता रहा, "अगर बड़े महाराज जी इतने वर्षों की सेवा के कारण सच में ही उस सेवादारनी को सत्संग-घर देना चाहते हैं तो मैं इस बारे में पूछने वाला कौन होता हूँ? लेकिन अगर उनके दस्तख़त धोखे से, कोई लम्बी कहानी गढ़कर, कराये जाने वाले हैं, तो फिर किसी कीमत पर भी ऐसा नहीं होने देना चाहिये।" वे इस बारे में बड़े चिन्तित हो गये। इसलिये वे नदी के किनारे सैर करने गये, ताकि वहाँ इस समस्या पर शान्ति से विचार कर सकें, लेकिन उन्हें कोई हल नज़र नहीं आया और वापस आ गये।

वापस आने पर महाराज जी डा. स्मिथ के साथ बड़े महाराज जी के पास गये। उस समय, बिना उनके कुछ कहे ही, बड़े महाराज जी ने अपनी कलम महाराज जी को दे दी, और कहा कि कलम बार-बार उनके तकिये के नीचे से फिसल जाती है और उनकी पीठ पर गड़ती है, जिससे उन्हें तकलीफ़ होती है। बड़े महाराज जी ने कहा, "इसलिये इसे तुम अपने पास रखो। मुझे जब भी कोई दस्तख़त करने की ज़रूरत होगी, तुम्हें बुला लूँगा।" महाराज जी को एकदम बड़ा चैन मिला; उन्होंने कृतज्ञता के साथ चुपचाप अपना सिर

नमाया और सोचा, "कैसे सतगुरु ने मेरे बिना कहे ही मेरी उलझन दूर कर दी।"

* * *

यह कलम हर वक्त महाराज जी के ही पास रहती थी। इस सम्बन्ध में महाराज जी ने हमें एक और बात सुनाई। लाला मुन्शीराम बड़े महाराज जी के सेक्रेटरी थे। वे नम्र होने के साथ ही बड़े बुद्धिमान और चतुर व्यक्ति थे। डेरे के सारे रुपये-पैसे और सम्पत्ति कानूनन बड़े महाराज जी की मिल्कियत थी, और बैंक में डेरे का खाता उनके निजी नाम पर था। बड़े महाराज जी अपनी वसीयत बना चुके थे और सरदार बहादुर जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। लाला मुन्शीराम ने सोचा कि बड़े महाराज जी के बाद डेरे का काफ़ी खर्चा वसीयतनामे की प्रमाणित प्रतिलिपि लेने में और उसकी फीस आदि देने में हो जायेगा; और उसके बाद ही बैंक के खाते सरदार बहादुर जी के नाम पर हो पायेंगे। इस विधि में काफ़ी समय लग सकता था। इसलिये उन्होंने सोचा कि बड़े महाराज जी, सरदार बहादुर जी और उनके खुद के नाम पर बैंक में एक संयुक्त खाता खोलकर कुछ रुपया उसमें जमा करवा दिया जाये।

इस ख़याल से उन्होंने एक चेक बनाया और बड़े महाराज जी से उस पर दस्तख़त करने को कहा। बड़े महाराज जी दस्तख़त के लिये मना करके लाला मुन्शीराम का दिल नहीं दुखाना चाहते थे, और महाराज जी उस समय वहाँ पर थे नहीं, वे नाश्ता करने गये हुए थे। इसलिये उन्होंने चेक पर अपने दस्तख़त हमेशा से कुछ अलग तरह से कर दिये। लाला मुन्शीराम चेक को बैंक में ले गये, पर क्योंकि दस्तख़त ठीक नहीं थे मैनेजर ने चेक का भुगतान करने से इंकार कर दिया और कहा, "मुझे अफ़सोस है, दस्तख़त में फ़र्क है और रकम बहुत बड़ी है, इसलिये क्या आप दूसरा चेक ले आयेंगे?"

लाला मुन्शीराम दोपहर को भोजन के समय डेरे लौट आये, लेकिन बहुत चिन्तित थे। उन्होंने महाराज जी को बैंक का पूरा वृत्तान्त सुनाया और कहा, "बड़े महाराज जी के हाथ काँपने लगे हैं और वे अपने सही दस्तख़त करने में अब असमर्थ हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ?"

महाराज जी ने केवल इतना ही कहा, "आप मुझे चेक दे दें, मैं उस पर फिर से दस्तख़त करवा दूँगा।"

महाराज जी चेक लेकर बड़े महाराज जी के पास गये, उनको कलम पेश की और रुपये के हस्तांतरण के बारे में बताया। बड़े महाराज जी ने चेक पर अपने हमेशा जैसे दस्तख़त कर दिये। तब महाराज जी ने मुस्कराते हुए लाला मुन्शीराम को चेक दे दिया।

लाला मुन्शीराम

एक बार महाराज जी ने लाला मुन्शीराम की संस्था के प्रति वफ़ादारी और डेरे के हिसाब और रुपये-पैसे की सँभाल के बारे में कुछ बातें सुनाईं।

गुरु-पद सँभालने के बाद महाराज जी अपने पहले सत्संग दौरे पर निकले थे। महाराज जी लाला मुन्शीराम और आहलूवालिया साहिब के साथ देहरादून जा रहे थे। डाक्टर स्टोन और मिस हिलगर भी साथ थे। लाला मुन्शीराम बड़े महाराज जी, सरदार बहादुर जी और उसके बाद महाराज जी के सेक्रेटरी थे। उस समय श्री आहलूवालिया आये ही थे और सारा काम-काज सीख रहे थे।

लाला मुन्शीराम ने श्री आहलूवालिया को कुछ रुपये दौरे में रेल टिकट, ताँगा किराया आदि खर्च के लिये दिये। फिर शाम को उन्होंने उनसे खर्च का हिसाब माँगा। आहलूवालिया साहिब ने याद करके जो भी सफ़र आदि में खर्च हुआ था उसका हिसाब दे दिया। लेकिन हिसाब में बीस रुपये कम पड़ गये। सो लाला मुन्शीराम ने उनसे कहा कि यह बीस रुपये वे अपनी जेब से भरें, और बोले, "यह डेरे का रुपया है और अगर तुम भूल जाते हो कि यह कहाँ खर्च हुआ है तो तुम्हें अपने पास से देना चाहिये। आगे के लिये मैं तुम्हें सलाह देता हूँ कि एक डायरी रखो और जो भी खर्च हो उसे करते समय लिख लो। हर पैसे का हिसाब होना चाहिये, क्योंकि यह संगत की मेहनत की कमाई है और उनकी दी हुई सेवा है।"

महाराज जी ने कहा, "बाबाजी भी पैसे-पैसे का हिसाब रखने के बारे में बहुत सावधान रहते थे। उनकी डायरियों में उनके समय में हुए एक-एक पैसे के खर्च का पूरा ब्यौरा लिखा हुआ है।"

इन्हीं बातों से सम्बन्धित एक और रोचक वार्ता महाराज जी ने सुनाई। यह महाराज जी का पहला सत्संग दौरा था, इसलिये उन्हें यह पता नहीं था

कि किस-किस चीज़ की ज़रूरत पड़ेगी, और वे यह मान कर चले थे कि जहाँ वे ठहरेंगे वहाँ खाना बनाने और खाना खाने के बर्तनों का बन्दोबस्त होगा। लेकिन जब महाराज जी और उनके साथ के सब लोग दिन के भोजन के लिये बैठे तो उनका खाना चाँदी की थालियों में परोसा हुआ था। महाराज जी को आश्चर्य हुआ और संकोच भी; उन्होंने लाला मुन्शीराम से पूछा, "यह क्या है?"

लाला मुन्शीराम ने जवाब दिया, "अगर आप अपने बर्तन साथ नहीं लायेंगे तो यही होगा। इस बार तो ये चाँदी के हैं, लेकिन अगली बार सोने के होंगे, और ऐसे ही आगे चलता रहेगा।"

महाराज जी ने उसी वक्त अपने नौकर को बुलाया और आदेश दिया कि देहली पहुँचते ही वह खाना बनाने के सारे बर्तन, खाने के बर्तन, चाय के प्याले तथा और जिस चीज़ की भी खाना बनाने और खाने के लिये ज़रूरत पड़ती है, खरीद लाये। और जब भी बाहर दौरे पर जाना हो तो सारा सामान वह साथ ले चले। महाराज जी ने कहा, "इसके बाद मेरे अपने लिये बर्तन, आटा, दाल वगैरह जिस भी चीज़ की ज़रूरत हो सकती थी, वह मेरा नौकर साथ ले चलता था। और जो भी सब्ज़ियाँ, दूध और अन्य खाने की चीज़ें हमारे लिये खरीदी जाती थीं उनकी कीमत फ़ौरन चुका दी जाती थी।"

* * *

महाराज जी ने हमें एक और दिलचस्प बात सुनाई, जिससे लाला मुन्शीराम की बुद्धिमत्ता और चतुरता प्रकट होती है। डेरे के पैसे की सँभाल करने के लिये महाराज जी हमेशा उनकी प्रशंसा करते थे।

एक बार लाला मुन्शीराम के साथ महाराज जी देहली गये। श्री रामनाथ मेहता ने सत्संगियों से रुपये इकट्ठे करके कुछ ज़मीन खरीदी थी। जब महाराज जी को यह पता लगा तो उन्होंने फ़ैसला किया कि सत्संगियों का रुपया लौटा दिया जाये और ज़मीन डेरे के पैसों से ही खरीदी जाये। इसलिये महाराज जी लाला मुन्शीराम के साथ, पहले बैंक से रुपया निकालने जालन्धर गये। रकम काफ़ी बड़ी थी—करीब तीन लाख रुपये। लाला मुन्शीराम के पास एक खास केनवास का बैग था, जिसे वे रुपया रखने के लिये ही काम में लेते थे।

महाराज जी और लाला मुन्शीराम जालन्धर से देहली के लिये फ़्लाइंग मेल में चढ़े। वे एक कूपे में बैठे। लाला मुन्शीराम ने वह थैला महाराज जी को पकड़ा दिया और कहा, "इसे आप सँभालिये। मैं बूढ़ा हो गया हूँ और हो सकता है कि मुझे नींद आ जाये। आप जवान हैं और इसकी ज़्यादा हिफ़ाजत कर सकते हैं।" यह कहकर लाला मुन्शीराम ऊपर की सीट पर चले गये और गहरी नींद सो गये।

पूरे सफ़र में महाराज जी केनवास के उस बैग को अपने पाँवों के नीचे मज़बूती से दबाकर बैठे रहे, और एक पल भी न सोये। श्री मेहता देहली स्टेशन पर उन्हें लेने आये और दरियागंज ले गये, जहाँ महाराज जी को ठहरना था। वहाँ पहुँचने पर लाला मुन्शीराम ने केनवास का बैग देहली के श्री भार्गव को तिजोरी में रखने के लिये दे दिया।

अगले दिन सुबह करीब आठ बजे श्री मेहता ने उन सब सत्संगियों को इकट्ठा किया जिन्हें रुपया लौटाया जाना था। तब लाला मुन्शीराम ने श्री भार्गव को बैग वापस करने के लिये कहलाया। लेकिन पता चला कि श्री भार्गव तो किसी मुकद्दमे के लिये सुबह से ही चले गये हैं, और किसी को पता नहीं था कि वे कब लौटेंगे।

तब महाराज जी ने लाला मुन्शीराम से पूछा, "अब क्या करना चाहिये ?"

लेकिन लाला मुन्शीराम बोले, "कोई फ़िक्र मत करो। मेरे साथ आओ।" और वे महाराज जी को दूसरे कमरे में ले गये और बोले, "असल में रुपया तो मेरी अन्दर की जेब में है, बैग में नहीं।"

यह सुनकर महाराज जी को बड़ा आश्चर्य हुआ और बोले, "लेकिन जब बैग में रुपये थे ही नहीं तो आपने सारे रास्ते जालन्धर से देहली तक मुझसे उसकी रखवाली क्यों करवाई ?"

उन्होंने जवाब दिया, "मुझे ऐसा करना पड़ा। यह संगत का रुपया था, डेरे की मिल्कियत थी। हर कोई हमें बैंक में जाते और वहाँ से आते देख सकता था। अगर कोई चोर हमें लूटना चाहता तो वह बैग ही छीनता। वह कभी नहीं सोच सकता था कि रुपया मेरे पास है। मुझे सावधानी तो रखनी ही पड़ती है।" यह सुनकर महाराज जी उनके तर्क और डेरे के प्रति उनकी सावधानी तथा वफ़ादारी से बहुत प्रभावित हुए।

लाला मुन्शीराम ने फिर कहा, "जब भी मैं सेवा की रकम डेरे से इम्पीरियल बैंक, अमृतसर (अब स्टेट बैंक) में जमा करने के लिये ले जाता हूँ, तो ऐसा ही करता हूँ। ज्ञानी करमसिंह बैग लिये होते हैं, डेरे का एक चौकीदार बन्दूक लेकर उनके पीछे रखवाली के लिये चलता है, और मैं आराम से उन दोनों के पीछे अपनी अन्दर की जेब में रुपया रखे हुए चलता हूँ। सो अगर कोई बैग को छीन भी ले तो चौकीदार उस पर गोली चलायेगा, और अगर चोर बैग लेकर भाग भी जाये तो उसे कुछ मिलेगा नहीं।

"मैं जब बैंक पहुँचता हूँ तो मैनेजर के कमरे में जाने से पहले ज्ञानी करमसिंह से बैग ले लेता हूँ। अभी तक किसी को ज़रा भी शक नहीं हुआ है कि बैग में रुपया नहीं रहता। उसमें कुछ पुरानी किताबें रहती हैं, जिन्हें मैं बाहर आते वक्त हाथ में ले आता हूँ।"

"लाला मुन्शीराम में बड़ी वफ़ादारी, ईमानदारी और बुद्धिमानी थी।" महाराज जी ने कहा, "मेरे मन में उनके लिये बड़ा आदर था।"

बाबाजी के पत्र

बड़े महाराज जी के अन्तिम दिनों की बात करते हुए महाराज जी ने एक बार कहा, "बड़े महाराज जी ने वसीयत लिखने से दो दिन पहले भाई भानसिंह को बुलाया और स्वामीजी का शब्द 'धाम अपने चलो भाई, पराये देश क्यों रहना' पढ़ने को कहा।

"डाक्टर स्मिथ, डाक्टर हज़ारासिंह और मैं वहाँ बैठे थे। बड़े महाराज जी ने अपनी आँखें बन्द कर लीं और करीब आधे घण्टे तक किसी से भी नहीं बोले। फिर मुझसे बीबी रली को बुलाने को कहा और उनसे बाबाजी के पत्र मँगवाये। भुआजी एक खूबसूरत नीला मखमल का डब्बा लाईं जिसमें चिट्ठियाँ रखी थीं। वे हमेशा बड़े महाराज जी के पलंग के पास की अलमारी में रखी रहती थीं। बड़े महाराज जी ने पहले उस डब्बे को अपने मस्तक से लगाया और उसे खोलकर एक पत्र निकाला, उसको चूमा, फिर अपना चश्मा लगाया और पत्र को दोनों हाथों में थामे रखा। उसे करीब पंन्द्रह मिनिट तक पढ़ते रहे। उनकी आँखें भीग गईं। फिर उन्होंने उस पत्र को वापस उसी डब्बे में रख दिया।

"डब्बे को बन्द करके उन्होंने फिर उसे अपने मस्तक से लगाया और मुझसे कहा कि उन्हें अपने पास रख लूँ ताकि वे परिवार में रहें। वे बोले, 'यह मेरा निजी खज़ाना है।' उन्होंने फिर आँखें बन्द कर लीं। मैं तो आश्चर्य-चकित रह गया, मेरा गला इतना रुँध गया कि मैं कुछ बोल ही न सका। मेरे सिवाय केवल डाक्टर स्मिथ और डाक्टर हज़ारासिंह वहाँ मौजूद थे।

"इसी बीच भुआ रली वापस कमरे में आईं। उन्हें बड़े महाराज जी का इस सम्बन्ध में मुझे दिया हुआ आदेश मालूम नहीं हुआ और वे उस मूल्यवान डब्बे को मुझसे लेकर अलमारी में वापस उसी जगह रख आईं। मैं उनसे कुछ भी नहीं कह सका, केवल चुप रहा। बड़े महाराज जी ने मुझ पर व्यक्तिगत उत्तरदायित्व डाला था कि मैं उस डब्बे को सँभालूँ। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सका यह बात मुझे बराबर सताती रही, बड़े महाराज जी के जाने के बाद भी सताती रही।

"फिर सरदार बहादुर जी के समय में जब मैं पहली बार डेरे आया तो उन्होंने बीबी रली को वह डब्बा, जिसमें बाबाजी के पत्र थे, लाने के लिये कहा, और मुझे देते हुए बोले, 'यह तुम्हारी पारिवारिक निधि है, बड़े महाराज जी ने इसे तुम्हें सौंपा था।'

"मेरी आँखों में आँसू आ गये और मैंने उनसे कहा, 'अब आप ही हमारे परिवार के प्रमुख हैं, इसलिए आप ही इन्हें रखने के लिये योग्य व्यक्ति हैं।'

"इस पर उन्होंने मेरी ओर बड़े प्यार से देखा, सहमति में अपना सिर हिला दिया और डब्बे को वापस उसी जगह रखवा दिया; फिर बोले, 'तुम्हें जब ज़रूरत हो इसे यहाँ से ले सकते हो।'

"फिर डेरे आने पर मैंने सबसे पहले उस डब्बे को सँभाला। मिस हिलगर के ज़ोर डालने पर इन पत्रों में से कुछ के अंशों का अनुवाद प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल द्वारा अंग्रेज़ी में किया गया। मिस हिलगर ने नोट्स लेकर टाईप किये और डेरे ने उन्हें 'स्पिरिचुअल लेटर्स' के नाम से प्रकाशित किया।"

लाला मुन्शीराम की डेरे के प्रति वफ़ादारी

एक दिन महाराज जी डेरे के अधिकारियों से लाला मुन्शीराम के बारे में बातें कर रहे थे। उन्होंने कहा कि सरदार बहादुर जी के समय में एक संयुक्त खाता उनके और लाला मुन्शीराम के नाम पर खोला गया था। महाराज जी के गद्दी पर आने के कुछ महीने बाद एक पुराने और प्रेमी सत्संगी, मास्टर उदयसिंह, महाराज जी के पास आये। वे डेरे का हिसाब-किताब रखते थे। मास्टर उदयसिंह ने महाराज जी से पूछा कि क्या उन्हें मालूम है कि एक खाता स्टेट बैंक, अम्बाला में सरदार बहादुर जी और लाला मुन्शीराम जी के नाम पर है।

महाराज जी ने जवाब दिया कि उन्हें मालूम नहीं है। मास्टर उदयसिंह ने यह भी बताया कि सरदार बहादुर जी के अब न रहने के कारण खाता केवल लाला मुन्शीराम के नाम पर ही रह गया है। इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि महाराज जी लाला मुन्शीराम से कहकर खाते में नाम बदलवा लें। प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल ने भी महाराज जी को यही सलाह दी। वे यह भी बोले कि यदि महाराज जी लाला मुन्शीराम से बात नहीं करेंगे तो प्रोफ़ेसर साहिब खुद करेंगे। उन्होंने कहा, "आखिर तो यह डेरे का रुपया है। अगर यह लाला मुन्शीराम के नाम पर रहता है और उनकी एकाएक मृत्यु हो जाती है तो स्वाभाविक रूप से रुपया उनके लड़के को पैतृक सम्पत्ति के रूप में विरासत में मिल जायेगा।"

परन्तु महाराज जी ने कहा, "कृपया मुन्शीराम जी से कुछ न कहिये। अगर उन्होंने मुझसे नहीं कहा है तो इसकी ज़रूर कोई वजह होगी। मुझे उनकी ईमानदारी और सच्चाई पर पूरा भरोसा है।"

समय निकलता गया, परन्तु महाराज जी ने इस विषय पर लाला मुन्शीराम से कोई चर्चा नहीं की। फिर बड़े महाराज जी के एक बुज़ुर्ग प्रेमी सत्संगी, सेवा-निवृत्त जज लाला गुलवंतराय ने महाराज जी से कहा कि उन्हें मालूम है कि बड़े महाराज जी ने डेरे के बैंक के खाते में आठ लाख रुपये छोड़े थे। पर डेरे के खाते में अब तीन लाख रुपये ही हैं। इसलिए बाकी पाँच लाख रुपये अम्बाला के स्टेट बैंक में होने चाहियें। उन्होंने भी सुझाव दिया कि महाराज जी को लाला मुन्शीराम से बात करनी चाहिये।

लेकिन महाराज जी ने फिर वही दलील लाला गुलवन्तराय को भी दी

और उनसे कहा कि वे लाला मुन्शीराम को मालूम भी न होने दें कि महाराज जी को इस खाते का पता है।

कुछ महीनों बाद, लाला मुन्शीराम एक दिन दोपहर को महाराज जी की कोठी पर आये। वे काफी चिन्तित थे; और बोले, "मैं कल रात सीने में दर्द की वजह से सो नहीं पाया।"

स्वाभाविक ही महाराज जी चिन्तित हुए और उन्होंने सुझाव दिया कि वे अपने आपको अमृतसर के डाक्टर को दिखायें। लाला मुन्शीराम ने कहा, "मैं ठीक हो जाऊँगा, लेकिन मैं सारी रात इसी फ़िक्र में पड़ा रहा कि अम्बाला के स्टेट बैंक में मेरे अकेले के ही नाम में एक खाता है और उसमें डेरे का रुपया है। मैंने आपसे इसके बारे में कोई ज़िक्र नहीं किया है। सच तो यह है कि आपके कम उम्र होने के कारण मुझे पूरा भरोसा नहीं था कि आप डेरे के रुपये की देखभाल अच्छी तरह करेंगे। लेकिन मैं अब चाहता हूँ कि यह रकम आपके नाम पर हो जाये।"

महाराज जी हँसे और बोले, "क्या आपको विश्वास हो गया है कि अब आप मुझ पर भरोसा कर सकते हैं? मैं तो अब भी कम उम्र ही हूँ।"

तब मुन्शीराम जी बोले, "मैंने आपको काम करते हुए और डेरे की व्यवस्था करते देखा है। आपको रुपये-पैसे से कोई लगाव नहीं है, और हिसाब-किताब में कोई रुचि नहीं है। आप बिलकुल निर्लिप्त हैं। मुझे अफ़सोस है, मैंने आपसे पहले नहीं कहा। चलिये अम्बाला चलकर ज़रूरी कारवाही कर लें, तभी मेरे मन को शान्ति मिलेगी।"

सो वे अम्बाला गये और वहाँ स्टेट बैंक के मैनेजर से मिले, जो श्री आहलूवालिया के लड़के ही थे। उन्होंने महाराज जी से कहा कि पिताजी घर पर ही हैं और सबको दोपहर के भोजन के लिये आमन्त्रित कर गये हैं। सो महाराज जी और लाला मुन्शीराम ने उनके साथ भोजन किया। उस समय वहीं पर लाला मुन्शीराम ने श्री आर. डी. आहलूवालिया से डेरे आने के लिये कहा ताकि उनको डेरे के प्रशासन में मदद मिल सके, क्योंकि अब लाला मुन्शीराम वृद्ध हो रहे थे और हर काम अकेले नहीं कर पाते थे। फिर कुछ समय बाद श्री आहलूवालिया डेरे की सेवा में आ गये।



महाराज जी युवा वकील के रूप में

सन्त-सतगुरुओं की निर्मल परम्परा

बड़े महाराज जी की बात करते हुए महाराज जी ने एक बार सत्संग में कहा कि बड़े महाराज जी अपनी पूरी ज़िन्दगी में इस बात के लिये सचेत रहे कि कभी भी कोई चीज़ बिना उसकी कीमत चुकाये काम में न लें। एक दिन, चोला छोड़ने से कुछ महीने पहले, सत्संग में उन्होंने घोषणा की, "मैंने कभी डेरे के पैसे अपने निजी काम में नहीं लिये हैं। मैंने अपनी कमाई पर गुज़ारा किया है। हो सकता है कभी बीबी रली ने डेरे के बगीचे से साग-सब्ज़ियाँ लेकर मेरे लिये पका ली हों, और मैंने डेरे की गाड़ी का उपयोग सत्संग के कार्यों के लिये किया है। इन बातों के लिये मैं संगत से माफ़ी माँगता हूँ। अगर मेरा किसी से कुछ लेना है तो मैं उसका कर्ज़ छोडता हूँ। अगर मुझे किसी को कुछ देना है तो वह आकर मुझसे ले ले।"

महाराज जी ने यह भी कहा कि जब बड़े महाराज जी फौज में नौकरी करते थे, उनके अर्दली ने एक बार चालीस रुपये उन्हें सँभालकर रखने के लिये दिये। पर फिर वह अपने गाँव छुट्टी पर चला गया और कभी वापस नहीं आया। रुपये लौटाने के लिये बड़े महाराज जी ने उसके रिश्तेदारों का पता भी लगवाया, पर किसी का भी कुछ पता नहीं चला। अपना शरीर त्यागने के कुछ महीने पहले उन्होंने एक सेवादार, गोपालसिंह लट्ठा को बुलाया और वे चालीस रुपये सेवा में देने के लिये दे दिये।

* * *

महाराज जी ने भी हमेशा यही उच्च परम्परा निभाई है, जिसका सभी सन्तों ने पालन किया है। महाराज जी अपनी निजी कमाई पर ही अपना गुज़ारा करते हैं और अपने बच्चों तथा परिवार का खर्च भी अपनी खेती की कमाई से चलाते हैं। बीबी रली हमसे कहा करती थीं कि जब महाराज जी बच्चे थे तब भी किसी से कुछ नहीं माँगते थे, यहाँ तक कि अपने परिवार के बुज़ुर्गों से भी कुछ नहीं माँगते थे। अगर उनका कोई परिवार का सदस्य या मित्र उनकी कोई चीज़ ले लेता तो भी वे उससे वापस नहीं माँग पाते थे।

एक बार, सन्तों की इस महान परम्परा का ज़िक्र करते हुए महाराज जी ने सत्संग में कहा, "मैं संगत से अर्ज़ करना चाहूँगा कि मेरे रिश्तेदारों या मेरे परिवार के सदस्यों को कभी कोई रुपया-पैसा या चीज़ न दें, अगर वे माँगें

या उन्हें ज़रूरत भी हो तो भी न दें। अगर मैं भी कुछ माँगू तो मुझे भी इंकार कर दें। बड़े महाराज जी ने हमारे लिये काफ़ी छोड़ा है।"

सन्त हमेशा इन उच्च सिद्धान्तों पर दृढ़ रहते हैं और खुद इन आदर्शों के जीते-जागते उदाहरण होते हैं।

सुख सन्तोष में ही है

महाराज जी ने एक बार सत्संग में फ़रमाया कि इस आधुनिक युग में लोग स्वार्थी हो गये हैं, वे भूल गये हैं कि विश्राम कैसे लेना चाहिए। परिवार आपस में एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। गुज़रे हुए ज़माने में परिवार के छोटे अपने बुज़ुर्गों से सलाह लेते थे। वे उनका आदर करते थे और शाम को सब नियम के साथ इकट्ठे बैठा करते थे। अब कोई किसी के प्रति सहनशील नहीं है और इतने भौतिक आराम होते हुए भी कोई सन्तुष्ट और सुखी नहीं है।

इस बात को समझाने के लिये महाराज जी ने सत्संग में आगे कहा कि एक बार बड़े महाराज जी सिकन्दरपुर गये हुए थे, उस समय वहाँ कुछ निमार्ण-कार्य चल रहा था। शाम को उनका सारा परिवार हमेशा की तरह उनके आसपास बैठा था। उनके सबसे बड़े पुत्र सरदार बचिंतसिंह भी अपने पास ही के फ़ार्म से आ गये थे, और बड़े महाराज जी को अपने परिवार और खेत की समस्याएँ सुना रहे थे। बड़े महाराज जी ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे मज़दूरों के लोक-गीत सुन रहे थे, जो दिन-भर की मेहनत के बाद एक साथ मिलकर गा रहे थे। वे सब हँस रहे थे, गा और नाच रहे थे और बड़े महाराज जी उन लोगों की सहज सरल खुशी का आनन्द ले रहे थे।

सरदार बचिंतसिंह ने फिर बड़े महाराज जी के ध्यान को अपनी समस्याओं की ओर खींचने की कोशिश की। इस पर बड़े महाराज जी बोले, "ज़रा इन मज़दूरों को देखो, ये सिर्फ़ आठ आने (पचास पैसे) रोज़ कमाते हैं पर इनकी कोई शिकायतें नहीं हैं। ये लोग कितने सुखी और सन्तुष्ट हैं। मैंने तुम्हें कितनी जायदाद और दौलत दी है, लेकिन फिर भी तुम मेरे पास समस्याएँ ही लेकर आते हो।"

सरदार बचिंतसिंह बोले, "लेकिन आप अंगूर का मुकाबला जंगली बेर से कैसे कर सकते हैं ?"

बड़े महाराज जी ने जवाब दिया, "तुम अंगूरों से भी खुश और सन्तुष्ट नहीं हो, जबकि ये लोग जंगली बेर खाकर भी सन्तोष कर रहे हैं। सुख जायदाद और दौलत में नहीं, सन्तोष में है।"

महाराज जी ने कहा, "ये सीधी-सादी सच्ची बातें बड़े महाराज जी हमें कुछ ही शब्दों में कह देते थे। लेकिन उनमें सीखने के लिये बहुत बड़ी और गहरी सचाई होती थी।"

डेरे का पहला कुआँ

महाराज जी अकसर सुनाते हैं कि किस तरह बड़े महाराज जी ने बाबाजी से डेरे में कुआँ बनवाने की इजाज़त ली। बाबाजी के समय में बड़े महाराज जी डेरे आने लगे थे। शुरू-शुरू में वे यहाँ नये-नये थे और यहाँ के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। बाबाजी की सेवादारनी बीबी रुक्को ने बड़े महाराज जी से सुबह पूछा, "क्या मैं आपके नहाने के लिये पानी ले आऊँ ?"

बड़े महाराज जी ने सोचा कि वे पानी ब्यास नदी से लायेंगी जो उन दिनों बिलकुल पास ही बहती थी। परन्तु जब पानी बालटी में लाया गया, तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह शुद्ध और साफ़ था। उन्होंने सोचा, "यह नदी का पानी नहीं हो सकता।" इसलिए उन्होंने बीबी रुक्को से पूछा, "आप यह पानी कहाँ से लाई हैं ?"

उन्होंने जवाब दिया, "वड़ाइच गाँव के कुएँ से", जोकि काफ़ी दूर था। बड़े महाराज जी को बड़ा संकोच हुआ कि बीबी रुक्को को उनके लिये पानी इतनी दूर गाँव से लाना पड़ा।

अगली सुबह उन्होंने बीबी रुक्को से निवेदन किया, "अगर आप इजाज़त दें तो बाबाजी के स्नान के लिये गाँव से पानी मैं लाना चाहूँगा।" लेकिन बड़े महाराज जी को कोई भी भारी चीज़ उठाकर चलने की आदत अपनी नौकरी के दिनों में नहीं थी, और न ही उन्होंने ऐसी मेहनत का कोई काम अपनी ज़िन्दगी में किया था। वे तो फौज में इंजीनियर थे। सो जब वे गाँव गये और पानी का घड़ा अपने सिर पर रखा तो उन्हें वह बहुत भारी लगा और वे उसे बड़ी मुश्किल से उठाकर डेरे तक लाये।

वापस आते हुए उन्होंने सोचा कि बाबाजी और संगत के लिये डेरे में एक कुआँ होना चाहिये। इसलिए बड़े महाराज जी ने बहुत हिचकिचाते हुए बाबाजी महाराज से पूछा, "अगर आप इजाज़त दें तो मैं यहाँ कुआँ खुदवाना चाहूँगा ताकि बीबी को गाँव तक पानी लेने न जाना पड़े। इसके सिवाय यहाँ बहुत से लोग भी आते हैं, वे भी उसका फ़ायदा उठायेंगे।"

पहले तो बाबाजी ने इनकार किया और कहा,"मैं तो साधु हूँ। आज मैं यहाँ हूँ, कल यहाँ अच्छा न लगे तो और कहीं जा सकता हूँ। मैं यहाँ कुछ बनाना नहीं चाहता जोकि मुझे इस जगह से बाँध दे।"

परन्तु बड़े महाराज जी ने बाबाजी महाराज से कहा, "मैं आपको बाँधना नहीं चाहता। अगर आप सिर्फ़ एक बार कुएँ का पानी पी लेंगे तो मुझे बड़ी खुशी होगी। आप जहाँ जाना चाहें जायें, मैं आपको बाँधना नहीं चाहता।"

बाबाजी महाराज बड़े महाराज जी को बहुत प्यार करते थे, सो वे बोले, "ठीक है, मैं तो नहीं बँधूँगा, पर तुम ज़रूर इस जगह से बँध जाओगे।" सो कुएँ की खुदाई शुरू हो गई, और उसे बनाने के लिये अधिकांश रुपया बड़े महाराज जी ने भेजा। फिर बाद में बड़े महाराज जी की समझ में आया कि बाबाजी के शब्दों का क्या मतलब था।

बाबाजी की महिमासिंहवाला की पहली यात्रा

बड़े महाराज जी ने नामदान मिलने के कुछ ही समय बाद बाबाजी से अपने गाँव महिमासिंहवाला चलकर सत्संग करने के लिये निवेदन किया, जिसे बाबाजी ने स्वीकार कर लिया। लेकिन बड़े महाराज जी चाहते थे कि बाबाजी श्री आदि ग्रन्थ में से सत्संग करें क्योंकि 'राधास्वामी' और 'सारबचन' पंजाबियों के लिये जाने हुए शब्द नहीं थे।

सो सत्संग में बाबाजी ने आदि ग्रन्थ से ही शब्द लिया। लेकिन बीबी रुक्को ने, जोकि उस वक्त बाबाजी की सेवा में थीं और उनके साथ गई थीं, शाम को बड़े महाराज जी के मकान की छत पर जाकर अपनी ज़ोरदार आवाज़ में 'सार बचन' के शब्द गाना शुरू कर दिये। बड़े महाराज जी हमेशा कहा करते थे कि उन्हें सुनते ही उनके मन से सारी लोक-लाज की भावना एकदम निकल गई।

बाबाजी महाराज की महिमासिंहवाला की पहली यात्रा बड़े महाराज जी

के लिये बहुत बड़ी घटना थी। बाबाजी उन्हीं के यहाँ ठहरे और बड़े महाराज जी ने खुद बाबाजी की हर ज़रूरत का पूरा ध्यान रखा। उन्होंने बाबाजी के स्नान के लिये खुद कुएँ से पानी खींचा, गेहूँ का आटा पीसा और हर छोटे से छोटा काम बड़े प्यार से स्वयं किया। बड़े महाराज जी की एक पुत्र-वधू ने उनको यह सब करते देख कर कहा, "यह सेवा तो हम औरतों के लिये है, मुझे करने दीजिये।"

परन्तु बड़े महाराज जी ने बड़ी मिठास से मना कर दिया। उन्होंने कहा, "यह तो मेरी सेवा है, मैं ही करूँगा।"

सरदार बहादुर जी स्वयं एक उदाहरण

सत्संगी को संसार में अपना गुज़ारा कैसे करना चाहिये, सरदार बहादुर जी इसके एक जीते-जागते उदाहरण थे। वे अपने आपको सांसारिक बातों से अलग रखते थे। वे अपने पास एक पाई तक नहीं रखते थे और अपनी सारी तनख़्वाह अपने मित्र पं. लालचन्द को दे देते थे। इसमें से वे सरदार बहादुर जी के घर-खर्च, उनके कपड़े और अन्य ज़रूरतों को पूरा करते थे। इसके बाद जो कुछ बचता उसे सरदार बहादुर जी के भाई सरदार भगतसिंह को भेज दिया जाता था।

सतगुरु कभी अपने शिष्य को नहीं छोड़ता

महाराज जी कई बार कहते हैं कि यदि कोई सत्संगी अपने रास्ते से भटक भी जाता है, तो भी सतगुरु उसे नहीं छोड़ता और उसकी मृत्यु के समय सँभाल करता है, हालाँकि ऐसे शिष्यों को अपने किए हुए बुरे कर्मों की कीमत चुकानी ही पड़ती है। उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि बड़े महाराज जी का एक बड़ा प्रेमी सत्संगी था जिसका बहुत बड़ा परिवार था—करीब नौ बच्चे थे। उसकी पत्नी का देहान्त हो गया और सारे बच्चों की देखभाल का भार उस सत्संगी पर ही आ पड़ा।

बड़े महाराज जी उस सत्संगी के पास अफ़सोस ज़ाहिर करने गये। और यह कहकर धीरज बँधाया कि ये सब हमारे एक-दूसरे के साथ कर्मों के

बन्धन हैं; जब वे खत्म हो जाते हैं तो आत्मा शरीर को छोड़ देती है। "इसलिए फ़िक्र मत करो," उन्होंने फ़रमाया, "और हिम्मत रखो।"

लेकिन वह सत्संगी बहुत दुःखी था और अपने शोक में इतना डूबा हुआ था कि उसे कुछ खयाल नहीं रहा और बड़े महाराज जी से बोला, "अगर हमें अपने कर्मों के लिए कीमत चुकानी ही है तो फिर आप जैसे गुरु का हमें क्या फ़ायदा है?" बड़े महाराज जी चुप रहे और वापस डेरे आ गये।

जैसे-जैसे समय निकलता गया वह सत्संगी सन्तमत के मार्ग से भटकता गया। वह शराब पीने लगा और माँस भी खाने लगा। उसने अपने से एक बहुत कम उम्र की लड़की से दूसरी शादी कर ली। यद्यपि वह कभी-कभी अपने शहर के सत्संग में भी आता था और हमेशा सन्तमत और बड़े महाराज जी के लिये आदर और भक्ति के साथ बात करता था, लेकिन उसने अपनी बुरी आदतें नहीं छोड़ीं और फिर कभी डेरे नहीं आया।

बड़े महाराज जी और सरदार बहादुर जी के इस संसार से प्रयाण करने के बाद, महाराज जी गद्दी पर बिराजमान हुए। जब महाराज जी शिमला में सत्संग के दौरे पर गये, कुछ सत्संगी महाराज जी के पास आये और उनसे कहा कि वह सत्संगी उनसे मिलना चाहता है। महाराज जी उसे अपने बचपन से जानते थे और बड़े महाराज जी के पास उसे कई बार देखा था। सो उसके प्रति आदर की भावना और अपनी स्वाभाविक दया से प्रेरित हो खुद उससे मिलने गये।

उसने महाराज जी से बड़े महाराज जी के बारे में बड़े प्रेम और भक्ति-भाव से बातें कीं, पर अपनी आदतों के बारे में कुछ नहीं बताया। महाराज जी ने भी इस बारे में कुछ नहीं कहा, क्योंकि वे उसे उसकी कमज़ोरियों के बारे में इतना सचेत नहीं करना चाहते थे कि वह उनसे मिलने से कतराने लगे और उनके सामने ही न आये। महाराज जी ने उसे केवल यही सलाह दी कि वह रोज़ कुछ समय भजन को दे।

एक साल बाद, महाराज जी के शिमला के अगले दौरे पर वह सत्संगी फिर महाराज जी से मिला और इस बार उसने अपना सारा हाल सुनाया। उसने जो कुछ बड़े महाराज जी से कहा, वह कैसे इस पथ से भटक गया, और जो कुछ उसने किया वह सब महाराज जी को बता दिया। वह बोला,

"एक दिन बड़े महाराज जी भजन में प्रकट हुए; मैंने पूछा कि क्या वे मेरे मरने पर मेरी सँभाल करेंगे?"

बड़े महाराज जी ने जवाब दिया कि उसकी सँभाल ज़रूर होगी, पर उसे बहुत तकलीफ़ सहनी पड़ेगी और अपने किये कर्मों को इस ज़िन्दगी में ही भुगतना पड़ेगा।

सो उसने महाराज जी से कहा, "मुझे मालूम था कि मुझे तकलीफ़ उठानी पड़ेगी। मेरी तो आपसे इतनी ही विनती है कि इसका वक्त घटा दिया जाये।"

महाराज जी ने जवाब दिया, "बड़े महाराज जी ही सब जानते हैं। आप अपनी विनती उनसे करें।" महाराज जी ने कहा कि जब अन्त समय आया तो उसे बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ी। उसके पैर गेंगेरीन की वजह से काट दिये गये, और वह अस्पताल में भर्ती होने के कुछ ही दिनों में मर गया। उस समय वह बिलकुल अकेला था। उसके नौ बच्चों में से एक भी उसके पास नहीं था।

एक बार नाम देने के बाद सतगुरु जीव को कभी नहीं छोड़ते।

डेरा ट्रस्ट

बाबाजी के समय से ही यह सन्तमत का एक माना हुआ नियम है कि केवल सतगुरु ही सत्संग की सारी सम्पत्ति, रुपये-पैसे और सेवा में शिष्यों द्वारा भेंट की गई सब चीजों का सम्पूर्ण स्वामी है। बाबाजी महाराज के समय में यही होता था और बड़े महाराज जी ने भी विरासत में इसी सिद्धान्त को प्राप्त किया। यही सरदार बहादुर जी और महाराज जी ने भी किया।

पर महाराज जी बहुत दूरदर्शी हैं। वे जानते थे कि इस प्रथा से भविष्य में समस्याएँ खड़ी हो सकती थीं, क्योंकि देश के कानून बदले जा रहे थे और ज़मीन और आमदनी पर नये कर लगाये जा रहे थे। जब महाराज जी सतगुरु पद पर आये तब तक सरकार ने एक कानून लागू कर दिया था जिसमें एक व्यक्ति को ज़्यादा से ज़्यादा अपने निजी नाम पर केवल तीस एकड़ ज़मीन रखने की इजाज़त थी।

इसलिए १९५७ के आसपास महाराज जी ने लाला मुन्शीराम से कहा कि वे चाहते हैं कि एक ट्रस्ट-सोसाइटी बनाई जाये जिसके नाम डेरे के

रुपये-पैसे और सत्संग की जायदाद की मिल्कियत कर दी जाये। लाला मुन्शीराम ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल ने भी अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहा, "यह सन्तमत के मूल सिद्धान्तों के खिलाफ़ है। सतगुरु ही सब चीज़ों का मालिक है। अगर हम ऐसा करते हैं तो सन्तमत की सारी धारणा ही बदल जायेगी। ऐसा नहीं होना चाहिये।"

महाराज जी ने दलील दी, "लेकिन मैं एक व्यक्ति के रूप में तीस एकड़ ज़मीन ही अपने नाम पर रख सकता हूँ। इसलिए सिकन्दरपुर और डेरा दोनों जगह मेरे नाम पर ज़मीनें कैसे रह सकती हैं?"

उन्होंने आग्रह करते हुए कहा, "लेकिन डेरा आपकी रूहानी विरासत है और सिकन्दरपुर आपको मिली हुई निजी पैतृक सम्पत्ति।" वास्तव में उन्होंने न्यायालय में इस सम्बन्ध में याचना-पत्र पेश कर दिया था, जिसे वे जीत भी गये थे। इसलिए कानून की दृष्टि से महाराज जी को रूहानी विरासत के रूप में डेरा में तीस एकड़ ज़मीन और अपनी निजी आमदनी के लिए सिकन्दरपुर में तीस एकड़ ज़मीन रखने की इजाज़त मिल गई थी।

फिर उसी साल, राय साहिब लाला ताराचंद अग्रवाल को (जोकि भारत सरकार के डिप्टी कस्टोडियन जनरल थे) नाम मिला। महाराज जी ने उनसे डेरे की ट्रस्ट सोसाइटी बनाने के बारे में विचार किया। ताराचंद जी, महाराज जी का दृष्टिकोण समझ गये और ऐसी सोसाइटी बनाने के लिये सहमत हो गये जिसके कि महाराज जी संरक्षक हों। ताराचंद जी ने लाला मुन्शीराम और प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल को भी यह कहकर समझाया कि सेवा तो फिर भी महाराज जी को ही पेश की जायेगी। लेकिन वे संरक्षक के रूप में सेवा लेकर ट्रस्ट को दे देंगे। फिर यह रकम डेरे के विकास के लिये सोसाइटी के सदस्यों की मंज़ूरी से काम में लाई जायेगी।

इस पर लाला मुन्शीराम ने महाराज जी को सलाह दी, "ऐसा करने से सोसाइटी के सदस्य आपको बहुत तकलीफ़ देंगे। उनके पास अधिकार होंगे, इसलिए वे आपकी मर्ज़ी के मुताबिक काम नहीं करेंगे।"

महाराज जी ने जवाब दिया, "कोई फ़िक्र न करें। अगर वे मेरी मर्ज़ी के मुताबिक नहीं चलेंगे, तो मैं उनकी मर्ज़ी के मुताबिक चलूँगा। वे मुझे कोई तकलीफ़ नहीं देंगे।"

सो लाला मुन्शीराम और प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल बड़ी अनिच्छापूर्वक

सहमत हो गये। फिर लाला मुन्शीराम ने कहा, "मैं बूढ़ा हो रहा हूँ। मेरे लिये ये उलझन-भरे हिसाब रखना सम्भव नहीं होगा। मैंने तो बड़े महाराज जी के ज़माने से एक रजिस्टर रखा है, जिसमें खर्च एक तरफ लिखता हूँ और दूसरी तरफ जो भी आता है वह जमा कर लेता हूँ।" परन्तु तब तक श्री आहलूवालिया डेरे की सेवा में आ गये थे और वे ट्रस्ट का हिसाब-किताब रखने के लिये तैयार हो गये। इस तरह, जैसा कि अक्सर सतगुरुओं के साथ होता है, सब काम अच्छी तरह जम गया, हालाँकि उनकी बुद्धिमत्ता, निपुणता और दूरदर्शिता का पता हमें सबकुछ हो जाने के बाद ही लगता है।

इस प्रकार लाला ताराचंद की मदद से ट्रस्ट ठीक समय पर बन गया। स्वयं वकील होने की वजह से, "राधास्वामी सत्संग ब्यास" के बहुत से नियम और अधिनियम आदि महाराज जी द्वारा स्वयं ही तैयार किये गये। महाराज जी की अपार दूरदर्शिता के कारण ही डेरे को कर की काफ़ी बचत हुई और वह कई उलझनों से बच गया।

जिस समय यह सब चल रहा था, महाराज जी ने लाला मुन्शीराम जी को, जोकि उस वक्त सेक्रेटरी थे, एक पत्र लिखा और पूछा कि डेरे के पास कितना नकद रुपया है, तथा साथ ही उनसे सारे हिन्दुस्तान में डेरे की मिल्कियत के सत्संग-घरों की सूची भी माँगी।

जवाब में लाला मुन्शीराम ने नकद रुपये को प्रमाणित करते हुए पत्र लिखा और सत्संग-घरों की सूची भी दी। इस पर महाराज जी ने लिखा कि नकद रकम और सत्संग-घरों का स्वामित्व "राधास्वामी सत्संग ब्यास" के नाम कर दिया जाये, और लाला मुन्शीराम ने आवश्यक कारवाही कर दी। यह पत्र-व्यवहार डेरे के आफिस में रखा हुआ है।

नेत्र-शिविर (आई-केम्प)

महाराज जी अपने देहात और पहाड़ों के दौरों में काफ़ी लोगों को मोतियाबिंद और आँखों की अन्य बीमारियों से पीड़ित देखते थे। उनके मन में इन लोगों के प्रति बड़ी दया और करुणा का भाव उठता रहता था। वे जानते थे कि इनमें से कई बराबर इलाज नहीं करा सकते, क्योंकि इनके पास इतना पैसा नहीं है और न ही इन्हें इलाज की व्यवस्था का कुछ पता है। इस

बात को ध्यान में रखते हुए महाराज जी ने डेरे में एक नेत्र-शिविर (आई-केम्प) करने का निर्णय किया जिसमें मुफ़्त आपरेशन और उसके बाद का इलाज कुशलतापूर्वक हो सके।

डेरे में पहला आई केम्प फ़रवरी १९६५ में लगाया गया। आँखों के विशेषज्ञ डाक्टर जे. एम. पाहवा और उनका दल यू. पी. में अलीगढ़ के पास सीतापुर नेत्र-चिकित्सालय से डेरे के निमन्त्रण पर आया और उन्होंने करीब दो हज़ार मरीज़ों का इलाज किया तथा साढ़े नौ सौ बड़े और तीन सौ छोटे आपरेशन मुफ़्त किये, जो सब सफल रहे।

तब से मरीज़ों और सेवादारों की संख्या बढ़ती गई और आई-केम्प डेरे में हर साल लगने लगा। इससे लोगों को सेवा करने का एक अनमोल अवसर मिलने लगा। सारे हिन्दुस्तान से और विदेशों से सत्संगी डाक्टरों ने आई-केम्प में सेवा करने के लिये आना शुरू कर दिया। अन्य व्यवसायों में लगे हुए बहुत-से पढ़े-लिखे सत्संगी—वकील, सरकारी अधिकारी, व्यापारी आदि—भी नेत्र-शिविर में प्रेमपूर्ण सेवा की भावना के साथ आने और जिन कार्यों में इलाज सम्बन्धी विशेषज्ञों की ज़रूरत नहीं होती, उन्हें करने लगे।

आई-केम्प सबके लिए है और इसमें सत्संगी या गैर-सत्संगी मरीज़ों के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाता। उनसे यह भी नहीं पूछा जाता कि उन्होंने नाम लिया है या नहीं। मरीज़ों को खाना, बिस्तर, साफ़ चादरें आदि, दवाइयाँ, हर तरह की इलाज-सम्बन्धी जाँच-पड़ताल और चश्मे मुफ़्त दिये जाते हैं। महाराज जी स्वयं दिन में दो-तीन बार आई-केम्प में जाते हैं। उनकी दया-मेहर, कृपा तथा मरीज़ों के लिये उनकी प्रेमपूर्ण चिन्ता के फलस्वरूप सेवादारों को मरीज़ों की सेवा केवल प्यार, लगन और सावधानी के साथ ही नहीं बल्कि निस्वार्थ समर्पण की भावना के साथ करने की भी प्रेरणा प्राप्त होती है।

आज नवम्बर १९८९ में, पहले आई-केम्प को लगे चौबीस साल हो गये हैं, इस साल यह बाईसवाँ आई-केम्प था। आई-केम्प में इन वर्षों में अद्‌भुत सुधार और उन्नति हुई है। डा. जे. एम. पाहवा और उनका दल ही अभी भी हर साल आपरेशन करता है। इस वर्ष करीब ग्यारह हज़ार मरीज़ों का पूर्व-निरीक्षण किया गया और छः हज़ार से कुछ कम मरीज़ अन्तिम निरीक्षण के बाद आपरेशन के योग्य पाये गये। इनमें से करीब पाँच हज़ार

तीन सौ मोतियाबिंद के मरीज़ थे और बाकी ग्लूकोमा, ओप्टिकल इरिडेक्टोमी और अन्य बीमारियों के।

आई-केम्प में पैंतीस वार्ड पुरुषों के और साठ महिलाओं के थे। महिला सेवादारनियों ने मरीज़ों के लिये आँखों के पेड और पट्टियाँ तथा डाक्टरों के लिये मास्क और टोपियाँ तैयार करने का काम किया। कुल मिलाकर करीब सात हज़ार सेवादार स्त्री-पुरुषों ने मरीज़ों की सेवा और अन्य व्यवस्था कार्यों में लगन और समर्पण की भावना के साथ काम किया।

कुल दो सौ ग्यारह डाक्टर हिन्दुस्तान के कोने-कोने से और इक्कीस विदेश से आये थे। दो सौ अस्सी नर्सें थीं, सैंतीस लेबोरेटरी टेक्निशियन, इकहत्तर फ़ार्मेसिस्ट और चौदह आपरेशन थियेटर टेक्निशियन थे। इन सबने बड़े प्रेम और निःस्वार्थ भाव से सेवा की।

इस विशाल कार्य के पीछे मार्गदर्शक और प्रेरणा के स्रोत महाराज जी ही हैं। अपनी दया-मेहर और रहमत तथा मरीज़ों की देखभाल की अच्छी व्यवस्था करवाने की भावना के साथ तीन नवम्बर को महाराज जी ने पूरे आई-केम्प का चक्कर लगाकर हर विभाग की व्यवस्था का निरीक्षण किया। उन्होंने पैदल चलते हुए डेढ़ घण्टे से अधिक समय तक पूर्व-निरीक्षण विभाग, आपरेशन थिएटर, वार्ड, स्टोर आदि की व्यवस्था को बड़े ध्यान और बारीकी के साथ देखा। आपरेशन शुरू होने के बाद प्रति-दिन सुबह-शाम महाराज जी वार्डों में जाकर मरीज़ों से मिलने लगे।

उनके आने से सारे विशेषज्ञों और अन्य सेवादारों के हृदय में प्रेम और आनन्द की हिलोरें उठने लगतीं तथा उनकी दया-मेहर बीमारों और साधन-हीन मरीज़ों के अन्दर एक अचूक मरहम के समान सन्तोष और आरोग्य की भावना जाग्रत कर देती थी।

आकाशवाणी और दूरदर्शन के प्रतिनिधियों ने अपने तीन और ग्यारह नवम्बर के प्रसारणों में नेत्र-शिविर का विवरण दिया, और यहाँ जो कुछ हो रहा था उसका रोचक चित्रण प्रस्तुत किया।

१९६५ से अब तक १,३७,९३५ मरीज़ों का पूर्व-निरीक्षण हो चुका है और ५८,९७१ मरीज़ों के आपरेशन हुए हैं तथा वे अपनी दृष्टि वापस पा

चुके हैं। इससे हम अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि किस पैमाने पर यह काम हाथ में लिया जाता है।

नीचे महाराज जी के दो बड़े सुन्दर व्याख्यानों से कुछ अंश दिये जा रहे हैं जो उन्होंने सेवादारों द्वारा बड़े प्यार से की गई सेवा की प्रशंसा में दिये हैं। २० नवम्बर, १९८५ को आई-केम्प के सेवादार सत्संग-घर के मैदान में प्रसाद लेने के लिये इकट्ठे हुए, उनसे महाराज जी ने ये प्रेरणादायक शब्द कहे :

> "हुज़ूर महाराज जी (बड़े महाराज जी) फ़रमाया करते थे कि किसी की सेवा करने का मौका बड़े भाग्य से मिलता है। यह तो मालिक की अति दया-मेहर है कि आँखों के मरीज़ों ने डेरे की संगत को अपनी सेवा का मौका दिया है।
>
> "जिस प्रेम, प्यार और नम्रता के साथ कड़ी मेहनत करके और कई तरह की तकलीफ़ें उठाकर जो सेवा आप लोगों ने की है, उसकी मिसाल शायद ही कोई और हो।
>
> "मेरे पास कोई शब्द नहीं हैं कि मैं कुछ कह सकूँ। मैं तो इतनी ही विनती हुज़ूर महाराज जी के आगे कर सकता हूँ कि वे हम सब पर दया-मेहर करें।"

दूसरे ऐसे ही अवसर पर भी महाराज जी करीब-करीब यही बोले, लेकिन यह और कहा, "हम आँख के मरीज़ों के शुक्रगुज़ार हैं जिन्होंने हमें उनकी इस सेवा का मौका प्रदान किया है।"

२२ नवम्बर, १९८७ को महाराज जी ने आई-केम्प के सेवादारों को प्रसाद दिया और कहा :

> "विनती है कि बाबाजी महाराज ने और श्री हुज़ूर महाराज जी ने इस डेरे की बुनियाद केवल प्रेम, प्यार, नम्रता, सेवा और भजन-सुमिरन पर रखी है। इस डेरे में सब बराबर हैं—अमीर हों, गरीब हों, औरत हो या आदमी, किसी कौम के हों, किसी धर्म के हों, किसी मुल्क के हों—यहाँ कोई जाति-पाँति का सवाल नहीं है। यह डेरा हम सबका है, हरएक सत्संगी का है।
>
> "जिस प्रेम के साथ संगत, सेवादार, हर साल आँखों के मरीज़ों की सेवा करते हैं, यह उन ही उसूलों का एक ऊँचा

उदाहरण है। जिस प्रेम-प्यार के साथ आपने इस साल आँखों के मरीज़ों की सेवा की है, और हर साल करते हैं, मैं कोई बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कह रहा हूँ, उसकी मिसाल शायद ही दुनिया में कहीं मिले।

"मैं लम्बे भाषण देने का आदी नहीं हूँ। मुझे तो हुज़ूर महाराज जी के आगे हाथ जोड़ने की आदत है। मैं अब भी उन्हीं के आगे हाथ जोड़ता हूँ कि अपने सेवादारों को हर साल की तरह इन मरीज़ों की सेवा करने की बख़्शिश देते रहें, और मुझ पर और अपनी संगत पर ऐसी ही बख़्शिश करते रहें।"

इन मार्मिक शब्दों का सेवादारों पर अकथनीय प्रभाव पड़ा, कई प्रेम और कृतज्ञता से आत्म-विभोर हो उठे और उनकी आँखों से आँसू बह चले।

महाराज सावनसिंह अस्पताल, ब्यास का प्रारम्भ

यद्यपि अनेक मरीज़ों का १९६५ से आई-केम्प में इलाज होता रहा है, फिर भी किसी न किसी कारण से कई लोगों को आई-केम्प में भर्ती नहीं किया जा सकता था और उन्हें बिना आपरेशन के अपने घर लौटना पड़ता था। इनमें से कई बहुत गरीब होते थे और वे शहर के अस्पतालों में जाने का खर्च भी नहीं उठा सकते थे। महाराज जी यह सब जानते थे और उन्हें मालूम था कि ये लोग अपना इलाज नहीं करा पायेंगे; और इससे महाराज जी को बहुत दुःख होता था।

यह सोचकर, महाराज जी एक स्थायी चेरिटेबल अस्पताल बनाने का विचार करने लगे जहाँ गरीब लोगों का इलाज पूरे वर्ष होता रहे।

जब महाराज जी ने इस विचार को डेरे के अधिकारियों के आगे रखा, तो वे बड़े विस्मित हुए और इसे मंज़ूर करने में हिचकिचाये। उनका कहना था कि इतनी बड़ी योजना के लिये डेरे के पास रकम नहीं है और फिर इसे चलाने में रुपया भी बहुत लगेगा। लेकिन महाराज जी तो फैसला कर चुके थे कि गरीब पीड़ित जनता और संगत की सुविधा के लिये अस्पताल बनाना ही है। सो उन्होंने कहा, "चिन्ता न करें, बड़े महाराज जी सबकुछ सँभाल लेंगे।"

महाराज जी ने उनसे यह भी कहा कि इस अस्पताल का नाम 'महाराज सावनसिंह चेरिटेबल अस्पताल' होगा।

अस्पताल के लिये ज़मीन रक्षा-विभाग और पंजाब गवर्नमेंट से उचित मूल्य पर खरीदी गई। सरकार तो ज़मीन बिना कीमत ही देना चाहती थी, परन्तु महाराज जी ने ज़मीन की पूरी कीमत लेने के लिये सरकार को विवश किया।

जब अस्पताल की नींव खोदने की पूरी तैयारी हो गई तो महाराज जी डेरे के थोड़े से अधिकारियों को बिना कुछ बताये अस्पताल की ज़मीन पर ले गये। उन्होंने पहले ही बाबाजी के गाँव घुमान के कुछ सेवादारों को वहाँ पहुँचने के लिये कह दिया था। महाराज जी के साथ सबने बड़े महाराज जी का ध्यान किया, दया-मेहर के लिये प्रार्थना की और नींव की खुदाई का काम शुरू कर दिया गया। इस अवसर को महाराज जी ने किसी रिवाज या समारोह का रूप नहीं दिया।

इस प्रकार अस्पताल का निर्माण-कार्य शुरू हुआ और हज़ारों सेवादारों ने हिन्दुस्तान के हर भाग से, कभी कहीं से तो कभी कहीं से, आकर बड़े प्यार और लगन से इसे बनाने में मदद की। जो भी सेवा उन्हें मिलती उसे वे बड़े प्रेम के साथ करते।

अस्पताल का निर्माण जनवरी १९८६ में समाप्त हुआ। इसको शुरू करने से एक दिन पहले महाराज जी ने अस्पताल की भूमि में सत्संग किया। सत्संग से पहले उन्होंने संगत से कुछ वचन कहे जो इस प्रकार हैं :

> "सत्संग शुरू करने से पहले मैं विनती करना चाहता हूँ कि हुज़ूर महाराज जी की अति दया-मेहर और बख़्शिश से आपका अस्पताल अब तैयार हो गया है। कल सुबह नौ बजे आउट पेशेन्ट डिपार्टमेन्ट (ओ.पी.डी.) बीमारों के लिये खोल दिया जायेगा। लेकिन हर रोज़ अस्पताल के खुलने का वक्त सुबह आठ बजे से एक बजे तक और दो बजे से शाम को पाँच बजे तक रहेगा। सब बीमारों का यहाँ मुफ़्त इलाज किया जायेगा। सत्संगियों और गैर-सत्संगियों में कोई फ़र्क नहीं होगा। धीरे-धीरे तीन सौ बेड (पलंग) जोकि वार्डों में हैं, खोल दिये जायेंगे।
>
> "अस्पताल को बनाने और इसमें उपकरण लगाने में नौ

करोड़ रुपया खर्च हुआ है। इसको चलाने के लिये भी संगत ने काफ़ी रुपया सेवा में दिया है, जिसका कि ट्रस्ट बना दिया गया है। इस रकम के ब्याज से यह अस्पताल चलेगा।

"जिस मेहनत और प्यार के साथ संगत ने इस अस्पताल को तैयार किया है, उसकी मिसाल शायद ही दुनिया में कहीं हो, और न ही मेरे पास शब्द हैं कि उसके बारे में कुछ कह सकूँ। हुज़ूर महाराज जी की जो संगत विदेशों में रहती है, उसने भी खूब दिल खोलकर सेवा में हिस्सा लिया है। और यह भी हुज़ूर महाराज जी की अति दया-मेहर और बख़्शिश है कि उनकी संगत को बीमारों की सेवा करने का बड़ा अच्छा मौका मिला है।

"अस्पताल को चलाने के लिये बहुत-कुछ स्टाफ़ (डाक्टर, कर्मचारी आदि) रख लिया गया है। अस्पताल के स्टाफ़ से मैं सिर्फ़ इतनी अर्ज़ करना चाहता हूँ कि मेनेजमेंट उनकी हर ज़रूरत का ख़याल रखेगा, लेकिन वे एक बात हमेशा याद रखें कि जिस हस्ती की याद में और जिसके नाम पर अस्पताल बनाया गया है और जिस प्रेम-प्यार से संगत ने इसको खड़ा किया है, उस नाम को, प्रेम-प्यार से बीमारों की सेवा करके, और ऊँचा करें, और रोशन करें।"

अस्पताल अब करीब चार साल से चल रहा है और हज़ारों मरीज़ों की सेवा कर रहा है, ऐसे मरीज़ों की जिन्हें इस अस्पताल के अलावा इलाज के लिये और कहीं जाने की जगह ही नहीं थी और न ही कहीं कोई उनकी देखभाल करनेवाला था। यह सब महाराज जी की दया-मेहर और विचारशीलता तथा पीड़ित मानव-जाति के लिये रहमत के कारण ही हुआ है।

डेरे के स्थान का चुनाव

महाराज जी चाहते हैं, और इस बात पर ज़ोर देते हैं, कि डेरा हमेशा आध्यात्मिकता या रूहानियत का केन्द्र ही रहे, जैसी कि इस उजाड़ और सुनसान स्थान को भजन और सत्संग के लिये चुनते समय बाबाजी की इच्छा

थी। इस बात को संगत के मन में दृढ़तापूर्वक बिठाने के लिये महाराज जी ने एक बार सत्संग में संगत से कहा :

"सत्संग से पहले मैं एक बड़ी ज़रूरी विनती करना चाहता हूँ। बड़े प्यार के साथ सुनने और समझने की कोशिश करना।

"जिस जगह भी सन्त-महात्मा अपने रहने का स्थान बनाते हैं, वे हमेशा एकान्त ढूँढते हैं; शहरों और गाँवों की हलचलों से दूर रहना चाहते हैं। लेकिन जो मालिक के भक्त होते हैं, जो परमार्थ के खोजी होते हैं, जिन्हें मालिक से मिलने का शौक और प्यार होता है, वे उस जगह भी सन्तों के पास पहुँच जाते हैं; क्योंकि चन्दन का पेड़ कितने भी जंगल के बीच क्यों न हो, उसकी खुशबू हर जगह फैल जाती है।

लंगर

"ऐसे महात्मा जहाँ भी अपने रहने का स्थान बनाते हैं, उनको वहाँ संगत के लिये कोई न कोई लंगर भी चलाना पड़ता है, क्योंकि खाने के बगैर लोगों का गुज़ारा नहीं हो सकता।

"इसी तरह श्री बाबाजी महाराज ने एकान्त देखकर, जंगल समझकर, उजाड़ और खड्ड देखकर, इस जगह को अपना निवास-स्थान बनाया था। लेकिन जो परमार्थ के खोजी थे वे यहाँ भी उनके पास पहुँच गये। धीरे-धीरे आपके सत्संग का प्रचार होता गया और संगत ने यहाँ आना शुरू कर दिया। उनके लिये बाबाजी ने भी यहाँ लंगर शुरू किया, जो उनकी ही दया-मेहर और बख़्शिश से अभी तक चल रहा है।

"लंगर महात्मा इसलिए भी चलाते हैं कि इससे संगत को सेवा का मौका मिलता है, आपस में प्रेम-प्यार बढ़ता है और अमीर-गरीब तथा ऊँच-नीच की भावना से हमारा ख़याल निकलता है।

आध्यात्मिक केन्द्र

"जब हुज़ूर महाराज जी इस जगह आये, सत्संग और ज़्यादा फैल गया। बहुत से सत्संगियों ने यहाँ रहने की इच्छा



महाराज सावनसिंह चेरीटेबल अस्पताल : निर्माण-कार्य का एक दृश्य

ज़ाहिर की, इसलिये हुज़ूर महाराज जी को संगत के लिये कई मकान बनवाने पड़े। संगत की ज़रूरत को पूरा करने के लिये आपने यहाँ भाई अरूड़सिंह जी को एक दुकान खोलने की इजाज़त दी, जहाँ लस्सी, चाय और मिठाई मिलने लगी। वह एक साधु स्वभाव का व्यक्ति था, हुज़ूर का पुराना निजी सेवादार था ; जो भी थोड़े-बहुत पैसे उसके पास मुनाफ़े के बचते थे उन्हें वह सेवा में ही दे देता था। यह जो मंगलसिंह की दुकान है, यह भाई अरूड़सिंह ही संसार से जाते वक्त इसको दे गये थे। हुज़ूर महाराज जी ने और कोई दुकान यहाँ नहीं खुलने दी।

"कई बड़े-बड़े लोग हुज़ूर के पास यहाँ इन्डस्ट्री के प्रोजेक्ट (उद्योग लगाने के प्रस्ताव) लेकर आये, कई लोगों ने कहा कि स्कूल खोला जाये और कई ने कालेज खोलने का सुझाव दिया। लेकिन महाराज जी एक ही बात कहा करते थे कि बाबाजी ने यह एकान्त स्थान चुना है ताकि यहाँ सत्संग का ही वातावरण बना रहे, दूसरी किसी तरफ लोगों का ध्यान न जाये।

सुविधाएँ

"हुज़ूर के ज़्यादा दौरे जहाँ अब पाकिस्तान है उधर ही होते थे। सो देश के विभाजन के बाद आपके बहुत से प्रेमी सत्संगी डेरे के नज़दीक के बड़े शहरों में आकर बस गये। इसलिये ज़्यादा संख्या में लोगों ने डेरे में आना शुरू कर दिया। उनकी आवश्यकताएँ भी बढ़नी शुरू हो गईं। सो डेरे का इन्तिज़ाम करने वालों ने उनके सुख और आराम के लिये कई तरह के प्रबन्ध किये।

"आप देखते हैं कि आपके आराम के लिये भोजन-भण्डार है, टी-केफ़ेटेरिया है, फलों की दुकान है, जनरल स्टोर है, प्रोवीज़न स्टोर है, एक कपड़ों की और एक किताबों की दुकान है। जो भी हमें ज़रूरत पड़ सकती है उसको देने की डेरे वाले पूरी कोशिश करते हैं। और हुज़ूर महाराज जी की यहाँ तक दया-मेहर हुई कि अस्पताल के लिये भी उन्होंने डेरे से तीन मील दूर जगह लेकर

दी, ताकि डेरे का जो सत्संग का वातावरण है, उसमें किसी प्रकार का विघ्न न पड़े।

व्यावसायिक कार्यों की इजाज़त नहीं

"लेकिन मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि इतनी संगत देखकर डेरे के नज़दीक लोगों ने बहुत सारी दुकानें खोलना शुरू कर दी हैं। इनसे यही नुक्सान है कि धीरे-धीरे ये एक मेले की शक्ल ले लेती हैं। कोई अण्डों की दुकान खोल लेगा, कोई शराब की दुकान खोल लेगा, कोई मांस की दुकान खोल लेगा, और खूब दुकानदारी शुरू हो जायेगी।

"आप जाकर तीर्थों का हाल देख लें। जिस ध्येय या मकसद को लेकर लोग इकट्ठे होते हैं, उस तरफ किसी का ध्यान ही नहीं है। गवर्नमेंट के पोलिटिकल प्लेटफार्म (राजनैतिक मंच) बन जाते हैं, जितनी राजनैतिक पार्टियाँ हैं उनके अड्डे लग जाते हैं, कुश्तियाँ शुरू हो जाती हैं और मवेशियों की मंडियाँ लगने लगती हैं।

"मुझे तो सिर्फ़ इतना ही डर है कि अगर ये दुकानें ऐसे ही चलती रहीं तो डेरे का जो वातावरण बाबाजी ने पैदा किया था वह कहीं खत्म न हो जाये।

"इसलिये हमेशा डेरे के प्रबन्धक आपसे विनती करते हैं कि आप इन बाहर की दुकानों को बढ़ावा न दें, प्रोत्साहित न करें। लेकिन बदकिस्मती और अफ़सोस की बात तो यह है कि बेचने वाले भी सत्संगी हैं, खरीदने वाले भी सत्संगी हैं, इनको चलाने वाले भी सत्संगी हैं, माल लाने वाले भी सत्संगी हैं, और जो रुपया-पैसा लगा रहे हैं वे भी सत्संगी ही हैं। फिर हममें और तीर्थों में फ़र्क ही क्या रहा है? तीर्थों में जाने पर आप देखेंगे कि वहाँ रुपये-रुपये में, पाँच-पाँच रुपये में प्रसाद बेचा जा रहा है। मैंने सुना है कि यहाँ भी इन दुकानों में तथा सड़कों पर इस वक्त मिसरी और मिठाई के पेकेट रुपये-रुपये में प्रसाद के नाम पर बेचे जा रहे हैं।

"सो अगर आप यहाँ सत्संग का वातावरण रखना चाहते हैं

तो यह सब बन्द होना चाहिये। यह अब संगत के हाथ में है कि यहाँ वह सत्संग का वातावरण रखना चाहती है या इसे धीरे-धीरे मेले का रूप देना चाहती है। डेरे के सेवादारों की और मेरी यही मंशा है कि बाबाजी महाराज ने यहाँ जो सत्संग का बीज बोया है, सत्संग का वातावरण पैदा किया है, वह उसी तरह बना रहे। आगे जैसी संगत की अपनी मर्ज़ी।"

सन्तों के जानी-जान होने में विश्वास

१९७१ की हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की लड़ाई के समय मेरे साथ एक बड़ी दिलचस्प घटना हुई। लड़ाई शुरू हुई तब मैं बम्बई में थी। महाराज जी को उसी समय दिल का दौरा पड़ा था और वे देहली के एक अस्पताल के इन्टेन्सिव-केयर यूनिट में थे। उनके आसपास के सब लोग चिन्तित थे और लड़ाई छिड़ जाने की खबर उनसे छिपा रहे थे। सब जानते थे कि अगर लड़ाई के बारे में महाराज जी को पता चल गया तो वे डेरे जाने का आग्रह करेंगे। पर महाराज जी को किसी तरह पता चल ही गया और उन्होंने डेरे जाने का फ़ैसला किया, क्योंकि उनके ख़याल से ऐसे नाज़ुक समय उनका डेरे में होना ज़रूरी था। डाक्टरों की सफ़र न करने की सलाह के बावजूद, महाराज जी रेल द्वारा देहली से ब्यास चले आये।

मेरी एक मित्र ने मुझे फ़ोन किया कि महाराज जी ब्यास जा रहे हैं। यह सुनकर मैं चिन्तित हो गई; क्योंकि महाराज जी के एक बार ब्यास पहुँचने के बाद उनसे मैं डेरे आने की इजाज़त नहीं ले सकती थी; लड़ाई की वजह से देश की पंजाब से हर तरह की संचार-व्यवस्था काट दी गई थी। मैं दर्शन के लिये बेचैन थी, सो मैंने महाराज जी को मेहता साहिब के यहाँ फ़ोन किया, वे रेलवे स्टेशन जाने की तैयारी कर रहे थे। मैंने उनसे ब्यास आने की इजाज़त माँगी।

महाराज जी ने कहा, "जब तक लड़ाई ख़त्म न हो, मत आना।"

मैंने कहा, "मैं कुछ नहीं जानती। मुझे तो बता दीजिये मैं किस तारीख को आऊँ।" यह बात ५ दिसम्बर की है।

महाराज जी एक क्षण के लिये चुप रहे, फिर बोले, "१७ तारीख को आ जाना।"

उसी वक्त मैंने अपने बम्बई आफिस को फोन किया कि मेरे लिये १७ तारीख की फ्रन्टियर मेल में सीट रिज़र्व करवा दी जाये।

मैनेजर काफ़ी घबरा गया; बोला, "लड़ाई चल रही है और ब्यास पाकिस्तान की सीमा के बहुत निकट है। आप जाने का विचार कैसे कर रही हैं? कोई भी पंजाब नहीं जा रहा है।" लेकिन मेरे ज़िद करने पर उसने मेरे लिये सीट आरक्षित (रिज़र्व) करवा दी।

इस कार्यक्रम के अनुसार मैंने इन्दौर में अपने पति को खबर दी और वे रतलाम में मुझसे उसी रेल में आकर मिल गये, हालाँकि उनके पिता ने उन्हें बहुत रोका।

१७ तारीख को मेरे मैनेजर ने मुझे फोन किया कि लड़ाई अभी चल ही रही है, इसलिये क्या वह मेरा टिकिट वापस करवा दे। मैंने जवाब दिया, "नहीं, महाराज जी ने मुझे १७ तारीख को आने की इजाज़त दी है, इसलिये अब कुछ भी हो मैं जाऊँगी।"

कुछ सत्संगी मित्रों ने भी मुझे सफ़र करने के विरुद्ध सलाह दी। पाकिस्तान का प्रेसिडेण्ट याहया खान अभी भी रेडियो पर घोषणाएँ कर रहा था कि पाकिस्तान के जीतने तक लड़ाई चलती रहेगी, चाहे इसमें छः महीने लग जायें।

दोपहर के बारह बजे मेरे मैनेजर ने मुझे फिर फोन किया कि क्या वह टिकिट रद्द करवा दे? मैंने कहा, "मैं निश्चित ही जाऊँगी। मैं तारीख नहीं बदलूँगी, मुझे तो आने की तारीख महाराज जी ने दी है। उन्होंने यह भी कहा है कि मैं लड़ाई के दौरान नहीं आऊँ—इसलिये मुझे विश्वास है कि लड़ाई मेरे ब्यास पहुँचने से पहले ही खत्म हो जायेगी।"

दोपहर के बाद मेरे मैनेजर ने फिर फोन किया और पूछा कि क्या मैंने खबर सुन ली है? वह बहुत उत्तेजित था। मैंने कहा, "नहीं।" उसने मुझे बताया कि अभी हाल ही रेडियो पर खबर आई है कि युद्ध-विराम की घोषणा कर दी गई है। यह दोपहर को तीन बजे की बात है, एक घण्टे के अन्दर मैं स्टेशन के लिये रवाना हो गई, और महाराज जी की दी हुई तारीख

को ब्यास पहुँच गई। सन्त भविष्य के बारे में सबकुछ जानते हैं, हालाँकि वे हमेशा प्रकट नहीं करते।

डेरे पहुँचने पर मैं श्री रामनाथ मेहता से मिली, उन्होंने मुझे बताया कि देहली में और देहली से ब्यास के रास्ते में क्या हुआ। वे, माताजी (महाराज जी की पत्नी) और डा. साहनी, महाराज जी के साथ ब्यास आये। महाराज जी की रेल रात को ९.३० बजे ब्यास पहुँची। सूरज डूबने के बाद रेल में रोशनी नहीं थी—यहाँ तक कि रास्ते के सारे स्टेशनों पर भी ब्लेक-आउट की वजह से अँधेरा था। जालन्धर स्टेशन पर, जहाँ कि ब्यास से पहले गाड़ी रुकती है, चारों ओर घना अन्धकार था और बम फटने तथा एण्टी-एयरक्राफ़्ट गनों के चलने की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। पहले तो यह कहा गया कि रेल ब्यास नहीं जायेगी, लेकिन थोड़ी देर बाद बम-वर्षा बन्द हो गई और रेल धीरे-धीरे चलते हुए ब्यास पहुँच गई।

महाराज जी को लेने श्री नायडू स्टेशन पर आये हुए थे। महाराज जी को पहियेवाली कुर्सी पर बैठाकर मोटर तक ले जाया गया, और वहाँ से डेरे आ गये। बाद में पता चला कि वह रेलगाड़ी आगे अमृतसर गई ही नहीं।

मेहता साहिब ने मुझसे कहा कि देहली के अस्पताल में लड़ाई की खबर महाराज जी तक न पहुँचे इसकी पूरी कोशिश की गई थी। यहाँ तक कि रेडियो भी उनके पास से हटा दिया गया था। लेकिन शाम को महाराज जी के एक रिश्तेदार, कर्नल सिद्धू उनसे मिलने आये, और वे फ़ौज़ी वर्दी पहने हुए थे। महाराज जी ने उनसे पूछ लिया, "आप तो कुछ महीने पहले ही रिटायर हो चुके हैं। फिर आप वर्दी में कैसे आये हैं ?"

मेहता साहिब ने हमें बताया, "मैंने कर्नल सिद्धू को आँख से इशारा किया और वे शायद समझ भी गये, क्योंकि उन्होंने बिना सवाल का जवाब दिये ही एकदम महाराज जी से यह कहकर इजाज़त चाही कि उन्हें जाने की जल्दी है।"

महाराज जी समझ गये कि युद्ध शुरू हो गया है। उन्होंने उसी समय डाक्टर को बुलवाया और उससे बोले कि वे ब्यास जाना चाहेंगे। लेकिन डाक्टर ने सलाह दी, "एक डाक्टर के नाते मैं आपको अस्पताल से जाने नहीं दे सकता।"

महाराज जी ने उससे दलील करते हुए कहा, "आप पूरी स्थिति नहीं

समझ रहे हैं। यह मेरी ज़िम्मेदारी है कि डेरे के निवासियों के पास रहूँ। यह मेरा कर्तव्य है।"

इसी बीच महाराज जी की पत्नी भी उनके पास गईं और विनती की, "आपको काफ़ी ज़ोर का हार्ट-अटेक हुआ है, और आप अभी भी इन्टेन्सिव-केयर (गम्भीर चिकित्सा-कक्ष) में हैं। आपको इस समय यह थकाने वाली यात्रा नहीं करनी चाहिये। हमारे लिये आपकी तबियत सबसे ज़रूरी बात है। मैं समझ सकती हूँ कि इस समय आपको डेरा पहुँचने की कितनी गहरी चिन्ता है, लेकिन मेहरबानी करके डाक्टरों की राय मान लें।"

महाराज जी ने एक सुन्दर उदाहरण देते हुए उन्हें समझाया, "एक सैनिक की शादी हो रही है और आधी रस्म के बीच में ही उसे युद्ध छिड़ जाने के कारण वापस ड्यूटी पर तुरन्त पहुँचने के आदेश मिलते हैं। वह शादी की रस्म पूरी होने के लिये नहीं रुकेगा, बल्कि फौरन सबकुछ छोड़कर अपनी ड्यूटी पर चल पड़ेगा। इसी तरह इस वक्त मेरी पहली और सबसे बड़ी ड्यूटी डेरे में अपनी संगत के साथ होने की है। मुझे जाना ही होगा। मेरे बारे में कोई चिन्ता मत करो, सबकुछ बड़े महाराज जी की मौज पर छोड़ दो।"

मेहता साहिब डाक्टर को बाहर ले गये और उससे पूरी परिस्थिति के बारे में चर्चा की। डाक्टर ने सब लोगों को सलाह दी कि महाराज जी के मन पर किसी भी तरह का बोझ या तनाव नहीं होना चाहिए। उसने कहा कि महाराज जी को देहली में रहते हुए डेरे की बहुत चिन्ता रहेगी और इस चिन्ता के तनाव से उन्हें कैसे भी बचाना चाहिये। इसलिये उनका इस समय डेरे जाना बेहतर होगा।

आधे घण्टे में ब्लेक आउट की वजह से देहली में अँधेरा छा गया। लेकिन फिर भी महाराज जी उसी समय श्री मेहता के घर आ गये। दूसरे दिन की ट्रेन से सब लोग ब्यास के लिये रवाना हो गये।

अपने करुणापूर्ण और निःस्वार्थ स्वभाव से प्रेरित महाराज जी को अपने स्वास्थ्य की कोई परवाह नहीं थी, केवल संगत के सुख और कुशलता का ख़याल था, डेरे के प्रति अपने कर्तव्य और ज़िम्मेदारी का ख़याल था। वे जानते थे कि डेरे में उनकी उपस्थिति से डेरा-निवासी अपने आपको सुरक्षित महसूस करेंगे।

समर्पण-भावना

एक बार महाराज जी ने इंग्लिश मीटिंग में कहा :

"बड़े महाराज जी ने सन्तमत के उपदेशों के प्रचार के लिये कड़ी मेहनत की थी। उन्होंने हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी इलाकों का और उन दूसरे पहाड़ी स्थानों का जोकि अब पाकिस्तान में हैं, सिर्फ़ घोड़े पर दौरा किया, और कई बार उन्हें पैदल भी चलना पड़ा। उस समय वहाँ सड़कें भी बड़ी ऊबड़-खाबड़ थीं।

"मुझे याद है, एक बार मैं उनके साथ सत्संग के दौरे पर बहोटा गया था। उन दिनों पहाड़ों के प्रोग्रामों में सत्संग का कोई पहले से तय किया हुआ कार्यक्रम नहीं होता था। जहाँ कहीं भी सड़क के किनारे सत्संगी इकट्ठे हो जाते और बड़े महाराज जी से सत्संग करने की विनती करते, वे मंज़ूर कर लेते थे, चाहे वहाँ सत्संग करने का कोई कार्यक्रम नहीं होता था।

"इस सफ़र में एक दिन हम एक छोटी झोंपड़ियों की बस्ती के पास, शाम होते-होते पहुँचे। वहाँ हमें बीस या तीस सत्संगी सड़क के किनारे इन्तिज़ार में खड़े मिले और उन्होंने बड़े महाराज जी से वहीं रात बिताने के लिये निवेदन किया। सो उन्होंने रात को वहीं ठहरने की और अगले दिन सत्संग करने की मंज़ूरी दे दी।

"लाला मुन्शीराम, भाई शादी और मैं बड़े चिन्तित हुए, क्योंकि बड़े महाराज जी के ठहरने के लिये वहाँ कोई उचित स्थान नहीं था। फिर एक सत्संगी आया और उसने अपना मकान खाली करके हुज़ूर के ठहरने के लिये देना चाहा। पहली मंज़िल पर सिर्फ़ एक कमरा था और नीचे दुकान थी जोकि सामान से भरी हुई थी।

"सो ऊपर के कमरे को बड़े महाराज जी के लिये तैयार किया गया। लाला मुन्शीराम और भाई शादी नीचे दुकान में सोये, और मैं बड़े महाराज जी के पलंग के नीचे सोया।

"उन दिनों गाँववालों के मकानों में बाथरूम आदि नहीं होते थे और लोग शौचादि के लिये जंगलों में जाते थे। सो हमने ज़मीन में चार खम्भे गाड़े और उनके आसपास एक सफ़ेद चादर तान दी। फिर हम पानी की दो बाल्टियाँ लाये और पत्थर के टुकड़ों से महाराज जी के लिये हाथ-मुँह आदि धोने के लिये जगह तैयार की।

"सुबह बड़े महाराज जी हमेशा की तरह उठे, नित्य-कर्म से निवृत्त हुए और तैयार होकर सत्संग किया। उन्हें जो भी असुविधा हुई उसके बारे में कुछ भी नहीं बोले। हम लोग सारी रात सो नहीं पाये और सोचते रहे, 'ये लोग महाराज जी को इतनी तकलीफ़ कैसे देते हैं'?

"लेकिन बड़े महाराज जी तो अपनी संगत और उनके निर्मल प्रेम से बहुत खुश थे। सन्त तो प्रेम से बँधे रहते हैं; महलों या सुख-सुविधाओं से नहीं। इस प्रकार बड़े महाराज जी ने पहाड़ों में दूर-दूर तक अपना सन्देश पहुँचाया। अब उनका बोया हुआ बीज फल दे रहा है और आज इन्हीं पहाड़ों में हज़ारों सत्संगी हैं।"

सन्तोष की भावना

महाराज जी की इन्दौर की एक यात्रा में उनके साथ मि. सैम बूसा (महाराज जी के दक्षिण अफ़्रीका में प्रतिनिधि) आये थे। शाम को महाराज जी ने सैम से कहा कि वे सत्संग-भूमि पर एक चक्कर लगा आयें और देखें कि स्थानीय सत्संग-केन्द्र ने व्यवस्था कैसी की है।

रात के करीब दस बजे थे जब सैम, एक सेवादार के साथ, सत्संग-भूमि पर पहुँचे। अधिकांश सत्संगी सो चुके थे। सैम को सब जगह घुमाया गया, और सारे तंबू, शामियाने, और संगत के सोने की जगह भी उन्होंने देखी। वह फ़रवरी की एक बहुत ठण्डी रात थी और और संगत इतनी ज़्यादा थी कि शेड, तंबू , शामियाने आदि सब भर चुके थे। इसलिये कई जवान और बूढ़े सत्संगी पेड़ों के नीचे सो रहे थे, और उनके पास सूती चादरों के सिवाय ओढ़ने को और कुछ नहीं था।

सुबह महाराज जी ने सैम से पूछा कि क्या वे पूरे सत्संग-भूमि का चक्कर लगा आये हैं? सैम ने जवाब दिया, "हाँ महाराज जी, मैंने चक्कर लगाया। पर मैं बहुत दुःखी हुआ जब मैंने लोगों को तंबुओं में ज़मीन पर सोते देखा, यहाँ तक कि वे खुले में पेड़ों के नीचे भी सो रहे थे। काफ़ी सख़्त सर्दी थी, लेकिन उनके पास केवल सादी सूती चादरें थीं या दरियाँ थीं जिन्हें वे ओढ़े हुए थे। मैं तो हैरान रह गया, उनके रहने का स्तर तो बहुत ही नीचा है।"

महाराज जी हलकी मुस्कराहट के साथ बोले, "हाँ सैम, उनके रहने का स्तर बहुत नीचा है, पर उनके सन्तोष का स्तर बहुत ऊँचा है।"

महाराज जी के ऐसे सरल कथनों में बड़ा गहरा और गूढ़ सन्देश होता है।

डेरे के पास सैनिक डिपो

एक बार, शाम की मीटिंग में महाराज जी ने पंजाब में फैले वर्तमान आतंकवाद के बारे में कहा, "डेरे के आसपास आतंकवादी छाये हुए हैं, रोज़ इतनी हत्याएँ और लूट-पाट हो रही है; लेकिन बाबाजी महाराज की दया-मेहर से डेरा तपते हुए रेगिस्तान के बीच शान्ति के एक हरे-भरे बगीचे के समान है।

"डेरे से ब्यास जाने वाली सड़क पर सेना का एक सुरक्षित शस्त्रागार है, और इस सड़क पर सेना का आना-जाना बराबर चलता रहता है। इस वजह से आतंकवादी यहाँ से दूर रहते हैं। पाकिस्तान के साथ हुई दोनों लड़ाइयों के समय मेरे पास कई सत्संगी आये और कहने लगे कि इस सेना के शस्त्रागार के कारण हमारे डेरे पर बम गिरने का खतरा है। पर मैंने जवाब दिया, 'किसे मालूम हम इसकी वजह से ही सुरक्षित हैं'।"

मुझे सरदार बहादुर जी द्वारा इस शस्त्रागार के बारे में की हुई बड़ी महत्वपूर्ण टिप्पणी याद आ गई जो महाराज जी ने हमें एक बार सुनाई थी। बाबाजी के शरीर त्यागने के बाद बड़े महाराज जी ने धीरे-धीरे खेती की ज़मीनें खरीदनी शुरू कर दीं। उन्होंने डेरे के आसपास जहाँ भी ज़मीन मिली, खरीदी। यह ज़रूरी नहीं था कि ज़मीनें डेरे से लगी हुई हों। फिर सरदार बहादुर जी के समय में एकीकरण-कानून (चकबन्दी) आया, जिसमें किसानों की ज़मीनों का एक स्थान पर एकीकरण किया गया। डेरे को इससे बड़ा लाभ हुआ और इससे बस्ती के बनने और बढ़ने का क्रम शुरू हो गया। लेकिन इससे पहले १९४९ में डेरे की खेती की ज़मीन का एक बहुत बड़ा हिस्सा शस्त्रागार के लिये ले लिया गया। साथ ही आसपास के गाँवों के गरीब किसानों की ज़मीनें भी ले ली गईं।

उस वक्त किसान लाला मुन्शीराम के पास आये और बोले, "कृपया

सरदार बहादुर जी से हमारी ओर से विनती कीजिये कि वे सरकार से दरख़्वास्त करें कि हमारी ज़मीनें छोड़ दी जायें। डेरे की भी तो बहुत-सी ज़मीनें ले ली गई हैं।''

लाला मुन्शीराम ने सरदार बहादुर जी के सामने गाँव वालों की प्रार्थना रखी। दीवान दरियाईलाल कपूर और प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल भी उस समय वहाँ थे। लेकिन सरदार बहादुर जी ने कहा, ''फ़िक्र मत करो, हमारे चौकीदार आ गये हैं, वे भविष्य में बहुत काम आयेंगे।''

सन्तों का आने वाली परिस्थितियों को जानने का अपना ही तरीका होता है, उनका सामना करने की ज़रूरत पड़ने से बहुत पहले ही उनसे निपटने का तरीका भी वे निकाल लेते हैं। वे आने वाली घटनाओं को अच्छी तरह जानते और समझते हैं, और कभी-कभी इनका इशारा भी कर देते हैं, जिसे उस समय समझना आसान नहीं होता।

संगत के प्रति महाराज जी का ध्यान

डाक्टरों ने महाराज जी के १९७१ के दिल के दौरे के बाद उनके सत्संग-कार्यों पर काफ़ी रोक लगा दी थी। इसलिये महाराज जी जब सत्संग के लिये इन्दौर आये तो डाक्टर टी. एन. माथुर उनके साथ थे। श्री के. एल. खन्ना ने, जोकि उस समय डेरा के सेक्रेटरी थे, डाक्टर माथुर से कहा कि वे महाराज जी के स्वास्थ्य का पूरा ख़याल रखें और उन्हें एक दिन में एक से ज़्यादा नामदान की बैठक न करने दें।

महाराज जी ने इन्दौर के उस दौरे में नामदान के लिये दो दिन रखे थे और इन्दौर के बाद का अगला कार्यक्रम भी तय हो चुका था। परन्तु जब नामदान शुरू हुआ तो पता चला कि नामदान के उम्मीदवार बहुत ज़्यादा थे, और चार बैठकों में ही नामदान समाप्त हो सकता था, दो में नहीं। जब महाराज जी को इस स्थिति का पता लगा, वे बोले, ''मैं गाँव वालों को निराश नहीं कर सकता, क्योंकि वे इतने गरीब हैं कि डेरे तक आने का खर्च नहीं उठा सकते।'' इसलिये उन्होंने कहा कि वे दो बैठकें रोज़ करके नामदान प्रोग्राम के अनुसार दो दिन में पूरा कर देंगे।

डाक्टर माथुर ने जब महाराज जी का निर्णय सुना तो विरोध किया और

महाराज जी से अर्ज़ की, "आपके अभी हुए दिल के दौरे को ध्यान में रखते हुए मैं आपसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि दिन में दो नामदान की बैठकें न करें।"

महाराज जी ने बड़े धैर्य के साथ उनकी बात सुनी, तथा प्रेम और मिठास से कहा, "डाक्टर साहिब, जब मछुआ अपने जाल में मछलियों को आकर्षित करने के लिये पानी में चने फेंकता है और अगर उसके जाल में मछलियाँ बहुत ज़्यादा आ जाती हैं, तो वह यह कहकर जाल को खींचने से इंकार नहीं करता कि जाल बहुत भारी हो गया है। यह तो उसे पानी में चने डालने से पहले सोचना चाहिये था। अब तो पूरा बोझ उठाने के सिवाय उसके पास कोई चारा नहीं है। सो अब इन आत्माओं को नाम देने के सिवाय मेरे पास कोई रास्ता नहीं है। फ़िक्र न करें, मैं ठीक रहूँगा। बड़े महाराज जी का काम करने में मुझे कभी थकान नहीं होती। मुझे तो अपना कर्तव्य करने में खुशी मिलती है।"

संगत को कोई शिकायत नहीं

सेवा और उसके फल या पुरस्कार के सम्बन्ध में शाम की मीटिंग में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए महाराज जी ने कहा, "प्रेमी कभी माँगता नहीं, प्रेमी कभी हिसाब-किताब नहीं करता।"

पुरानी बातें याद करते हुए महाराज जी ने कहा, "मुझे डेरे आये पैंतीस वर्ष से ज़्यादा हो गये हैं, इस समय में मुझे कई अनुभव हुए हैं। और संगत की भावनाएँ, संगत का प्रेम ऐसी अनमोल वस्तु है जिसका वर्णन मैं कर नहीं सकता।" महाराज जी के शब्द प्रेम और सराहना की भावना से ओत-प्रोत थे :

"सन १९५५ में लंगर बहुत छोटा था, उसका सिर्फ़ एक छोटा-सा दरवाज़ा था, और बड़े महाराज जी के जन्म-दिन के भण्डारे पर दो लाख सत्संगी आ जाते थे। इतने लोगों को खाना खिलाने में रात के दो बज जाते थे। यह देखकर रात को मैं अपने सोने के कमरे में बेचैन होता और सोचता कि क्या करें और बड़े महाराज जी की याद में आई हुई संगत की बराबर देखभाल कैसे करें।

"इस समस्या पर ट्रस्ट की वार्षिक सभा में चर्चा हुई और श्री आहलूवालिया ने, जोकि उस समय सेक्रेटरी थे, सुझाव रखा कि सारे भण्डारों को बन्द कर दिया जाये ताकि एक समय में इतनी भीड़ इकट्ठी ही न हो। श्री आहलूवालिया ने कहा, 'संगत जब आना चाहे तब आये ; इससे समस्या हल हो जायेगी, क्योंकि तब भण्डारे के समय जैसी भीड़ होगी ही नहीं'।"

महाराज जी ने बताया कि इस चर्चा के दौरान वे खामोश रहे। उन्होंने कहा, "सेक्रेटरी के भण्डारे बन्द करने के प्रस्ताव की खबर संगत को लग गई। अगले दिन सत्संगियों ने श्री आहलूवालिया को उनके घर के पास घेर लिया और कहा, 'क्या हमने कभी किसी बात की शिकायत की है? क्या हमने भोजन समय पर न मिलने पर असन्तोष ज़ाहिर किया है? सोने के लिए जगह न मिलने के बारे में कुछ कहा है? हम तो बहुत खुश हैं। जब हमें कोई शिकायत नहीं तो आप क्यों भण्डारे बन्द करने का सुझाव दे रहे हैं? आप हमें दर्शन और सत्संग से क्यों वंचित करना चाहते हैं?'

"अगले दिन श्री आहलूवालिया मेरे पास आये और बोले, 'मुझे अफ़सोस है कि मैंने भण्डारे बन्द करने का प्रस्ताव मीटिंग में रखा, मैं वह प्रस्ताव वापस लेता हूँ।' मैंने सिर्फ़ इतना ही कहा, 'मुझे खुशी है कि आप इसे समझ गये हैं'।"

कुछ समय खामोश रहने के बाद महाराज जी बोले, "संगत को किसी असुविधा की चिन्ता नहीं है। लोग कीचड़ भरी ज़मीन पर सो जायेंगे, बारिश में खुले में सो जायेंगे, पर यहाँ आना कभी बन्द नहीं करेंगे। बाबाजी ने इस डेरे की नींव प्रेम और सेवा पर रखी है। मैंने इस प्रेम को लगातार बढ़ते देखा है, और अब भी यह बढ़ता ही जा रहा है।

"मंड (जहाँ नदी बहा करती थी) को ही देखो। यह जगह जंगली झाड़ियों, ठूँठों और लम्बी घास से भरी हुई थी और यहाँ केवल दलदल था, ऊँची-नीची ज़मीन थी। संगत उन ठूँठों और लम्बी घास को लंगर में ईंधन के लिए काटती थी। आज संगत ने इस जगह को समतल भूमि में बदल दिया है और अब यहाँ खेत, सड़कें और पेड़ हैं।

"आज जहाँ लंगर है, वहाँ किसी समय गहरे खड्ड थे। संगत ने उन्हें भर कर बराबर कर दिया है। आज जहाँ लंगर का बड़ा शेड है और वे मैदान जहाँ बड़े-बड़े पेड़ लगे हुए हैं, वहाँ एक बड़ा गहरा नाला था, और जहाँ आज

बड़ा 'मल्टी-परपज़ शेड' है, वहाँ भी किसी समय नाला बहता था। संगत ने इन सबको पाँच-छः फीट मिट्टी से भर कर समतल कर दिया है। यह है सेवा। उस समय का डेरा आपने देखा होता तो यह सब समझ पाते।

"जब अस्पताल की ज़मीन ली गई तो मुझसे कहा गया कि वहाँ इतने ज़्यादा पेड़ हैं कि उन्हें निकालना बहुत मुश्किल है। मैं वहाँ मौके पर गया और उनमें से कुछ पेड़ों को हटाने के लिए कहा। इसके बाद मैं सिकन्दरपुर चला गया। वापस आने पर मैंने देखा कि करीब सौ ट्रैक्टर और ट्रेलर संगत अपने खेतों से ले आई थी और करीब एक हज़ार सत्संगी पेड़ों को जड़ों से खोद रहे थे, और उनकी लकड़ी ट्रेलर पर लादकर लंगर में ले जा रहे थे। किसी ने उनसे यह करने को नहीं कहा। लेकिन वे अपने आप आ गये और काम करने लगे। यह है सेवा।

"संगत यह सब किसी पुरस्कार या फल की उम्मीद से नहीं करती। वह तो प्रेम से प्रेरित होकर करती है। सेवा प्रेम है; सत्संगी बदले में कभी कुछ नहीं माँगते, और उन्हें चाहे जो असुविधा हो, वे कभी कोई शिकायत नहीं करते। वे हमेशा सन्तुष्ट रहते हैं, हमेशा सेवा करने में खुश रहते हैं।"

यह प्रेम की वह शक्ति है जिसके बीज स्वयं सतगुरु बोते हैं और जिन्हें स्वयं ही अंकुरित तथा प्रफुल्लित करते हैं—विश्व में इस प्रेम के तुल्य और कोई शक्ति नहीं है।

डाक्टर स्मिथ को पत्र

गद्दीनशीनी के कुछ ही दिन बाद नवम्बर १९५१ में डाक्टर पियरे स्मिथ को महाराज जी द्वारा लिखा गया एक पत्र :

प्रिय बन्धु,

राधास्वामी। आपके कृपापूर्ण पत्र के लिये हार्दिक धन्यवाद। आपकी भावनाओं और शुभ कामनाओं की मैं बहुत कद्र करता हूँ।

सन्तमत के ऊँचे सिद्धान्तों को अंग्रेज़ी जानने और समझने वाले लोगों तक सरल रूप में पहुँचाने के लिए मैं ज़रूर अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रयत्न करूँगा। पर मेरे प्रिय मित्र, मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि मुझे अपने बारे में कोई भ्रम नहीं हैं।

मैंने यह उच्च पद केवल महाराज जी की आध्यात्मिक सहायता के बल पर और संगत के उमड़ते प्रबल प्रेम के आसरे ही स्वीकार किया है।

उस महान रूहानी हस्ती—बाबा सावनसिंह जी—की तो बात ही क्या है, हमारे पिछले सतगुरु सरदार बहादुर बाबा जगतसिंह जी का व्यक्तित्व भी अभूतपूर्व था। उन्होंने ऐसा निर्मल, बेदाग और पवित्र जीवन व्यतीत किया कि जब इन महान सन्तों का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर आते देखता हूँ तो अपने आपको बहुत कमज़ोर पाता हूँ। उनके हुक्म ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया, क्योंकि मैं यहाँ मौके पर नहीं था और दाह-संस्कार के बाद पहुँचा। वास्तव में मेरे लिये कोई चारा नहीं था और मैंने नम्रता के साथ यह पद आप जैसे मित्रों की सहायता और सहयोग की आशा में स्वीकार किया है। ये सब बातें दस्तारबन्दी की रस्म पर इकट्ठे हुए करीब साठ हज़ार लोगों के सामने मैंने अपनी छोटी-सी तकरीर में बिलकुल स्पष्ट कर दी थीं।

मुझे यह जानकर बड़ी खुशी होती है कि अभी भी आप डेरे को बड़े प्रेम से याद करते हैं। मुझे यह कहने की ज़रूरत नहीं कि हम सब आपकी भावनाओं की बहुत कद्र करते हैं और आपके प्रति भी हमारी प्रेम की भावनाएँ हमेशा जैसी ही हैं। मैं आशा करता हूँ कि आपके लिये निकट भविष्य में यहाँ आना सम्भव हो सकेगा। आशा है कि आपका घुटना अब ठीक होगा और आपका स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। आप भजन-सुमिरन बराबर कर रहे होंगे, आख़िर यही सबसे महत्वपूर्ण कार्य है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि..........नामदान की बख़्शिश का, जो सरदार बहादुर जी ने उन्हें प्रदान की थी, सदुपयोग नहीं कर पाये। उन्होंने यहाँ भी लिखा था और उन्हें उचित जवाब दे दिया गया था। इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं करना है।

मेरे मन में आपकी पिछली यात्रा की यादें अभी भी ताज़ा

हैं; और फिर से ऐसी ही सुखद भेंट की मैं उत्सुकता के साथ राह देख रहा हूँ।

आपकी कृपा और प्रेमपूर्ण सहयोग के लिए धन्यवाद।

आपका,
प्रेम और श्रद्धा में,

१९८८ की बाढ़

सितम्बर १९८८ में पंजाब और उत्तर भारत में भयंकर वर्षा हुई। ऐसी वर्षा पहले कभी नहीं हुई थी। सारी नदियाँ सीमा से ज़्यादा उमड़ पड़ीं, जिसके फलस्वरूप बाढ़ आ गई। और यह सब इतनी जल्दी हुआ कि लोगों को पता भी नहीं चला कि बाढ़ आई है। हज़ारों लोग मर गये, अनेक बेघर हो गये, मकान, सामान और अनाज का इतना नुक्सान हुआ कि वे किसी काम के न रहे और खड़ी फ़सलें बरबाद हो गईं। डेरा भी इस बाढ़ की चपेट से नहीं बचा, लेकिन नुक्सान ज़्यादा नहीं हुआ, और जो भी हुआ, उसे ठीक किया जा सकता था।

भारतीय अखबार इस विनाशकारी बाढ़ के समाचारों से भरे हुए थे, और जब महाराज जी सत्संग और अंग्रेज़ी मीटिंग के लिए देहली आये, तब कई सत्संगियों को डेरे में आई बाढ़ के बारे में बहुत चिन्ता थी। इसलिए जब एक सत्संगी ने महाराज जी से पूछा कि क्या डेरे में बाढ़ से कोई नुक्सान हुआ है तो महाराज जी ने जवाब दिया:

> "बड़े दुर्भाग्य की बात है कि पिछले सप्ताह हमें बेवक्त की बारिश और ज़बरदस्त बाढ़ का सामना करना पड़ा। हम अभी भी बाढ़ से हुई परेशानियों का सामना कर रहे हैं। डेरा रेल, सड़क, टेलीफोन, और हर तरह से चारों ओर से कट गया था। एक सप्ताह से ज़्यादा समय तक टेलीफ़ोन नहीं चले, रेलें अभी भी ब्यास नहीं जा रही हैं और सड़क आज ही खुली है। सौभाग्य से, हवाई जहाज़ चल रहे थे, इसलिये मैं यहाँ आपके पास आ सका हूँ।
>
> "ब्यास नदी में इतना पानी आ गया था कि डेरे के नीचे के हिस्से पाँच फ़ीट पानी में थे। मल्टी-परपज़ शेड, महिलाओं का

शेड और महाराज सावनसिंह सराय का निचला हिस्सा चार से साढ़े चार फ़ीट पानी में थे। खुशकिस्मती से पानी तो उतर गया है, पर उसके निशान अभी भी हैं। सारे खेत और फ़सलें पानी में डूबी हुई थीं। अनाज की फ़सल कट चुकी थी, इसलिए उसकी चिन्ता हमें नहीं थी। डेरे की किसी इमारत को कोई नुक्सान नहीं हुआ, सिवाय नीचे की दीवार के, जो गिर गई और जिसकी जगह अब हम नई दीवार बना रहे हैं। सेवादार बहुत व्यस्त हैं। असल में मुझे इस समय वहाँ रहना चाहिये था, लेकिन यहाँ की संगत और आप लोगों से किये हुए वादे को पूरा करना भी ज़रूरी था।

"संगत को काफ़ी तकलीफ़ हुई, क्योंकि लोग २५ सितम्बर के मासिक सत्संग के लिए डेरे आ चुके थे। बारिश २३ या २४ तारीख को शुरू हुई और २५ तारीख की रात को दस बजे अचानक नदी का पानी बढ़ गया और डेरे में दो फीट तक पानी भर गया। हमें डेरे के बाहर नदी की तरफ खड़ी तीन सौ ट्रकों और बसों को फौरन ऊपर लाना पड़ा। सेवादारों ने सारी रात काम किया और सब ट्रकों और बसों को पानी में डूबने से बचा लिया। हमें उन सब लोगों को जो डेरे के निचले हिस्सों में थे, ऊपर सुरक्षित स्थानों में लाना पड़ा, जहाँ कि काफी जगह है। हमने एक नया शेड बनाया है जो करीब-करीब तैयार हो गया है। मैंने वहीं २५ तारीख को सत्संग किया। सो संगत को २५ तारीख की रात को वहाँ ले आया गया।

"हमने बहुत-सा गेहूँ अपने सालाना खर्च के लिए भर रखा था। उसमें से कुछ डेरे के निचले हिस्से में बने गोदामों में रखा था। वह भीग कर फूल गया और उसमें से बदबू आने लगी। अब उसे सारे डेरे में सड़कों पर फैला दिया गया है, और वह धूप में सूख रहा है। आशा है कि उसे बचा लिया जायेगा। अगर नहीं बचाया जा सका तो उसे जानवरों के लिए बेच देंगे, और हमें नया गेहूँ खरीदना होगा। लेकिन मालिक की दया-मेहर से हमारे पास लंगर के लिए काफी गेहूँ मौजूद है। किसी भी प्रकार

की गेहूँ की कमी नहीं होगी। इस बाढ़ में हमारे यहाँ किसी की भी जान नहीं गई, और हमारे पास मवेशी हैं ही नहीं। हमारे ट्रेक्टर और दूसरी खेती की मशीनें पानी में डूब गई थीं। लेकिन वे सब सुधार ली जायेंगी और इसमें कोई परेशानी नहीं होगी।

"अपनी ज़िन्दगी में (मैं अब ७२ साल का हूँ) मैंने डेरे में कभी ऐसी बाढ़ नहीं देखी। लेकिन मालिक की दया-मेहर से हम सब ठीक हैं। संगत ने इस सबका सामना बड़ी हिम्मत से किया है। वे चारों ओर से घिर गये थे, इसलिये उन्हें एक सप्ताह डेरे में ही रहना पड़ा। उनमें से कई तो बड़े खुश थे कि उन्हें डेरा छोड़कर नहीं जाना पड़ रहा है। नामदान चलता रहा। करीब ८००० लोगों को नाम मिला। अब सड़कें कई तरफ से खुल गई हैं। रेलें अभी चालू नहीं हुई हैं, इसलिये करीब-करीब सब लोगों को डेरे से बाहर सड़कों द्वारा ही जाना पड़ा है।

"फिर भी अगर आप वहाँ के स्थानीय अखबारों को पढ़ेंगे, तो आपको सारे पंजाब का बड़ा दर्दनाक वर्णन मिलेगा। मैं तो आपको डेरे के बारे में ही बता सकता हूँ; लेकिन पंजाब के दूसरे हिस्सों की हालत बहुत खराब है। वहाँ की स्थिति भयानक है। गाँव पानी से घिरे हुए हैं। सरकार लोगों की तकलीफ़ें दूर करने की पूरी कोशिश कर रही है, परन्तु हानि इतनी अधिक है कि मैं नहीं समझता कि कोई भी सरकार जितनी ज़रूरत है जनता की उतनी मदद कर सकती है। शासन लोगों तक हेलीकाप्टर्स से पहुँचने की कोशिश कर रहा है। पर उनके मवेशियों का क्या होगा ? उनके खाने-पीने के सामान का क्या होगा ? उनके कपड़े और दूसरी चीज़ों का क्या होगा ? ये चीज़ें तो बिलकुल बचाई ही नहीं जा सकतीं। उनमें से कई तो अपने मकानों की छतों पर असहाय पड़े हैं, बिना खाये-पीये, और उनके ऊपर कोई छत भी नहीं है। ये लोग तो बाढ़ से हुई हानि से करीब-करीब तबाह हो गये हैं; फिर बाढ़ के बाद फैलने वाली हैज़ा आदि गम्भीर बीमारियों का खतरा तो है ही।

"सो जो भाग्य में लिखा है उसका सामना तो करना ही

पड़ेगा। जिस ज़िले में मेरे खेत हैं, वह भी पानी द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है, फिर भी स्थिति नियन्त्रण में है। अब पानी उतर रहा है और नदी शान्त है।"

* * *

अक्तूबर १९८८ की एक शाम को हम महाराज जी के पास बैठे थे। बाढ़ से हुई हानि ही सबके विचारों में थी। श्रीमती भरतराम ने महाराज जी से पूछा, "डेरे को बाढ़ से कितना नुक्सान हुआ होगा? यह कहा जा रहा है कि लाखों रुपयों का नुक्सान हुआ है।"

महाराज जी के जवाब से स्पष्ट होता है कि उनकी दृष्टि में महत्व मनुष्य का है, रुपये या सम्पत्ति का नहीं। वे बोले, "बहन जी, मैं तो यह जानता हूँ कि डेरे में किसी जान का नुक्सान नहीं हुआ। मेरे लिये तो यही सबसे महत्वपूर्ण है।"

वास्तव में, न केवल डेरे में ही सबको अच्छी तरह सँभाला गया, बल्कि महाराज जी ने गवर्नर के बाढ़-राहत-कोश में दस लाख रुपये दिये। इसके सिवाय ट्रकें भरकर रज़ाइयाँ और कपड़े महाराज जी ने उन खेमों में भेजे जहाँ बाढ़-पीड़ितों को रखा गया था।

मानव-कल्याण की गहरी भावनाओं से प्रेरित महाराज जी को सबसे अधिक ख़याल और फ़िक्र लोगों के दुःख-दर्द का था, अन्य बातें तो बाद में आती हैं। मानसिक या शारीरिक हर तरह के संताप से पीड़ित लोगों के लिये महाराज जी के हृदय में हमेशा अपार करुणा और दया रहती है।

दयालु किन्तु दृढ़

कुछ सतसंगी अपने मृत रिश्तेदारों के फूल या अस्थियाँ डेरे लाकर ब्यास नदी में प्रवाहित करते हैं। जिस मार्ग से महाराज जी सत्संग के लिये जाते हैं उस पर वे लोग अस्थियों के पात्र लेकर सड़कों के आसपास खड़े हो जाते हैं ताकि महाराज जी की एक झलक मिल जाये। जब भी महाराज जी इन दुःखी व्यक्तियों को देखते हैं, उनकी आँखें भर आती हैं, हालाँकि निजी रूप से वे उन्हें नहीं जानते। महाराज जी किसी का भी दुःख नहीं देख सकते।

महाराज जी, अति कोमल तथा मृदु-हृदय और प्रेम से भरपूर होते हुए भी, अनुशासन-प्रिय हैं। किसी भी कार्य में वे अनुशासन-हीनता न तो पसन्द करते हैं और न ही सहन। डेरे की व्यवस्था इसका एक बहुत बड़ा उदाहरण है। भण्डारों के समय संगत तीन या चार लाख से ज़्यादा होती है, फिर भी डेरे में हर कार्य सुचारु और व्यवस्थित रीति से होता है। सत्संग में पूरी शान्ति रहती है, लाखों लोग लंगर में खाना खाते हैं और डेरे में रहते तथा सोते हैं, लेकिन किसी प्रकार की कोई अव्यवस्था या गड़बड़ नहीं होती। हर तरह के वाहनों का आवागमन बड़ी अच्छी तरह सहज रूप से चलता रहता है। इतने बड़े समुदाय के बावजूद भण्डारे के बाद सड़कें और पूरी बस्ती बड़ी साफ़ रहती है। कहीं कचरे का एक तिनका भी पड़ा हुआ नज़र नहीं आता। बेशक इस सब इन्तिज़ाम के लिए सेवादारों के दल हैं, लेकिन केवल मनुष्य के प्रयत्न ही इतने बड़े उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर सकते।

महाराज जी की मौजूदगी वह जादू है, वह एकमात्र शक्ति है, जिससे सारे काम घड़ी की तरह नियमपूर्वक चलते हैं। उनका व्यापक प्रभाव सबके हृदय और मन में एकता की भावना जगाता है और वही सबको साथ रखने वाली एकमात्र वस्तु है। कोई साधारण व्यक्ति ऐसी स्वार्थहीन सेवा की भावना उत्पन्न नहीं कर सकता, और न ही इतने विशाल समूह के अन्तर में इतना गहरा प्रेम जाग्रत कर सकता है। यहाँ लोगों के चेहरों पर और उनकी आँखों में यह प्रेम निरन्तर झलकता दिखाई देता है। केवल कोई महान रूहानी शक्ति ही ऐसा आन्तरिक प्रेम और भ्रातृ-भाव प्रेरित कर सकती है।

इन सब बातों ने आज डेरे को महाराज जी के आदर्शों के अनुरूप बना दिया है। यहाँ का सारा जीवन महाराज जी के आसपास घूमता है। इसलिए अनुशासन, सफ़ाई, ख़ूबसूरती और प्रेम सब उनकी अलौकिक शक्ति का प्रतिबिम्ब है।

आतंक-पीड़ितों को शरण–१९८७-८८

परिस्थितियों के चक्र से पीड़ित व्यक्तियों के प्रति महाराज जी की गहरी सहानुभूति का एक और उदाहरण है, आतंकवादियों द्वारा सताए गये व्यक्तियों को डेरे में शरण देना। पंजाब में हज़ारों लोग थे जिनके घर के रोटी-रोज़ी कमाने वाले व्यक्तियों की आतंकवादियों ने निर्दयतापूर्वक हत्या

कर दी थी। उन्हें अपने घरों से भागना और अपनी सारी सम्पत्ति से हाथ धोना पड़ा।

ऐसे लोगों में से कई जब भाग कर डेरे आये तो महाराज जी ने उन्हें शरण दी। एक समय करीब चौदह सौ ऐसे लोग यहाँ थे, जोकि करीब सौ गाँवों से निकल कर आये थे। उनमें सिख, हिन्दु , मुसलमान सत्संगी और गैर-सत्संगी थे ; सबसे समान व्यवहार किया गया। भोजन, दूध, रहने का स्थान, बिस्तर, दवाइयाँ और हर तरह की आवश्यक सुविधाएँ उनको दी गईं। उनके बच्चों के लिये डेरे ने एक अल्पकालीन स्कूल भी खोला।

बिना किसी तैयारी के डेरे में खोला गया यह शरणार्थी शिविर आसपास के ऐसे शिविरों में सबसे सुव्यवस्थित था। सेवा में अर्पित प्रेमी सेवादारों ने निःस्वार्थ भाव से उनकी देख-भाल की। काफ़ी समय तक ये शरणार्थी डेरे में रहे, जब तक कि सरकार ने फिर से उनको बसाने की नई योजना बना कर उनकी देखभाल का इन्तिज़ाम अपने हाथ में नहीं लिया।

यह घटना १९४७-१९४८ की याद दिलाती है, जब देश के विभाजन के समय बड़े महाराज जी ने डेरे को सबके लिये खोल दिया था और शरणार्थियों के रहने और खाने की पूरी व्यवस्था कर दी थी। बड़े महाराज जी के हुक्म से लंगर में बना गर्म खाना रोज़ ब्यास रेलवे स्टेशन भेजा जाता था, जिसे सेवादार पाकिस्तान से आने और वहाँ जाने वाले सभी शरणार्थियों को खिलाते थे ; चाहे वे हिन्दू हों, मुसलमान हों या सिख, सत्संगी हों या गैर-सत्संगी। सन्त सबसे प्रेम रखते हैं और पीड़ित इनसानों की, बिना जात-पाँत के, किसी भेदभाव के, सहायता करते हैं।

जो लोग महाराज जी के निकट हैं वे उनकी करुणा और कोमल-हृदयता को भली-भाँति जानते हैं। महाराज जी रोज़ रेडियो पर समाचार सुनते हैं, और अक्सर दोपहर और शाम के भोजन के समय रेडियो पर समाचार आते हैं। किसी दुर्घटना की या निर्मम हत्याओं की खबर सुनकर, चाहे वह दुनिया में कहीं भी हुई हों, परिवार के लोगों ने महाराज जी को अपने सामने से खाने की प्लेट हटाते हुए देखा है।

* * *

एक दिन बहुत गर्मी और ऊमस थी। मौसम की बात करते हुए

महाराज जी बोले, "गर्मी के दिनों में मैं पहाड़ों के ठण्डे स्थानों पर चला जाता था या डलहौज़ी के लिये निकल पड़ता था, जहाँ बड़े महाराज जी की कोठी है, या कभी-कभी अपने फार्म पर सिरसा चला जाता था; लेकिन अब मैं नहीं जा पाता।

"पिछले महीने ही मैं कुछ दिनों के लिये सिकन्दरपुर अपने फार्म पर गया था। लेकिन अगले ही दिन दोपहर को ब्यास के पास के गाँव में आतंकवादियों की कुछ हलचल हुई। डेरे से मुझे एकदम वापस आने के लिये फोन आया। इसलिये दूसरे दिन सुबह ही मैं सिकन्दरपुर से रवाना हुआ और दोपहर को बारह बजे से पहले यहाँ आ गया।

"पंजाब की परिस्थिति की वजह से डेरे में मेरी मौजूदगी ज़रूरी है। मेरी अपनी सुरक्षा के लिये नहीं, बल्कि संगत की सुरक्षा के लिये। जब मैं यहाँ रहता हूँ तो सब सचेत रहते हैं, सेवादार ज़्यादा चौकन्ने रहते हैं और डेरे में रहने वाले महसूस करते हैं कि वे सुरक्षित हैं। ऐसा नहीं है कि मैं कुछ ख़ास करता हूँ, लेकिन यह मेरा कर्तव्य है कि मैं ऐसे समय पर संगत के साथ रहूँ।

"इसलिये मैं कहीं नहीं जा सकता। मेरे दरवाज़े पर शस्त्र लिये हुए पहरेदार रहते हैं। मैं जहाँ जाता हूँ वे मेरे साथ जाते हैं। पर मैं खुश हूँ, सन्तुष्ट हूँ।

"सर्दी हो या गर्मी कोई फ़र्क नहीं पड़ता। हमें दूसरों को खुश करने में, उनकी सेवा करने में खुशी होनी चाहिये।"

वकालत की शुरूआत

एक दिन महाराज जी अपने कालेज के दिनों की बात कर रहे थे। उनका विचार था कि कानून की परीक्षा पास करने के बाद, लेकिन सिरसा में वकालत शुरू करने से पहले, वे हिन्दुस्तान में घूमकर कुछ दर्शनीय स्थान देखेंगे। लेकिन जब महाराज जी ने परीक्षा पास की उसी समय उनके एक कालेज के मित्र सिरसा में न्यायाधीश बनकर आ गये और उन्होंने महाराज जी के पिताजी को सुझाव दिया, "अब मैं यहाँ आ गया हूँ, इसलिये चरन के लिये यह अच्छा होगा कि वह वकालत अभी शुरू कर दे, ताकि मैं भी उसकी मदद कर सकूँ।"

महाराज जी के पिताजी को सुझाव अच्छा लगा और उन्होंने महाराज जी को सिरसा में ही रहने की राय दी। उन्होंने कहा कि वे बड़े महाराज जी द्वारा बनाये गये सत्संग-घर से लगे हुए फ़्लेट में अपने ठहरने की व्यवस्था कर लें। वहाँ के लिये फर्नीचर, बर्तन, खाने का सामान आदि जो भी चाहिये वह सिकन्दरपुर के अपने पारिवारिक निवास से ले जायें।

महाराज जी अपने पिता की आज्ञा कभी नहीं टालते थे, इसलिये उन्होंने अपने घूमने-फिरने के विचार को त्याग दिया।

सिकन्दरपुर के घर से महाराज जी को जो कुछ भी मिला, वह फ़्लेट के लिये ले गये, परन्तु फिर भी वहाँ बहुत-सी और चीज़ों की ज़रूरत थी। फिर उन्हें कानून की किताबें भी खरीदनी थीं। लेकिन उनके पास अपना कोई पैसा नहीं था, सिवाय कुछ सौ रुपयों के जो उन्होंने अपने जेब-खर्च में से बचाये थे। इसलिये वे सिकन्दरपुर अपने पिता से कुछ रुपये माँगने गये, लेकिन झिझक की वजह से कुछ कह नहीं पाये। वे बच्चे से बड़े डेरे में ही हुए थे और बड़े महाराज जी उनकी सब ज़रूरतें पूरी करते थे। उनकी स्कूल और कालेज की फीस भी बड़े महाराज जी ही दिया करते थे। असल में बीबी रली उनकी देखभाल करती थीं और उन्हें सबकुछ बड़े महाराज जी की इजाज़त से देती थीं।

सो महाराज जी कुछ उदास होकर डेरे आ गये। उन्होंने बीबी रली से कहा कि उनके पिता ने उनसे सिरसा के सत्संग-घर के फ़्लेट में रहकर वकालत करने को कहा है, लेकिन उन्होंने खर्च के लिये कुछ नहीं दिया है। "और मुझे बहुत-सी चीज़ें खरीदनी होंगी", महाराज जी ने बीबी रली से कहा, "चीनी के बर्तन, पर्दे का कपड़ा वगैरह, और मुझे किताबें भी खरीदनी पड़ेंगी। मैं क्या करूँ? मैं सिकन्दरपुर गया, पर मुझे चाचाजी (महाराज जी अपने पिता को चाचाजी कहते थे) से माँगने में शर्म आई, क्योंकि ज़िन्दगी में मैंने उनसे कभी कुछ नहीं माँगा है। इसलिये मैं यहाँ आ गया हूँ।"

बीबी रली बड़े महाराज जी के पास गईं, और जो कुछ महाराज जी ने कहा था, उन्हें सुना दिया। इस पर बड़े महाराज जी हँसे और बोले, "एक लड़का जो अपने पिता से पैसे नहीं माँग सका! उसे यहाँ बुलाओ।"

महाराज जी से बड़े महाराज जी ने पूछा, "तुम्हें कितने रुपये चाहियें?"

महाराज जी ने उत्तर दिया, "करीब चार हज़ार।" बड़े महाराज जी ने उनको रुपये दे दिये।

महाराज जी सिरसा लौट आये, ज़रूरत का सब सामान खरीदा और वहाँ बस गये। कुछ दिन बाद, उनके पिता उनसे मिलने आये और उनसे पूछा कि वे दूसरी बार डेरे इतनी जल्दी कैसे गये, क्योंकि पन्द्रह दिन पहले ही वे डेरे होकर आये थे। महाराज जी बोले, "मुझे कुछ रुपयों की ज़रूरत थी।"

उनके पिता ने उनसे फिर पूछा, "तुम सिकन्दरपुर आये थे तब मुझसे क्यों नहीं माँगे?"

महाराज जी ने जवाब दिया, "मैं आपसे माँगने ही आया था, पर समझ में नहीं आया कि कैसे माँगूँ, क्योंकि मैंने आपसे आज तक कुछ माँगा ही नहीं।"

इस पर महाराज जी के पिता ने उनसे कहा, "आगे से तुम्हें जो भी चाहिये वह ले लेना, झिझकना मत।"

आज भी महाराज जी का स्वभाव वही है। खुद के लिये माँगने में हिचकिचाते हैं, चाहे वह परिवार में जमा उनके ही खाते में से क्यों न हो।

महाराज जी की बीमारी

महाराज जी ने एक बार हमें बताया कि अपनी वकालत के दिनों में, जून १९४६ में, वे हिसार के ज़िला न्यायालय में एक मुकद्दमे के लिये गये हुए थे। गर्मी का मौसम था और ज़बरदस्त गर्मी पड़ रही थी, खासकर देश के उस हिस्से में। वे कचहरी के कमरे के बाहर आये और दूसरे वकील से किसी बात पर चर्चा करते-करते एकाएक बेहोश होकर गिर पड़े। एक वकील, जो उन्हें बहुत कम जानता था, उन्हें अपने घर ले गया, जहाँ उसने और उसकी पत्नी ने महाराज जी की देखभाल बड़े स्नेह से की। उन्हें बहुत तेज़ बुखार था, उस दम्पती ने जो कुछ भी वे कर सकते थे किया, और महाराज जी को अपने घर में चार दिन तक रखा।

उन्होंने महाराज जी की पत्नी को पत्र से महाराज जी की बीमारी की सूचना दी और उन्हें हिसार आने को कहा। सो महाराज जी के पिता वहाँ उन्हें देखने आये। और जब महाराज जी कुछ ठीक हुए तो उनके चचेरे भाई

सरदार सतनामसिंह आकर उन्हें सिरसा ले गये। वहाँ अचानक महाराज जी को चेचक निकल आयी। वह उनके सारे बदन पर फैल गई, उनका सारा चेहरा, यहाँ तक कि आँखें भी भर गईं और तेज़ बुखार आता रहा।

जब महाराज जी की माता को मालूम पड़ा, तो उन्होंने महाराज जी की पत्नी से उन्हें सिकन्दरपुर ले आने को कहा, ताकि वहाँ वे खुद महाराज जी की देखभाल और उनका घरेलू इलाज कर सकें, क्योंकि बेजी को सामान्य प्रचलित दवाइयों में ज़्यादा विश्वास नहीं था। सो महाराज जी को सिकन्दरपुर ले आया गया और वहाँ उन्हें डाक्टर माथुर और बेजी (महाराज जी की माताजी) के परामर्श से अँधेरे कमरे में रखा गया। उस समय डाक्टर माथुर सिरसा में ही नियुक्त थे और अक्सर साइकिल पर महाराज जी को देखने पाँच मील सिरसा से सिकन्दरपुर जाते थे। महाराज जी बहुत चिन्तित थे कि उनके पूरे चेहरे पर चेचक के निशान रह जायेंगे, और शायद उनकी आँख की दृष्टि भी चली जाये। वे बोले कि उनकी हिम्मत शीशा देखने तक की नहीं होती थी।

महाराज जी ने अपनी पत्नी से कहकर बीबी रली को पत्र लिखवाया जिसमें उनकी हालत बयान की गई कि कैसे उनका चेहरा चेचक से भर गया था और वे इस बारे में कितने चिन्तित थे; कैसे वे चेचक के दागों से भरे हुए चेहरे को लेकर ज़िन्दा रहेंगे, अपनी ज़िन्दगी में वे क्या कर सकेंगे, क्योंकि इस बीमारी का उनकी आँखों पर भी असर पड़ सकता था। उन्होंने बीबी रली को यह भी लिखवाया कि वे बड़े महाराज जी की इजाज़त लेकर आ जायें और उनकी देखभाल करें, क्योंकि उन्हें बीबी रली की बहुत याद आती थी।

बीबी रली बड़े महाराज जी के पास गईं, और उन्हें पत्र पढ़कर सुनाया। बड़े महाराज जी बोले, "वह अब बड़ा हो गया है, फिर भी अभी तक वह तुम्हें इतना याद करता है? उसे लिख दो कि वह दस दिन में ठीक हो जायेगा और उसके बदन पर कोई दाग नहीं रहेंगे। वह दस दिन बाद यहाँ आ जाये।"

जब बीबी रली ने महाराज जी का पत्र बड़े महाराज जी को सुनाया, उस समय प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल भी वहाँ थे। प्रोफ़ेसर साहिब का महाराज जी के प्रति बहुत स्नेह था, इसलिये उन्होंने भी महाराज जी को लिखा कि वे

चिन्ता न करें क्योंकि बड़े महाराज जी ने कह दिया है कि वे बिल्कुल ठीक हो जायेंगे।

महाराज जी ने कहा कि पत्र आ गया, दस दिन में बुखार उतर गया और चेचक के सारे दाग गायब हो गये सिवाय एक के जोकि उनके पैर की छोटी उँगली पर रह गया था। फिर बड़े महाराज जी से मिलने महाराज जी ब्यास आये।

बड़े महाराज जी बोले, "यह निशान भी सुबह तक ठीक हो जायेगा। तुम बहुत जल्दी घबरा जाते हो।"

महाराज जी ने बताया, "सुबह तक उँगली पर का यह दाग भी गायब हो गया। यह सचमुच एक चमत्कार था, मेरा पूरा बदन और चेहरा चेचक के गहरे दागों से भरा हुआ था, और अब मेरे बदन पर एक भी दाग नहीं है।"

गद्दी स्वीकार करने में हिचकिचाहट

जब हम यह सुनते हैं कि अपने सतगुरु का हुक्म मिलने पर भी सतगुरु गुरु-पद स्वीकार करने में अरुचि बता रहे हैं तो हमें यह समझने में बड़ी मुश्किल होती है कि वे अपनी सच्ची नम्रता और दीनता की भावना से प्रेरित होकर ही ऐसा कर रहे हैं। यह उनके हृदय की सच्ची प्रतिक्रिया है, और हम लोगों के लिये एक बड़ी शिक्षा है।

सरदार बहादुर जी की वसीयत के पढ़े जाने के बाद, महाराज जी को यह पूरा विश्वास हो गया था कि वे ही अगले सतगुरु नियुक्त किये गये हैं, पर उन्होंने गद्दी स्वीकार करने से इनकार कर दिया। वे बहुत रोये, और इस बारे में इतने दृढ़ थे कि डेरा छोड़कर जाने की भी कोशिश की। महाराज जी की प्रतिक्रिया पहले बताई जा चुकी है।

उनके मन की अवस्था को देखकर उनके पिता और माता ने राय साहिब मुन्शीराम से कहा कि वे महाराज जी को कुछ दिन के लिये सिकन्दरपुर ले जाना चाहेंगे। यह सरदार बहादुर जी के संस्कार के तीसरे दिन की बात है। उनकी माता उनकी यह हालत देखकर मन ही मन घबरा रही थीं। श्रीमती हज़ारासिंह भी, जोकि महाराज जी को अपना पुत्र मानती थीं, अम्बाला से परिवार के पास सिकन्दरपुर आ गई थीं।

सिकन्दरपुर पहुँचने के बाद महाराज जी के पिता ने बड़ी मिठास से उनको समझाया, "बड़े महाराज जी से नामदान मिलने के बाद इस शरीर पर बड़े महाराज जी का अधिकार है या हमारा ?" महाराज जी ने जवाब दिया, "बड़े महाराज जी का है।"

महाराज जी के पिता की आँखों में आँसू भर आये और उन्होंने कहा, "अगर ऐसा है तो बड़े महाराज जी इस शरीर से जो भी काम लेना चाहें, उसे करने में तुम्हें क्या एतराज़ हो सकता है ?"

महाराज जी यह सुनकर चुप रहे, क्योंकि इसके जवाब में उनके पास कुछ कहने को नहीं था। इसके बाद उनके पिता ने उनको मत्था टेका, और कमरे से बाहर चले गये। इसी तरह सारे परिवार ने उनको सहारा दिया, उनकी पत्नी ने भी उनको यह पद स्वीकार करने के लिये मनाने का पूरा प्रयत्न किया और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे हमेशा हर तरह से पूरा सहयोग देंगी।

महाराज जी की गद्दीनशीनी के बाद, उनके पिता ने उनसे कहा कि वे अपने बच्चों और पत्नी की सुख-सुविधा की चिन्ता न करें, क्योंकि उनके भाई शोती उन सबकी भली प्रकार सँभाल करेंगे। महाराज जी कहते हैं कि यह कार्य उन्होंने (शोती ने) बहुत अच्छी तरह किया; और इसके लिये महाराज जी उनकी हमेशा सराहना करते हैं।

इस तरह महाराज जी और उनका सारा परिवार सच्चे हृदय से बड़े महाराज जी के हुक्म को मानने के लिये तैयार हो गये और आज तक महाराज जी का हर दिन, और उनके दिन का हर क्षण संगत की सेवा में बीतता है और वे बड़े महाराज जी के हुक्म के अनुसार अपने सतगुरु को प्रसन्न करने के लिये बड़े प्रेम से अपने कर्तव्य निभा रहे हैं।

सिकन्दरपुर में मुसलमानों को आश्रय

१९४७ में देश के विभाजन के समय हिन्दुस्तान में बहुत अशान्ति फैली और दंगे हुए, क्योंकि हिन्दू और मुसलमानों का आपस में बहुत वैर था। सदियों पुरानी गलत धारणाएँ, अकारण घृणा और ईर्ष्या दंगों और हिंसा के रूप में फूट पड़ीं, और लोगों की हत्याएँ तथा सम्पत्ति का विनाश ऐसे

पैमाने पर हुआ जैसा कभी नहीं हुआ था। उन दिनों कोई भी सुरक्षित नहीं था।

उस समय सिकन्दरपुर और उसके आसपास के दस-बारह गाँवों में ज़्यादा आबादी मुसलमानों की ही थी। वहाँ केवल एक या दो हिन्दू परिवार थे, और उस क्षेत्र में महाराज जी का परिवार अकेला सिख घराना था। परिवार में महिलाओं सहित कुल पच्चीस व्यक्ति थे।

एक दिन सिकन्दरपुर की पंचायत महाराज जी के पिता के पास गाँव के मुस्लिम समाज के लोगों के लिए शरण माँगने आई, और उनसे विनती की कि उन लोगों की सम्पत्ति और ज़मीन की हिफ़ाजत करें। आसपास के मुस्लिम, हिन्दू और सिख, इतिहास के सबसे भयानक खून-खराबे में लगे हुए थे। इसलिए मुसलमानों का एक सिख परिवार से ऐसी प्रार्थना करना एक अनहोनी बात थी, जो बड़े महाराज जी के परिवार के प्रति सबके गहरे आदर और विश्वास को प्रकट करती है।

महाराज जी उस समय सिकन्दरपुर से पाँच मील दूर सिरसा में रहकर वकालत करते थे। वहाँ के डिप्टी कमिश्नर और पुलिस सुप्रिंटेंडेंट, दोनों ही महाराज जी के मित्रों में से थे। इसलिये उनके पिता ने उनको सन्देश भेजा कि वे इन मुसलमानों के लिये पुलिस की सुरक्षा का इन्तिज़ाम करवायें और साथ ही अपने परिवार के लिये भी सुरक्षा की व्यवस्था हो ताकि स्थानीय लोग कोई गड़बड़ न करें।

महाराज जी अपने पिता के निवेदन को लेकर डी.सी. और एस.पी. से मिले। चारों ओर अशान्ति के कारण उनके पास पुलिस की बहुत कमी थी, सो वे केवल यही सुझाव दे पाये कि महाराज जी एक पुलिस का ट्रक सिकन्दरपुर ले जायें और अपने सारे परिवार के सदस्यों को इकट्ठा करके सिरसा ले आयें।

महाराज जी जानते थे कि उनके पिता ऐसे प्रस्ताव को कभी नहीं मानेंगे। जब उनको यह बताया गया तो उन्होंने इसे नामंज़ूर कर दिया और अपना घर न छोड़ने पर दृढ़ रहे। उन्होंने यह भी बताया कि यह जानने के लिये कि वे क्या करें, बड़े महाराज जी को एक पत्र भेज चुके हैं और अगले दिन तक जवाब आ जाने की आशा है।

बड़े महाराज जी का जवाब, जैसी कि आशा थी, आ गया। उन्होंने

लिखा कि महाराज जी के पिता को गाँव के सारे मुसलमानों की रक्षा करनी चाहिये। उन लोगों को किसी से भी कोई नुक्सान नहीं पहुँचना चाहिये। वे सब उनके संरक्षण में हैं। बड़े महाराज जी ने महाराज जी के पिता को खेत पर काम करने वाले हर व्यक्ति से यह कहने का आदेश दिया कि उनमें से किसी का कोई भी नुक्सान नहीं होगा। उन्होंने लिखा, ''किसी का बाल भी बाँका नहीं होगा। फ़िक्र मत करो, बाबाजी तुम्हारे साथ हैं।'' इस आश्वासन से सबको बड़ी राहत और शान्ति मिली।

सो महाराज जी के पिता ने मुसलमानों को धीरज बँधाया और कहा, ''किसी भी बात की चिन्ता न करो। आपको यहाँ कोई नुक्सान नहीं पहुँचा सकता और न ही आप पर कोई हमला कर सकता है।'' उन्होंने अपने आदमियों से बारी-बारी हर समय गाँव में पहरा देते रहने को कहा, और यह देखते रहने के आदेश दिये कि कोई बाहर के लोग आकर किसी प्रकार की गड़बड़ न कर पायें।

उन्होंने अपनी आटा पीसने की चक्की में मुसलमान गाँववालों के लिये भी आटा पीसने की व्यवस्था कर दी, क्योंकि उनके पास रोटी बनाने के लिये आटा तैयार करने का कोई और साधन नहीं था। जो भी मदद उन्हें चाहिये थी, वह सब उन्हें जब तक वे वहाँ ठहरे तब तक देते रहे। साथ ही उन्होंने महाराज जी से कहा कि वे सिरसा में डी. सी. और एस. पी. से बात कर लें कि जब कभी भी कोई काफ़िला वहाँ से पाकिस्तान की ओर जाने के लिये निकल रहा हो, तो वे इन मुसलमानों को पूरी हिफ़ाज़त के साथ उसमें पहुँचा दें।

एक दिन खबर आई कि बलोच रेजिमेंट पाकिस्तान की ओर जा रहा है। सो महाराज जी और चाचा अमरसिंह दोनों अपने साथ गाँववाले मुसलमानों को ले गये और उन्हें बलोच रेजिमेंट के सुपुर्द कर दिया। बिदा लेते समय उन सबकी आँखों में कृतज्ञता के आँसू भर आये। वे महाराज जी के पिता के बहुत ही शुक्रगुज़ार थे कि उन्होंने उनकी हिफ़ाज़त और सँभाल की और उन्हें सुरक्षित पाकिस्तान के रास्ते पर पहुँचा दिया।

उनमें कुछ वृद्ध स्त्री-पुरुष भी थे जो सफ़र नहीं कर सकते थे, इसलिये उनको गाँववालों ने महाराज जी के पिता के संरक्षण में छोड़ दिया। महाराज जी की माता ने जब तक वे ज़िन्दा रहे उनकी सँभाल की और उनकी हर

ज़रूरत को पूरा करती रहीं। कई मुसलमान सत्संगी परिवार पाकिस्तान गये ही नहीं ; महाराज जी कहते हैं कि वे अब भी सिकन्दरपुर गाँव में आराम से रह रहे हैं।

सन्तों की दृष्टि में तो मनुष्य की ज़िन्दगी ही सबसे महत्वपूर्ण है। उन्हें जाति-पाँति या गरीब-अमीर से कोई मतलब नहीं। उनके लिये सब समान हैं और वे सदा सबकी मदद के लिये तैयार रहते हैं। वे अपने खुद के उदाहरण द्वारा हमें भी यही शिक्षा देते हैं। महाराज जी के पिता बड़े महाराज जी के एक सच्चे शिष्य थे और उनकी शिक्षा पर खुद तो पूरी लगन के साथ चलते ही थे, अपने परिवार को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा देते रहते थे।

महाराज जी के पिता : एक आदर्श शिष्य

एक दिन महाराज जी पुरानी बातों को याद कर रहे थे। उन्होंने कहा कि उनको अपने बचपन में कुछ ऐसा ख़याल हो गया था कि उनके पिता उन्हें प्यार नहीं करते। यह भावना उनके मन में कई वर्षों तक बनी रही।

महाराज जी और उनके भाई का पालन-पोषण डेरे में बड़े महाराज जी की स्नेहपूर्ण देख-रेख में हुआ। दोनों भाइयों को साथ ही बलसराय के स्कूल में भेजा गया, जो डेरे से करीब एक मील की दूरी पर है, जहाँ वे रोज़ जाते थे। उसके बाद दोनों भाइयों ने बाबा बकाला के स्कूल में पाँचवीं कक्षा में प्रवेश किया।

छठी क्लास में पहुँचने पर महाराज जी के भाई को पढ़ाई के लिये जालन्धर भेज दिया गया जबकि महाराज जी बाबा बकाला के स्कूल में दसवीं क्लास तक रहे। महाराज जी उस समय छोटे ही थे और स्वाभाविक था कि दोनों भाइयों के साथ अलग-अलग व्यवहार होने के कारण उन्हें फ़र्क महसूस हो, क्योंकि बाबा बकाला एक छोटा-सा गाँव था, और जालन्धर बड़ा शहर।

महाराज जी के भाई को एक साइकिल भी दे दी गई थी, लेकिन महाराज जी को पैदल ही स्कूल जाना पड़ता था। इन सब वर्षों में उनके पिता ने कभी उनसे पढ़ाई के बारे में नहीं पूछा और न ही उनके और किसी काम में दिलचस्पी ही बताई। महाराज जी अपने पिता के इस उदासीनतापूर्ण व्यवहार को नहीं समझ पाते थे और उनको इस व्यवहार से ठेस पहुँचती थी।

प्रेम-प्यार रखो। अगर शोती कभी कोई गलती भी करे, तो उसे माफ़ कर देना। तुम बड़े हो, उसकी कभी कोई भूल हो तो उस पर ध्यान न देना।"

महाराज जी ने कहा कि बड़े महाराज जी की दया-मेहर से दोनों भाइयों में हमेशा प्यार रहा है और दोनों हमेशा एक-दूसरे को समझते रहे हैं। कभी कोई गलतफ़हमी नहीं हुई है।

महाराज जी के पिता एक अद्वितीय शिष्य थे। ऐसी भक्ति सतगुरु की दया-मेहर का ही परिणाम है और दुनिया में आम तौर से देखने में नहीं आती।

* * *

महाराज जी को उनके पिता द्वारा लिखे पत्रों के कुछ अंश

महाराज जी को उनके पिता द्वारा उर्दू में लिखे पत्रों में से कुछ के उद्धरण नीचे दिये जा रहे हैं। ये पत्र उन्होंने महाराज जी के सतगुरु बनने के बाद लिखे हैं। कौन-सा पिता अपने पुत्र को इस प्रकार लिखेगा ? केवल वही पिता जिसके अन्दर पूरी भक्ति है, जो अपने पुत्र को पूरी तरह परमात्मा मान चुका है।

जून १४, १९५२

सतगुरु दीनदयाल के समरत्थ चरनों पर सर रखकर कोट-कोट बार निमरता से दस्तबस्ता[१] राधास्वामी अर्ज़ है।

मैं हुज़ूर दीनदयाल जी की दया से राज़ी खुशी हूँ। नवाज़िश-नामा तशरीफ़[२] हुआ। निहायत खुशी हुई। बन्दा भी बहुत महसूस करता है कि क्यूँ हाज़िरे-ख़िदमत[३] न हो सका। सिर्फ़ मेरी कमज़ोरी और दुनियावी जकड़बंदी की वजह से है।....उम्मीद है पिछली गलती माफ़ फ़रमावेंगे,

आपका सेवादार,
हरबंससिंह

---

१. हाथ जोड़ कर २. कृपा-पत्र प्राप्त हुआ ३. सेवा में उपस्थित



बड़े महाराज जी महाराज जी के पिता, महाराज जी और राव साहिब के साथ

सितम्बर २०, १९५३, (पोस्ट कार्ड)

श्री सतगुरु जी के चरणों पर सिर रखकर राधास्वामी। अर्ज़ गुज़ारिश है .....।

दास–हरबंससिंह

सितम्बर २५, १९५३

श्री हुज़ूर महाराज टिक्का साहिब जी,

दस्तबस्ता राधास्वामी अर्ज़ है। उम्मीद है आप ख़ैरियत से डेरा पहुँच गये होंगे। हुज़ूर का काम अच्छी तरह से चल रहा है। आपका कब दर्शन होगा, आपने फ़रमाया था दूसरे या तीसरे माह सिकन्दरपुर आया करूँगा। कम से कम मेरे जीते-जी तो ऐसा ही होना चाहिये। आगे आप मालिक हैं। मैं तो आपके घर का चौकीदार हूँ।

ताबेदार,
हरबंससिंह

जून २, १९५५.

श्री हुज़ूर महाराज टिक्का साहिब जी,

दस्तबस्ता राधास्वामी अर्ज़ है। उम्मीद है कि आप ख़ैरियत से होंगे। जोकि आपने याद किया है, आपकी मेहरबानी है।.....

ताबेदार,
हरबंससिंह

महाराज जी का अपने सतगुरु के प्रति अपार प्रेम

विदेशियों के साथ शाम को एक मीटिंग में एक सत्संगी ने महाराज जी से बड़े महाराज जी के चले जाने के बाद डेरे की व्यवस्था के बारे में एक सवाल पूछा। महाराज जी ने जवाब दिया कि इतना ज़बरदस्त खालीपन आ गया था.....और फिर उनका गला रुँध गया, वे कुछ बोल न सके। उनकी आँखें भर आईं और उन्होंने अपने हाथ के इशारे से सत्संगी से कहा कि अपने सवाल को आगे न बढ़ाये, और भाव-भीनी आवाज़ में प्रोफ़ेसर

भटनागर से कहा कि वे किसी सन्त की वाणी पढ़ें और उसका अनुवाद करें।

बाद में उस सत्संगी ने महाराज जी को इस बारे में एक पत्र लिखा। वह पढ़ने योग्य है और महाराज जी की इजाज़त से उसे नीचे दिया जा रहा है :

"मैं ही वह व्यक्ति हूँ जिसने आपसे एक दिन शाम को महाराज जगतसिंह जी के दिनों के डेरे के हालात पर सवाल पूछा था। सबसे पहले, अगर मेरा सवाल अनुचित था और उससे आपको दुःख या संकोच हुआ तो मुझे बहुत अफ़सोस है। मैं जानता हूँ हममें से कोई भी उस शाम को नहीं भूल पायेगा। आपके अपने सतगुरु के प्रति प्रेम को देखना हमारे लिये एक बड़ा प्रेरक अनुभव था।

"मैं अपने जीवन में भावनाओं को महसूस करने और आँसू बहा सकने के योग्य बनना चाहता हूँ। आशा है वह शाम मेरे लिये एक शिक्षा साबित होगी। मैं चाहता हूँ कि आपको अपने सतगुरु के लिये जितना प्यार है उसका एक आंशिक प्यार भी मैं अपने सतगुरु से कर सकूँ।

"मेरा सवाल है, 'मैं अपने हृदय को कैसे और खोलूँ कि और अधिक प्रेम का अनुभव कर सकूँ ?' आप जो इतना सब मुझे देते हैं उसके लिये मैं बहुत आभारी हूँ।"

सतगुरु का अपने सत्संगियों के लिये ख़याल

सतगुरु हमेशा अपने सत्संगियों की कुशलता और भलाई का उतना ही ध्यान रखते हैं जितना अपने बच्चों का। वे उनकी तकलीफ़ों में सहायता करने के लिये हमेशा मौजूद रहते हैं, और अक्सर सत्संगियों को इस बात का आभास भी नहीं होता। देश के विभाजन के समय हज़ारों सत्संगी परिवार पाकिस्तान से बेघर होकर निकले थे। उन परिवारों को हिन्दुस्तान में बसाने में बड़े महाराज जी ने किसी न किसी रूप में मदद की।

ऐसा एक उदाहरण मेहता-परिवार का है, जो बड़े महाराज जी के बहुत प्रेमी सत्संगी थे और हैं। मेहता-परिवार शुरू में रावलपिण्डी (जोकि अब

पाकिस्तान में है) और कश्मीर के थे। हिन्दुस्तान के विभाजन के समय से ही कश्मीर बहुत विवादग्रस्त भाग रहा है। अब भी इसकी सीमाओं के बारे में विवाद होता ही रहता है। विभाजन के कुछ ही समय बाद पाकिस्तान से आक्रमणकारियों ने आकर कश्मीरियों पर धावा बोल दिया। इसका डर पहले से ही था, इसलिये आक्रमणकारी हिन्दुस्तान की सीमा पर पहुँचे ही थे कि मेहता-परिवार बाल-बच्चों के साथ, तीन मोटरों में कुल चौबीस व्यक्ति, रात को बच निकले। लेकिन वे अपने साथ कुछ खास नहीं ला सके। सारी रात चलकर वे सीधे अमृतसर सत्संग-घर पहुँचे, क्योंकि उन्हें मालूम था कि बड़े महाराज जी वहाँ ठहरे हुए हैं। महाराज जी भी उस समय बड़े महाराज जी के पास थे।

मेहता-परिवार के आने पर बड़े महाराज जी ने महाराज जी को बुलाया और उनसे कहा, "तुम्हारे दोस्त आ गये हैं। इन्हें सिकन्दरपुर ले जाओ और इनके परिवार की देखभाल करो, ताकि इनमें से पुरुष देहली जाकर कुछ काम-धन्धा ढूँढ सकें।"

सो महाराज जी उन सबको सिकन्दरपुर ले गये और सभी मेहता-बन्धुओं के परिवार वहाँ कई महीनों तक रहे, जबकि श्री आर. एन. मेहता और श्री आर. सी. मेहता कोई दुकान ढूँढने के लिये देहली चले गये। वे फ़ोटोग्राफी का व्यवसाय शुरू करना चाहते थे, क्योंकि वे कश्मीर और रावलपिण्डी के नामी फ़ोटोग्राफ़र थे।

संयोग से, १९४५ में सरकार ने हज़ार रुपये के नोटों का प्रचलन काला धन रोकने के लिये बन्द कर दिया था। आर. एन. मेहता ने इसलिये आर. सी. मेहता और अपनी बड़ी बहन के हाथ हज़ार रुपये के नोटों में अस्सी हज़ार रुपये महाराज जी के पास भेजे और उनसे कहलाया कि ये रुपये अपने पास रख लें, लेकिन इसका कोई कारण महाराज जी को नहीं बताया।

महाराज जी ने इस रुपये को बैंक में अपने पिता के खाते में जमा करवा दिया। यही रुपया मेहता-परिवार को देहली में अपना व्यापार जमाने और अपना और अपने परिवार का घर-बार बसाने के काम में आया।

महाराज जी ने यह भी बताया कि मेहता-बन्धुओं ने पूरे विश्वास के साथ यह सारा रुपया महाराज जी को दिया था। किसी प्रकार की कोई रसीद तक नहीं माँगी थी। आज सब जानते हैं कि मेहता-परिवार का कारोबार

कितनी अच्छी तरह जम गया है और वे आज सतगुरु के कितने समर्पित और प्रेमी सेवादार हैं।

जन्म-दिनों का महत्व

कुछ सन्तों के चले जाने के बाद उनके जन्म-दिन उत्सव के रूप में मनाये जाते हैं। इन अवसरों पर अक्सर लोग प्राणियों की, अपने भोजन के लिये, हत्या करते हैं और खूब शराब पीते हैं। महाराज जी कई बार कहते हैं कि क्रिसमस का दिन हज़ारों टर्की पक्षियों को मारकर, उन्हें खाकर और खूब शराब पीकर मनाया जाता है; और यह एक बड़ा व्यापारिक शोषण का मौका बना दिया गया है।

महाराज जी ने अपने जन्म-दिन को कभी कोई महत्व नहीं दिया। असल में उन्होंने हमेशा अपनी सालगिरह के दिन डेरे से बाहर रहने की पूरी कोशिश की है, ताकि लोग इस दिन को लेकर कोई समारोह न मना सकें।

एक बार जब महाराज जी सत्संग-यात्रा पर विदेश जाने की योजना बना रहे थे, उन्होंने अपना पासपोर्ट श्रीमती भरतराम को वीसा आदि बनवाने के लिए दिया। कौतूहल-वश मैंने पासपोर्ट उठाकर देखा तो मुझे अचरज हुआ कि उसमें महाराज जी के जन्म की तारीख अगस्त १६, १९१६ दी हुई थी। सभी जानते हैं उनके जन्म की सही तारीख दिसम्बर १२, १९१६ है। इसलिये मैंने उनसे पूछा कि पासपोर्ट पर अलग तारीख कैसे है?

उन्होंने जवाब दिया कि जब वे मेट्रिक के इम्तिहान में पास हुए और उसका सर्टिफ़िकेट मिला तो उसे वे बड़े महाराज जी के पास ले गये। बड़े महाराज जी उसे देखकर बहुत खुश हुए, क्योंकि महाराज जी ने ही परिवार में सबसे पहले मेट्रिक का इम्तिहान पास किया था। परन्तु जब उन्होंने उस प्रमाण-पत्र को पढ़ा, तो महाराज जी से पूछा "यह कैसे हुआ कि तुम्हारा नाम और जन्म की तारीख, दोनों ही गलत लिखे हुए हैं? तुम्हारा नाम हरचरनसिंह है, और इसमें चरनसिंह लिखा है और तुम्हारे जन्म की तारीख दिसम्बर १२, १९१६ है, लेकिन इसमें अगस्त १६, १९१६ लिखी हुई है।"

महाराज जी को इस बारे में कुछ भी मालूम नहीं था, इसलिये बड़े महाराज जी ने इस सम्बन्ध में और पूछताछ की; तब पता चला कि यह

गलती कैसे हुई। बड़े महाराज जी के निजी सेवादार भाई शादी को महाराज जी के साथ पहले दिन बलसराय के स्कूल में उन्हें नियमानुसार दाख़िल कराने के लिये भेजा गया था। भाई शादी खुद बिलकुल अनपढ़ थे। जब बड़े महाराज जी ने उनसे सवाल किया तो उन्होंने सीधी-सादी तरह से जवाब दिया कि अध्यापक ने महाराज जी का नाम पूछा, तो उन्होंने जवाब दिया कि उन्हें सब 'चरनी' कहते हैं, जोकि महाराज जी का प्यार का नाम था। इस पर अध्यापक ने यह सोचा कि नाम 'चरनसिंह' होगा और यही लिख दिया।

फिर अध्यापक ने विद्यार्थी के जन्म की तारीख पूछी। तो भाई शादी ने जवाब दिया, "आज की ही तारीख लिख लो," उस दिन १६ अगस्त था। यह गलती स्कूल और हाई स्कूल में किसी के ध्यान में नहीं आई और इसलिये मेट्रिक के प्रमाण-पत्र पर भी ठीक वैसे ही दुहरा दी गई।

बड़े महाराज जी चाहते थे कि यह गलती सुधार दी जाये। सो सरदार भगतसिंह को बुलाया गया, क्योंकि बड़े महाराज जी हमेशा डेरे और परिवार के सम्बन्ध में कानूनी सलाह उनसे ही लेते थे। बड़े महाराज जी को उन पर बहुत विश्वास था। इसलिये उन्होंने सरदार भगतसिंह से कहा कि वे नाम और जन्म की तारीख सुधरवा दें।

सरदार भगतसिंह ने पूरी जाँच-पड़ताल की तो पता लगा कि एक बार विश्वविद्यालय में भर्ती होने का नम्बर विद्यार्थी को मेट्रिक के प्रमाण-पत्र पर मिल जाने के बाद, उसमें दर्ज किये हुए नाम, जन्म की तारीख आदि ब्यौरे को बदलवाने का तरीका बहुत उलझनपूर्ण है। इसलिये उन्होंने सलाह दी कि अब इस सबको ऐसे ही रहने दिया जाये।

इस तरह महाराज जी का नाम और जन्म का दिन कानून की दृष्टि से वही रहा जो मेट्रिक के प्रमाण-पत्र पर है।

शिकायत न करने का स्वभाव

महाराज जी ने एक बार बताया कि उन्हें स्कूल पैदल जाना पड़ता था। कई बार भुआजी (बीबी रली) ने बड़े महाराज जी से महाराज जी को साइकिल दिलाने के लिये कहा, पर हर बार उन्होंने यह कहते हुए मना कर

दिया, "मैं चाहता हूँ कि यह मज़बूत बने।" हालाँकि महाराज जी के छोटे भाई के पास, जो जालन्धर में पढ़ रहे थे, साइकिल थी।

जब महाराज जी नवीं क्लास में पहुँचे तो बीबी रली ने बड़े महाराज जी से कहा कि डेरे के बढ़ई और लुहार के लड़कों के पास स्कूल जाने के लिये साइकिलें हैं और वे दोनों महाराज जी के साथ एक ही कक्षा में पढ़ते हैं। तब बड़े महाराज जी ने महाराज जी के लिए साइकिल मँगवाने की इजाज़त दे दी। परन्तु तब तक वे हर रोज़ स्कूल तीन मील पैदल चलकर जाते थे। महाराज जी को बचपन से ही हुक्म मानने और शिकायत न करने की आदत थी।

दुःख में भी मालिक के प्रति कृतज्ञता

महाराज जी हमेशा कहते हैं कि मालिक हमें जो कुछ भी दे उसके लिये हमें कृतज्ञ होना चाहिये। हमें चाहिये कि ज़िन्दगी के हर कदम पर मालिक का आभार मानें और हमारे साथ जो कुछ भी हो रहा हो, वह चाहे हमें अच्छा मालूम दे या बुरा, उसे खुशी से स्वीकार करें। हम नहीं जानते कि जो दिखने में बुरा मालूम देता है उसमें क्या रूहानी भलाई छिपी हुई है, और जो अच्छा दिखाई देता है उसमें क्या बुराई। सो हमें पूरी कोशिश करनी चाहिये कि मालिक की रज़ा में राज़ी रहते हुए जो कुछ भी वह दे उसके लिये शुक्रगुज़ार हों। इस सम्बन्ध में महाराज जी ने मुगल बादशाह शाहजहाँ की ज़िन्दगी की एक घटना सुनाई।

शाहजहाँ ने हिन्दुस्तान में दक्षिण भारत तक फैली हुई एक बड़ी सल्तनत पर हुकूमत की थी। वह एक बड़ा निर्माता था और उस ज़माने की कई बड़ी सुन्दर इमारतें उसने बनवाई थीं। उनमें सबसे मशहूर आगरा का ताजमहल और देहली का लाल किला है।

उसने कई दशकों तक राज्य किया। लेकिन उसका लड़का **औरंगज़ेब** बादशाह बनने की अपनी हवस को नहीं रोक सका और तख़्त पर अपनी ताकत के ज़ोर से कब्ज़ा करके अपने पिता को आगरा के किले में कैद कर दिया।

शाहजहाँ ने ज़िन्दगी के बाकी दिन कैदी की तरह काटे। उसे शाही ऐशो-आराम के बिना, बड़ी सादी ज़िन्दगी बितानी पड़ी। न तो उसके

आसपास अब सभा की चमक-दमक थी और न ही मुसाहिबों और नौकरों का समूह।

गर्मियों में एक दिन दोपहर को शाहजहाँ को बहुत प्यास लगी, पर उस समय उसके पास कोई पानी पिलाने वाला नहीं था। सो वह खुद कैदखाने के कुएँ पर गया और पानी खींचने लगा। लेकिन एक ज़माने के बादशाह को पानी खींचने जैसे मामूली काम की आदत नहीं थी। उसके हाथ से रस्सी चक्के पर से फिसल गई, बालटी नियन्त्रण में नहीं रही और उसके सिर पर ज़ोर से टकरा गई।

इस पर शाहजहाँ ने कहा, "ऐ मालिक! मैं कुएँ से पानी खींचने जैसे मामूली काम के लायक भी नहीं हूँ। फिर भी तूने मुझे इतने लम्बे समय तक बादशाह बनाये रखा। तेरी रहमत और मेहर का लाख-लाख शुक्रिया।" यह कहते हुए शाहजहाँ ने मालिक की भक्ति में अपना सिर झुका लिया।

धुर-कर्म हों तो नाम मिलता है

महाराज जी एक बार मसूरी जाने के लिये रेल से देहरादून जा रहे थे। रास्ते में उनका परिचय श्रीमती हज़ारासिंह से हुआ, जोकि एक बड़ी स्नेहपूर्ण महिला थीं। धीरे-धीरे जान-पहचान बढ़ती गई और कुछ ही समय में आपस में बहुत स्नेह हो गया। वे महाराज जी को अपने पुत्र की भाँति प्यार करने लगीं और महाराज जी भी उन्हें बहुत चाहने लगे।

महाराज जी उन्हें 'बीजी' कहने लगे, जैसे कि पंजाब में अक्सर माँ को पुकारा जाता है। वे महाराज जी के पास कई बार डेरे आतीं और महाराज जी भी उनसे मिलने अक्सर उनके घर जाते थे। श्रीमती हज़ारासिंह बड़ी धार्मिक भावनाओं वाली महिला थीं और नियमानुसार श्री आदि ग्रन्थ में से जपुजी साहिब का पाठ करती थीं। वे बड़े महाराज जी से भी कई बार मिलीं, जिनके प्रति उनके मन में गहरा प्रेम और आदर था।

महाराज जी सन् १९४५ के चुनावों में खड़े होने के लिये बहुत उत्सुक थे। लेकिन अचानक सरकार ने एक अध्यादेश (आर्डिनेन्स) जारी किया, जिसके कारण वे चुनाव नहीं लड़ सके। स्वाभाविक ही महाराज जी बहुत निराश तथा उदास हो गये। इसलिये बीजी महाराज जी की मानसिक स्थिति

को समझकर, उनको दिलासा देने के ख़याल से कुछ समय के लिये उनके पास सिरसा आ गईं।

बड़े महाराज जी उस समय सत्संग के दौरे पर पेशावर जा रहे थे, जो कि अब पाकिस्तान में है। महाराज जी के निराश होने की बात सुनकर उन्होंने महाराज जी को सन्देश भेज कर अपने पास दौरे पर बुला लिया। सो महाराज जी पेशावर चले गये और बीजी भी उनके साथ गईं।

महाराज जी को बीजी के प्रति बहुत स्नेह था, इसलिये उनकी तीव्र इच्छा थी कि बड़े महाराज जी बीजी को नाम दे दें। महाराज जी ने भाई शादी से अपनी इच्छा प्रकट की कि कितना अच्छा हो यदि बड़े महाराज जी बीजी को नाम बख़्श दें।

उसी रात को महाराज जी और भाई शादी हमेशा की तरह बड़े महाराज जी के पैर दबा रहे थे। बड़े महाराज जी को उस समय प्रसन्न-चित्त देखकर भाई शादी ने महाराज जी की इच्छा उन्हें बताई। लेकिन बड़े महाराज जी ने जवाब दिया, "इससे क़हो, यही उसको नाम दे दे।"

बड़े महाराज जी का यह जवाब सुनकर महाराज जी बहुत विस्मित हुए और इसका मतलब नहीं समझ पाये। फिर थोड़ी देर बाद बड़े महाराज जी बोले कि इस ज़िन्दगी में उसके भाग्य में नाम मिलना नहीं है।

जब महाराज जी, सरदार बहादुर जी के बाद गद्दी पर डेरे आ गये, तो बीजी नियमित रूप से यहाँ आतीं और कई महीनों तक ठहरतीं। कई बार उन्होंने महाराज जी से कहा भी कि वे नाम लेना चाहेंगी। लेकिन किसी न किसी कारण उनके नामदान प्राप्त करने का मौका नहीं आया और वे बिना नाम लिये ही गुज़र गईं।

पूर्ण गुरु से नामदान प्राप्त होना जन्म-मरण के चक्कर से हमारे छुटकारे का सूचक है। सृष्टि की रचना के समय परमात्मा से बिछुड़ने के बाद से आत्मा के भ्रमण के इतिहास में नाम की प्राप्ति ही सबसे महत्वपूर्ण घटना है। नामदान का समय भी भाग्य में पहले से निश्चित है और सतगुरु जानते हैं वह समय कब आयेगा।

सन्तमत राजनीति से परे रहता है

अपनी महान बुद्धिमत्ता, विवेक और दूरदर्शिता से सन्तों ने हमेशा अपने आपको राजनीति से अलग रखा है। उनका सरोकार तो आत्मा और परमात्मा के रिश्ते से है, न कि व्यक्ति या समाज का विभाजन करने वाले राजनैतिक स्वार्थों से। राजनैतिक नेताओं के साथ महाराज जी का व्यवहार हमेशा बड़ी सावधानी और दूरदर्शितापूर्ण होता है।

समय-समय पर राजनैतिक नेता डेरे में महाराज जी से मिलने आते रहते हैं। चुनावों के दिनों में वे उनका आशीर्वाद और खासकर उनकी मदद माँगने आते हैं। परन्तु महाराज जी ने न कभी अपने आपको और न ही सत्संग को राजनीति में उलझने दिया है। उन्होंने हमेशा सन्तमत के ऊँचे और पवित्र सिद्धान्तों तथा महान आदर्शों को बनाये रखा है। उनके कुशल और विवेकपूर्ण मार्गदर्शन तथा संरक्षण में सत्संग अपने सभी कार्यों में राजनीति से दूर रहा है।

महाराज जी जब डेरे में सतगुरु-पद पर आये उससे पहले एक प्रमुख राजनैतिक पार्टी के सदस्यों ने उनको चुनाव में खड़े होने के लिये राज़ी कर लिया था। एसेम्बली के चुनाव में उनके जीतने की पूरी आशा थी। परन्तु सरदार बहादुर जी ने महाराज जी को चुनाव लड़ने के लिये बड़ी दृढ़तापूर्वक मना कर दिया था।

यह सुनने पर कि महाराज जी डेरे के नये रूहानी गुरु बन गये हैं, वही राजनीतिज्ञ, जोकि पहले महाराज जी को चुनाव में खड़ा करना चाहते थे, डेरे आये। उन्होंने महाराज जी से कहा कि उनके डेरे के प्रधान बन जाने से वे लोग कितने खुश हुए हैं। फिर उन्होंने निवेदन किया कि महाराज जी अपने हज़ारों सत्संगियों को आदेश दे दें कि सब सामूहिक रूप से उस पार्टी के उम्मीदवारों को वोट दें।

महाराज जी ने उस शिष्ट-मण्डल को समझाया कि वे ऐसा निर्देश संगत को देने में असमर्थ हैं, क्योंकि उनका संगत से रिश्ता पूरी तरह से सिर्फ़ रूहानी है। कोई सत्संगी व्यक्तिगत रूप से किसी विशेष राजनैतिक पार्टी से जुड़ा है या नहीं, और वह अपना वोट किसे देता है या नहीं देता, यह उसका निजी मामला है। उन्होंने स्पष्ट किया कि वे किसी सत्संगी के वोट डालने के अधिकार और स्वतन्त्रता में किसी तरह का दख़ल नहीं दे सकते।

राजनीतिज्ञ विस्मित हुए और महाराज जी पर दबाव डालने लगे कि वे संगत से अवश्य इस सम्बन्ध में कहें। उनका ख़याल था कि जब एक बार महाराज जी की उन्होंने मदद की थी तो अब महाराज जी को चाहिये कि अपना कृतज्ञता का कर्ज़ चुकायें, क्योंकि आख़िर दुनिया की रीति भी तो यही है।

महाराज जी ने अपनी कुशाग्र-बुद्धि और कानून के सूक्ष्म ज्ञान द्वारा उन्हें समझाया कि यदि किसी समाज के सदस्यों पर वोट के लिये धार्मिक प्रभाव या दबाव डाला जाता है, तो भारतीय संविधान के अनुसार ऐसा चुनाव रद्द हो जाता है। इस पर नेताओं को महाराज जी का दृष्टिकोण और तर्क समझ में आ गया।

तब से महाराज जी ने यह दृष्टिकोण संगत को कई बार स्पष्ट रूप से समझाया है। सत्संग में वे हर चुनाव से पहले घोषणा करते हैं कि वोट देना नागरिकों का अपना निजी अधिकार है, जिसका उपयोग उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार करना चाहिये। यह घोषणा भारत के सारे सत्संग-केन्द्रों को भेजी जाती है।

उदाहरण के लिए, भारत में आम चुनाव नवम्बर, १९८९ में होने वाले थे, तब महाराज जी ने अक्तूबर के भण्डारे में नीचे दी हुई घोषणा की। इसमें संगत की संख्या लगभग तीन लाख थी :

> "मैं सत्संग से पहले एक बहुत ज़रूरी विनती करना चाहता हूँ, ज़रा गौर से सुनिए। हमेशा चुनावों से पहले मैं अर्ज़ करता हूँ कि राधास्वामी सतसंग ब्यास का चुनावों से कोई किसी तरह का सम्बन्ध नहीं है। सत्संग हमेशा चुनावों से अलग रहा है। सब पोलिटिकल पार्टियाँ अपनी हैं, मेरा सब पार्टियों से प्यार है। मेरा जो संगत से रिश्ता है, वह रूहानियत का रिश्ता है, परमार्थ का रिश्ता है, कोई वोटों का रिश्ता नहीं। वोट आपके अपने हैं, जिसे मुनासिब समझें खुशी से दें।
>
> "सत्संग को पोलिटिक्स से बाहर रखने की कोशिश करें। कोई सत्संगी भाई किसी पोलिटीशियन को लेकर मेरे पास आने की कोशिश न करे, क्योंकि मेरी तो सदा यही कोशिश रही है कि

सत्संग पोलिटिक्स से हमेशा अलग रहे। महाराज जी की दया-मेहर से आज तक यह सत्संग पोलिटिक्स से हमेशा बाहर रहा है और मैं इसे पोलिटिक्स से बाहर ही रखना चाहता हूँ। इसलिये आप जिन्हें मर्ज़ी हो वोट दें, लेकिन सत्संग को पोलिटिक्स में फँसाने की कोशिश न करें।"

डेरे के उच्च अधिकारियों को चेतावनी

डेरे के प्रमुख सेवादार, अपनी कार्यकुशलता और सावधानी के बावजूद कई बार क्रोधित हो जाते हैं और सेवा के ऊँचे आदर्शों को भूलकर संगत से बहुत रुखाई के साथ पेश आते हैं।

महाराज जी के पास सत्संगियों की शिकायतों के पत्र आते रहे हैं, इसलिये सितम्बर २६, १९८७ को उन्होंने सत्संग में नीचे लिखे विचार प्रकट किये :

"कई बार पुराने सत्संगी आकर मुझसे कहते हैं कि आप नम्रता पर इतना ज़ोर देते हैं, इतना सेवा पर ज़ोर देते हैं, लेकिन आप अपने स्टाफ़ मेम्बरों को यह बात क्यों नहीं सिखाते ? हमारे दुःख-सुख तो वे क्या सुनेंगे, वे तो आपस में एक-दूसरे से प्रेम के साथ राधास्वामी भी नहीं करते।

"मैं भी बड़े सोच में पड़ जाता हूँ कि बात क्या है ? सारे बड़े भले आदमी हैं और बड़ी सेवा करते हैं और बड़े-बड़े अफ़सर रिटायर होकर आये हैं। डेरे से बड़ा प्यार भी करते हैं।

"फिर मुझे ख़याल आता है कि हुज़ूर महाराज जी के समय में, और सरदार बहादुर महाराज जी के समय में दफ़्तर के सिर्फ़ दो कमरे थे। एक पीछे था और एक आगे। पिछले कमरे में पहले राय साहिब हरनारायण रहा करते थे, उनके बाद लाला मुन्शीराम ने रहना शुरू कर दिया। उनका दफ़्तर एक कमरे में ही था। सारा दफ़्तर बाहर बरामदे में रखे हुए तख़्त पर चलता था। पचास-साठ साल उन्होंने उस लकड़ी के तख़्त पर ही गुज़ार दिये, जिस पर केवल एक रूई का गद्दा होता था।

"अब मैंने इतना खूबसूरत सक्रेटेरियट बना दिया है। हर अफ़सर को अपना-अपना कमरा मिल गया है, हर तरह की सहूलियत मिल गई है, कुर्सी मिल गई है। उनके कमरे संगमरमर के बन गये हैं।

"लेकिन वे वहाँ की हुकूमत की कुर्सियों से उठकर यहाँ कुर्सियों पर आकर बैठ गये हैं। शायद मेरा ही कसूर है कि मैंने उन्हें यह समझने का मौका ही नहीं दिया कि डेरे की सेवा होती क्या है, सेवा कहते किस चीज़ को हैं। सेवा में नम्रता होनी चाहिये, सेवा में आजिज़ी (दीनता) होनी चाहिये।"

महाराज जी के ये शब्द सुनकर प्रमुख सेवादारों के चेहरे उतर गये और महाराज जी ने जब उनको एकदम उदास तथा गम्भीर होते देखा तो नीचे लिखी हुई घटना सुनाई :

"तीन-चार महीने पहले मेरे पास एक सत्संगी आया। उसने मुझे एक बड़ी हँसी की बात कही।

"वह कहने लगा, 'मुझे बड़ा दुःख है कि मेरा पिता गुज़र गया। वह दोआबे का था। मेरे रिश्तेदारों ने दान में न तो बिस्तर दिया, न कोई जूते दिये, न ही कोई बर्तन दिये हैं।' पहले तो मेरी समझ में नहीं आया कि वह क्या कह रहा है? फिर जब मैंने सोचा तो मैंने कहा, 'हाँ, वाकई बड़े दुःख की बात है। वह बेचारा बिस्तर के बगैर कैसे सोता होगा, बर्तनों के बगैर खाना किस तरह बनाता होगा, और नंगे पैर ही फिरता होगा।' तब वह कहने लगा कि जी, वह तो महाराज जी का सेवक था, उसे तो महाराज जी ने सँभाल लिया होगा। मैंने कहा कि अगर महाराज जी ने सँभाल लिया है तो क्या वे उसे बिस्तर नहीं देंगे, जूते नहीं देंगे, बर्तन नहीं देंगे? किन वहमों में फँसे हुए हो? यहाँ आकर भी तुम्हारे वहम नहीं निकलते, भ्रम नहीं निकलते।"

यह वार्ता सुनकर संगत और सेवादार उस आदमी की अज्ञानता पर ज़ोर से हँसने लगे और सब हलके मन से घर गये।

अगले दिन श्रीमती भरतराम ने पूछा, "महाराज जी, आप तो हमेशा

अपने अधिकारियों के काम की प्रशंसा करते थे, फिर क्या बात है कि सत्संग में आपने उनके लिये इतनी सख़्त बातें कहीं ?"

महाराज जी ने जवाब दिया, "बहन जी, निजी रूप से मेरे सब अधिकारी खरे सोने के समान हैं। वे मेहनती, ईमानदार और संस्था के प्रति वफ़ादार हैं। मैं तो सिर्फ़ यही महसूस करता हूँ कि जब मैं उन्हें मिलकर काम करने को कहता हूँ तो वे एक-दूसरे के साथ सहयोग नहीं करते। कभी-कभी तो वे मेरी मौजूदगी में भी बड़े गुस्से में आकर एक-दूसरे के साथ मतभेद प्रकट करते हैं।

"मैं बहुत समय से कोशिश कर रहा हूँ कि मेरे सारे अधिकारीगण अपने विभागों की व्यवस्था में संयुक्त जवाबदारी महसूस करने लगें। लेकिन उनमें से कुछ अपनी हुकूमत के प्रति इतने सचेत हैं, और उन्हें कोई सुझाव दिया जाये तो इतना बुरा मानते हैं कि वे सेक्रेटरी तक के आदेशों के खिलाफ़ काम करते हैं।

"कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि शायद मेरी ही गलती है कि मैंने उन्हें रिटायर होने के एकदम बाद ही डेरे की व्यवस्था में ऊँचे पद दे दिये और उन्हें मौका ही नहीं दिया कि वे सेवा में बिलकुल नीचे से ऊपर आयें।

"मेरा ख़याल है कि धीरे-धीरे वे ठीक हो जायेंगे। यों भी मैं डेरे के प्रशासन का पूरा ढाँचा बदल रहा हूँ और सारे विभागों के प्रमुखों को स्वतन्त्र कर रहा हूँ। अगर कोई समस्याएँ उठती हैं तो वे सेक्रेटरी से या मुझसे मार्ग-दर्शन ले सकते हैं।"

रीति-रिवाज

महाराज जी ने आज सुबह सत्संग में लोगों की बाहरमुखी प्रवृत्ति के बारे में कहा कि लोग अक्सर महत्व रीति-रिवाजों और बाहरी धार्मिक आचरणों को देने लगते हैं और इस प्रकार सन्तों के असली रूहानी उपदेशों को भुला देते हैं। मन बाहरी प्रवृत्तियों में इतना डूबा रहता है कि बड़ी जल्दी बाहरमुखी आदतों और परिपाटियों को अपना लेता है। इस प्रकार आन्तरिक रूहानी अभ्यास को भुला देने के कारण केवल रीति-रिवाज ही रह जाते हैं। मन यह समझने लगता है कि यही सही रास्ता है, सही ढंग है।

महाराज जी ने सत्संग में कहा कि बाबाजी ने अपने सेवादारों को साफ़ हिदायत दी थी कि जहाँ उनका अन्तिम संस्कार हो वहाँ उनकी कोई यादगार नहीं बनाई जाये। अपने जीवन-काल में ही बाबाजी ने देखा था कि पूरे सतगुरु का मार्ग-दर्शन न रहने के कारण लोगों ने स्वामीजी की समाधि, उनके अन्तिम संस्कार के स्थान पर, बनाना शुरू कर दी थी। ये लोग इस तरह स्वामीजी के उपदेश से दूर होते जा रहे थे।

डेरे में अन्तिम संस्कार हमेशा जहाँ पहले नदी बहा करती थी, वहाँ होता था। महाराज जी ने बताया कि बाबाजी के संस्कार के बाद, जब अगले दिन लोग वहाँ फूल चुनने पहुँचे तो उन्होंने देखा कि रात को नदी उस स्थान को बहा ले गई थी, और वहाँ फूल का ज़रा-सा भाग भी नहीं बचा था। कोई भी उनके संस्कार के स्थान को नहीं ढूँढ पाया।

कई बार कुछ सत्संग-केन्द्रों में भी बाहरमुखी रीति-रिवाज करने की प्रवृत्ति शुरू हो जाती है। साफ़, सीधे और बुद्धिमानी के साथ सोचने के अभाव में, सतगुरु के प्रति आदर और सम्मान की स्वाभाविक भावना बड़ी आसानी से बाहरमुखी रीति-रिवाजों की ओर मुड़ जाती है, जिसकी लोगों को पुरानी आदत होती है।

महाराज जी ने कहा कि यह सब देखकर, बड़े महाराज जी ने राय साहिब मुन्शीराम जी से वादा लिया था कि उनकी कोई यादगार या समाधि नहीं बनाई जायेगी। महाराज जी ने आगे कहा, "हुज़ूर महाराज जी के कई सेवक भी यहाँ बैठे हैं, उन्हें याद होगा कि आठवें या नौवें दिन के बाद इतनी ज़ोर की आँधी आई, हवा चली कि न तो उन बाँसों का पता चला, न झंडियों का पता लगा और न ही उस जगह का। कोई कहता कि यहाँ संस्कार हुआ था, कोई कहता कि वहाँ हुआ था। आज पता नहीं कि वहाँ नदी बह रही है या फ़ार्म बन गया है।

"सरदार बहादुर जी ने भी यही हिदायत बड़ी साफ़-साफ़ राय साहिब को लिखवाई थी कि मेरी बात अच्छी तरह याद रखना, मैं स्नान कर चुका हूँ, मुझे कोई स्नान नहीं करवाना, मेरे कोई कपड़े मत बदलना, न ही किसी का इन्तिज़ार करना और न मेरी कोई यादगार बनवाना।

"सो सन्त इसीलिये ये बातें करते हैं कि हम बाहरमुखी न हो जायें, हम महात्माओं की कबरों पर मत्थे टेकने न शुरू कर दें, समाधों पर माथे रगड़ने

न शुरू कर दें। सन्तों की याद के प्रति सच्ची और सबसे ऊँची भक्ति करने का अर्थ उनके उपदेशों पर चलना ही है, जिनके लिये उन्होंने अपना सारा जीवन अर्पित किया ; उस आन्तरिक रूहानी मार्ग पर चलना है जोकि वापस परमात्मा से मिलाता है। जब हम इन बाहरमुखी बातों में फँस जाते हैं तो धीरे-धीरे सन्तों के असली उपदेश से कोसों दूर चले जाते हैं।"

महाराज जी ने बड़े महाराज जी की आगरा-यात्रा का विवरण भी दिया, जहाँ कि स्वामीजी ने जन्म लिया था और सत्संग प्रारम्भ किया था। महाराज जी ने इसी सत्संग में कहा, "हुज़ूर महाराज जी जब आगरा गये तो वहाँ के व्यवस्थापक उन्हें समाधि दिखाने भी ले गये। हुज़ूर महाराज जी ने बड़े अफ़सोस के साथ कहा, 'आप तो स्वामीजी के उपदेश से बहुत दूर निकल चुके हैं। आपने तो उस्तरों की माला अपने गले में डाल ली है, यह तो आपका ही गला काट देगी ?' देख लो, पचास साल तो हो गये, लेकिन अभी तक भी उनके आपस में मुकद्दमे चल रहे हैं।"

महाराज जी की आगरा-यात्राएँ और सत्संग

महाराज जी ने एक दिन बताया कि १९७८ में उनके आगरा सत्संग के दौरे के समय दयालबाग की व्यवस्था-कमेटी के मेम्बर उनसे मिलने आये। सोंधी साहिब और अन्य डेरे के अधिकारी भी उस समय महाराज जी के साथ थे।

बातचीत के दौरान महाराज जी ने दयालबाग के मेम्बरों से पूछा कि स्वामीबाग के सत्संगी कब तक स्वामीजी की समाधि का निर्माण पूरा होने की उम्मीद करते हैं। श्री सुखिया उनके यहाँ के एक प्रमुख अधिकारी और दिवंगत मेहता साहिब जी महाराज (दयालबाग के पिछले गुरु) के दामाद थे। उन्होंने कहा कि यही सवाल बाबू पुरुषोत्तमदास जी टण्डन से कई साल पहले किया गया था। श्री टण्डन उस समय स्वामीबाग की प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष थे। वे एक समय इण्डियन नेशनल कांग्रेस के सभापति भी रहे थे और राजनैतिक तथा साहित्यिक जगत में उनका बड़ा आदर था।

श्री सुखिया ने बताया कि उस सवाल के उत्तर में श्री टण्डन ने कहा था, "मैं नहीं कह सकता कि यह कभी तैयार होगी भी या नहीं। ऐसा लगता है कि स्वामीजी ने संगत को सेवा करने का केवल एक मौका दिया है।"

तब दयालबाग के वर्तमान सतगुरु लालजी महाराज ने महाराज जी से कहा, "अगर आपको (अर्थात राधास्वामी सत्संग ब्यास को) और हमें समाधि की पूजा करने का अधिकार मिल जाये और निर्माण-कार्य में भी हम सहयोग करें, तो बहुत जल्दी बन सकती है।"

इस पर महाराज जी ने पूछा कि क्या स्वामीजी महाराज की समाधि की पूजा करना सही है और उनके उपदेशों के अनुसार ठीक है? परन्तु इस सवाल का किसी ने कोई जवाब नहीं दिया।

सत्संग के बाद किसी ने महाराज जी से पूछा कि क्या वे पहले भी कभी स्वामीबाग गये थे? महाराज जी ने बताया कि वे इससे पहले तीन बार स्वामीबाग जा चुके हैं।

पहली बार वे अपने विवाह के कुछ समय बाद, १९४५ में गये थे। वे अपने ससुराल पिसावा जा रहे थे, जोकि आगरा से कुछ ही दूर अलीगढ़ शहर के पास एक गाँव है। उनके भाई उस वक्त आगरा में नियुक्त थे और महाराज जी उनसे भी मिलना चाहते थे।

महाराज जी आगरा जा ही रहे थे, इसलिये बड़े महाराज जी ने उनसे स्वामीबाग के गुरु बाबूजी महाराज जी से मिलने को कहा। सो महाराज जी अपनी नव-वधू के साथ बाबूजी महाराज जी से मिले। उन्होंने दोनों को फूल मालाएँ पहनाईं और बड़े महाराज जी की कुशलक्षेम भी बड़े स्नेह से पूछी, तथा महाराज जी के लिये स्वामीजी की समाधि देखने का इन्तिज़ाम किया, जोकि उस समय भी बन ही रही थी, जैसे कि आज भी बन रही है। बाबूजी महाराज खुद उन्हें नहीं ले जा पाये, क्योंकि वे उस समय बहुत अस्वस्थ थे।

बड़े महाराज जी ने महाराज जी से यह भी कहा कि स्वामीबाग में उनके द्वारा बनवाई हुई दो कोठरियाँ भी हैं, जिन्हें देखने की महाराज जी कोशिश करें। ये कोठरियाँ बाबाजी महाराज के समय में बनवाई गई थीं। किसी ने उन कोठरियों को दूर से बताया पर महाराज जी पास तक नहीं जा सके, हालाँकि वे उन्हें देखना चाहते थे।

महाराज जी की दूसरी आगरा-यात्रा १९४८ में हुई। बड़े महाराज जी के चोला छोड़ने के बाद वे डाक्टर स्मिथ को लेकर वहाँ गये। राय साहिब मुन्शीराम ने उस समय दयालबाग के गुरु श्री मेहता साहिब जी को महाराज जी की यात्रा के सम्बन्ध में पहले ही लिख दिया था। उनके ठहरने की



सतगुरु पद पर आने के बाद महाराज जी की पहली आगरा-यात्रा

दायें से बायें – श्री भानसिंह, श्री आर.एन. मेहता, श्री दरियाईलाल कपूर, कप्तान पुरुषोत्तमसिंह ग्रेवाल, महाराज चरनसिंह जी, श्री आहलूवालिया, श्रद्धेय श्री मेहता साहिब जी, राव साहिब शिवध्यान सिंह जी, राय साहिब मुन्शीराम, (अगले व्यक्ति का नाम नहीं मालूम), श्री एस.एस. भार्गव, श्री सुखिया (श्रद्धेय श्री मेहता साहिब जी के सेक्रेटरी)

व्यवस्था वहाँ के गेस्ट हाउस में की गई थी। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि सरदार बहादुर जी, राय साहिब मुन्शीराम और मेहता साहिब जी अपने कालेज के दिनों में मित्र थे और एक ही क्लास में पढ़ते थे।

महाराज जी और डाक्टर स्मिथ से मेहता साहिब जी बड़े स्नेह-भाव के साथ मिले और अपने दामाद मि. सुखिया के साथ उन दोनों को सब शैक्षणिक संस्थाओं, औद्योगिक प्रतिष्ठानों, कारखानों और पूरे दयालबाग को देखने भेजा। शाम को दोनों के सम्मान में उन्होंने भोज दिया और अपने सारे अधिकारीगण से मिलाया। उन्होंने सरदार बहादुर जी और बड़े महाराज जी को बड़े प्रेम के साथ याद किया। यह महाराज़ जी की दूसरी यात्रा थी।

फिर १९५१ में महाराज जी के गद्दी पर आने के कुछ समय बाद, राय साहिब मुन्शीराभ ने सुझाव दिया कि उन्हें आगरा जाना चाहिये क्योंकि यह स्वामीजी का मूल स्थान है। यह महाराज जी की स्वामीबाग और दयालबाग की तीसरी यात्रा थी।

महाराज जी अब राधास्वामी सत्संग ब्यास के प्रमुख थे, सो यह एक आफ़िशियल और औपचारिक यात्रा थी। इसलिये डेरे के कई अधिकारी और कुछ खास सत्संगी महाराज जी के साथ गये। उनकी संख्या नौ थी और इसकी सूचना पहले से ही मेहता साहिब जी को दे दी गई थी।

सबके रहने का इन्तिज़ाम दयालबाग के गेस्ट हाउस में किया गया था। लेकिन एक पुराने सत्संगी, सरदार चाननसिंह ने साथ जाने की ज़िद की और इससे नौ के बजाय वे दस व्यक्ति हो गये। उनके वहाँ पहुँचने पर मेहता साहिब जी महाराज जी से मिलने आये। महाराज जी ने अपनी हमेशा जैसी सौम्यता के साथ एक व्यक्ति ज़्यादा लाने के लिये मेहता साहिब जी से माफ़ी माँगी। परन्तु सबको मेहता साहिब का यह जवाब सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, "आपको नहीं लाना चाहिये था।" स्पष्ट है, वे सख़्त अनुशासन पसन्द व्यक्ति थे।

महाराज जी वहाँ सत्संग में भी जाना चाहते थे, परन्तु न तो उन्हें सत्संग का समय बताया गया था और न उन्हें आमन्त्रित ही किया गया था। सो जब महाराज जी को मालूम हुआ कि सत्संग हो रहा है, तो उन्होंने सन्देश भेजा कि वे सत्संग में आना चाहेंगे। इस पर उन्हें आमन्त्रित किया गया और

उनके लिये एक ख़ास कुर्सी भी लगाई गई। सत्संग में केवल 'सार बचन' में से शब्द पढ़े जा रहे थे, शब्दों की कोई व्याख्या नहीं की जा रही थी।

मेहता साहिब जी ने महाराज जी को दयालबाग की सभी संस्थाएँ दिखाईं और अपने अधिकारियों को महाराज जी और उनके साथियों से मिलाया। श्री आर. एन. मेहता ने, जो देहली के एक प्रमुख सत्संगी हैं और जो महाराज जी के साथ वहाँ गये थे, मेहता साहिब जी से एक ग्रुप फ़ोटो उतरवाने का निवेदन किया। एक फ़ोटोग्राफ़ ले लेने के बाद श्री आर. एन. मेहता ने कहा कि वे एक और फ़ोटो लेना चाहते हैं, परन्तु मेहता साहिब जी ने मना कर दिया। ऐसी थी उनकी अनुशासन-प्रियता!

महाराज जी को आश्चर्य हो रहा था कि वहाँ उनकी जान-पहचान के कई व्यक्तियों में से कोई भी उनसे मिलने क्यों नहीं आया? उदाहरण के लिये, श्री दीनानाथ, पंजाब के एक अवकाश-प्राप्त पुलिस अधिकारी, वहाँ सिक्यूरिटी आफ़िसर थे और महाराज जी के पिता तथा तायाजी को अच्छी तरह जानते थे। बाद में वे एक रात बाथरूम के पिछले दरवाज़े से आकर मिले। उन्होंने बताया कि वहाँ के सारे अधिकारियों को सख़्त हिदायत दी गई थी कि वे महाराज जी से नहीं मिलें।

राय साहिब मुन्शीराम कहते थे कि मेहता साहिब जी बड़े ईमानदार और नेक व्यक्ति थे। वे बहुत बुद्धिमान थे और उनकी नौकरी के दिनों में सब उनका बड़ा आदर करते थे। लेकिन अवश्य ही वे बड़े अनुशासन-प्रिय व्यक्ति थे।

आगरा की इस यात्रा में महाराज जी स्वामीबाग के सभापति श्री दयाराम से मिलने भी गये, जोकि उस समय बहुत बीमार थे। उन्होंने महाराज जी का बड़े आदर से स्वागत किया। स्वामीबाग के सब लोगों को बड़े महाराज जी के लिये बड़ा सम्मान और प्रेम था। राधास्वामी सत्संग ब्यास के सतगुरुओं ने पंजाब और देश के अन्य भागों में नाम का जो प्रचार किया, इसकी वे सब बड़ी प्रशंसा करते थे। श्री दयाराम ने महाराज जी के लिये स्वामीजी के शब्द तर्ज़ में पढ़वाये। और वे सुनना चाहते थे कि हमारे सत्संग में शब्द किस तर्ज़ में पढ़े जाते हैं। इसकी भी उसी समय व्यवस्था कर दी गई।

महाराज जी ने कहा कि उनका शब्द पढ़ने का ढंग हमारे ब्यास के पाठियों से अच्छा था।

स्वामीबाग में महाराज जी कुछ सेवा देना चाहते थे। राय साहिब मुन्शीराम की सलाह से ग्यारह सौ रुपये का चेक वहाँ भेजा गया। लेकिन चेक वापस आ गया और सन्देश आया कि वे चेक सेवा में नहीं लेते। सेवा नकद होनी चाहिये, लेकिन उसकी रसीद नहीं दी जायेगी। सो महाराज जी ने वह रकम नकद भिजवाने की व्यवस्था कर दी। और इस तरह यात्रा समाप्त हुई।

कुछ वर्षों बाद मेहता साहिब जी ने डेरे को सुप्रीम कोर्ट एक के फैसले की प्रतिलिपि भेजी, जिसमें केवल एक प्राथमिक मुद्दे पर फैसला किया गया था, हालाँकि मुकद्दमा स्वामीबाग और दयालबाग में बरसों से चल रहा था। मुकद्दमें के कई अंश बहुत पेचीदा और जटिल हैं, परन्तु सितम्बर १९२३ में दयालबाग ने स्वामीबाग पर यह मुकद्दमा दायर किया था कि उन्हें भी स्वामीजी की समाधि पर जाने और पूजा करने का हक है। कुछ प्राथमिक मुद्दों पर मुकद्दमा प्रिवी कौंसिल तक गया और अब सुप्रीम कोर्ट में है, लेकिन अभी तक फ़ैसला नहीं हुआ है।

अपने पत्र में मेहता साहिब जी जानना चाहते थे कि ब्यास में सतगुरु कैसे नियुक्त किये जाते हैं। वे बड़े महाराज जी और सरदार बहादुर जी की वसीयतों की और साथ ही राधास्वामी सत्संग ब्यास की ट्रस्ट डीड की प्रतिलिपियाँ चाहते थे। ये सब दस्तावेज़ उन्हें भेज दिये गये।

अपने पत्र में मेहता साहिब जी ने यह भी सुझाव दिया कि राधास्वामी सत्संग ब्यास स्वामीजी की समाधि के निर्माण में उनका साथ दे, ताकि समाधि जल्दी पूरी हो सके। राय साहिब मुन्शीराम ने जवाब दिया कि बड़े महाराज जी समाधि बनाने के विरुद्ध थे क्योंकि यह स्वामीजी के उपदेश के खिलाफ़ है। इसलिये राधास्वामी सत्संग ब्यास उनके साथ इस योजना में शामिल होने में असमर्थ है।

महाराज जी की चौथी आगरा यात्रा एक ऐतिहासिक घटना थी। कहा जाता है कि स्वामीजी से उनके कुछ शिष्यों ने पूछा था कि वे फिर कब मनुष्य चोले में आयेंगे? कहते हैं उन्होंने जवाब दिया, "सौ साल बाद।"

नवम्बर १९७८ में जब महाराज जी सत्संग करने आगरा गये उस समय स्वामीजी को चोला छोड़े सौ साल हुए थे।

कई वर्षों से बीबी रली महाराज जी को सुझाव दे रही थीं कि वे आगरा में सत्संग करें, जोकि स्वामीजी का जन्म-स्थान है। बीबी रली का आगरा से निकट सम्बन्ध रहा था, क्योंकि जब वे बच्ची थीं तब उन्हें चाचाजी महाराज (सेठ प्रतापसिंह जी) से नाम मिला था। यह बात उनके डेरे आने से पहले की है। इसके बाद वे अपने पिता के साथ डेरे आईं और उन्हें बड़े महाराज जी ने नामदान दिया।

सो १९७८ में भुआजी (बीबी रली) की खुशी के लिये और उनकी इच्छा को रखने के लिये महाराज जी ने आगरा में सत्संग करने का फ़ैसला किया। श्री आर. एन. मेहता को आगरा में सारे ज़रूरी इन्तिज़ाम करने की ज़िम्मेदारी दी गई। यह एक बहुत बड़ा काम था। सारे देश से सत्संगी इस मौके पर आगरा आना चाहते थे, क्योंकि आगरा में सत्संग पहली बार हो रहा था। इसका महत्व इसलिये भी बहुत था कि आगरा से ही राधास्वामी मार्ग की शुरूआत हुई थी।

महाराज जी की अपार दया-मेहर से यह सारा कठिन कार्य बड़ी सफलतापूर्वक पूरा हुआ और पूरी व्यवस्था बहुत उत्तम रही। आगरा के निवासी इतने बड़े पैमाने पर हुई व्यवस्था को देखकर आश्चर्य-चकित रह गये।

सन्त अपना काम इस संसार में कैसे करवा लेते हैं, यह केवल वे ही जानते हैं। उनकी सेवा में जो आपसी प्रेम और एकता होती है, जो आन्तरिक शक्ति होती है, जो रूहानी स्फूर्ति होती है, उसको समझ पाना या उसका वर्णन करना बहुत मुश्किल है। सेवा का प्रेममय वातावरण हमें अपने तुच्छ व्यक्तित्व से कहीं ऊपर उठाकर सतगुरु की सर्वव्यापकता का आभास कराता है।

श्री एस. एल. सोंधी, सेक्रेटरी राधास्वामी सत्संग ब्यास, द्वारा दिये गये वृत्तान्त के कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं :

"महाराज जी ने २४, २५ और २६ नवम्बर, १९७८ को प्रतिदिन सत्संग किये। उनका कार्यक्रम स्वामीबाग से शुरू हुआ, जहाँ वे २४ नवम्बर को कुछ प्रमुख सत्संगियों के साथ दोपहर को ३.४५ बजे गये। स्वामीबाग

के व्यवस्थापक-मण्डल के सदस्यों ने उनका स्वागत आदर और सौहार्द के साथ किया। उन्हें स्वामीबाग के वे प्रमुख स्थान दिखाये गये, जिन्हें वहाँ सब बहुत आदरणीय मानते हैं।

"पहला सत्संग उसी दिन शाम को पाँच बजे, आगरा विश्वविद्यालय के पास, पालीवाल पार्क में हुआ।

"अगले दिन सुबह १०.३० बजे महाराज जी दयालबाग गये, जहाँ उनसे लाल साहिब जी महाराज और उनकी कौंसिल के सदस्य मिले। १२.१५ बजे हुज़ूर से श्री अगमप्रसाद माथुर मिलने आये; वे पीपल मण्डी के प्रमुख हैं, जहाँ हुज़ूर स्वामीजी के परम भक्त हुज़ूर राय साहिब सालिगराम जी सत्संग किया करते थे। श्री माथुर महाराज जी के पास करीब आधा घण्टा ठहरे। दूसरा सत्संग शाम को ५.०० बजे हुआ।

"तीसरे दिन सुबह श्री लाल साहिब जी महाराज अपने व्यवस्थापक-मण्डल के साथ महाराज जी से मिलने आये और करीब आधा घण्टा ठहरे। इस मुलाकात के बाद महाराज जी पण्डाल में गये, जहाँ उन्होंने अपना तीसरा सत्संग प्रदान किया, जो करीब दो घण्टे चला।

"कई आगरा-वासियों के लिये महाराज जी के सत्संग सुनना एक बहुत गहरा ज्ञान-वर्द्धक अनुभव रहा होगा, क्योंकि उन्होंने शायद ही पहले कभी सन्तमत की इतनी प्रभावशाली व्याख्या, इतने स्पष्ट और ज़ोरदार शब्दों में तथा इतनी सादी शैली में सुनी हो। स्वामीबाग के एक सत्संगी ने तीसरे सत्संग के बाद जो विचार प्रकट किये उनसे एक साधारण व्यक्ति की प्रतिक्रिया का पता लगता है, 'क्या यह सम्भव नहीं कि ऐसे सत्संग रोज़ हो सकें?' उसने कहा। जब उससे कहा गया कि उसे ऐसे सत्संग सुनने के लिये ब्यास आना पड़ेगा, तो उसने पूछा, 'महाराज जी आगरा फिर कब आयेंगे?'

"अन्त में श्री आर. एन. मेहता के बारे में भी कहना आवश्यक है। उन्हें बड़ी कठिन परिस्थितियों में काम करना पड़ा, और यह उनके लिये गौरव की बात है कि पूरी ज़िम्मेदारी का बोझ उन्होंने बड़ी प्रसन्नता और तत्परता के साथ निभाया। उन्होंने महाराज जी की दया-मेहर में पूरा विश्वास रखा, जिसके फलस्वरूप उनको सुपुर्द किये गये अब तक के कार्यों में सबसे मुश्किल कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।"

सतगुरु को जाति-पाँति के भेद नापसन्द

सामाजिक पक्षपात अलग-अलग देशों में अलग-अलग रूप अपना लेता है। भारत में हिन्दुओं, मुसलमानों और हरिजनों में एक-दूसरे के प्रति काफ़ी भेदभाव का वातावरण रहा है। अब यह भावना पहले से कम है, परन्तु अब भी काफ़ी सामाजिक भेदभाव मौजूद है। सन्त हर व्यक्ति और हर चीज़ में परमात्मा को देखते हैं, इसलिये वे ऐसे भेदभाव से हमेशा ऊपर होते हैं। नीचे लिखी हुई बातों से यह स्पष्ट होता है :

कई वर्षों पहले, हम लोग सिकन्दरपुर गये थे। वहाँ हम सब एक स्वर से स्वादिष्ट भोजन के लिए बेजी की प्रशंसा कर रहे थे। भोजन बहुत सुस्वाद और बढ़िया बना हुआ था। बेजी ने कहा, "क्या तुम जानती हो कि हमारा खाना बनाने वाली एक मुस्लिम महिला है ? महाराज जी जब सिरसा में रहते थे तब यह उनके पास थी, उनका खाना बनाती और घर के अन्य काम भी करती थी।"

यह सुनकर हम लोगों की दिलचस्पी बढ़ गई। हमने पूछा कि यह कैसे हुआ, क्योंकि उस ज़माने में तो सब लोग जाति-पाँति के भेदभाव को बहुत मानते थे। एक हिन्दू या सिख परिवार में मुस्लिम महिला खाना बनाये, यह एक बड़ी असाधारण बात थी।

बेजी ने कहा कि शुरू से ही महाराज जी ने कभी हिन्दू, मुसलमान या हरिजन में कोई फ़र्क नहीं किया। असल में कालेज के दिनों में भी उनके कई मुस्लिम दोस्त थे।

शादी के बाद उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी के मन में भी इस प्रकार के भेदभाव का कोई ख़याल नहीं था। उनकी पत्नी ने अपने मायके पिसावा के एक पुराने मुस्लिम नौकर आज़िम हुसैन को बुला लिया था। महाराज जी ने उसे अपने पास सिरसा में रख लिया और उसको मोहन कहकर पुकारने लगे ताकि जब उनके परिवार के लोग उनके पास सिरसा आयें तो मुसलमान नौकर को देखकर एतराज़ न करें; क्योंकि उस समय, उनके परिवारजन मुसलमान या हरिजन को नौकर रखने में खुश नहीं थे। बाद में महाराज जी के समझाने पर उन्होंने धीरे-धीरे इस भेदभाव की भावना को त्याग दिया। अब परिवार में किसी को ऐसा जाति-पाँति का ख़याल नहीं है। काफ़ी समय

तक किसी को पता भी नहीं चला कि महाराज जी के पास एक मुस्लिम नौकर है।

फिर जब बड़े महाराज जी बीमार हुए, महाराज जी उनकी सेवा करने के लिये उनके पास आ गये। अपनी पत्नी को महाराज जी ने उन दिनों पिसावा भेज दिया था, क्योंकि उन्हें जल्दी ही बच्चा होने वाला था। महाराज जी अकेले ही थे, इसलिये बड़े महाराज जी की कोठी में बीबी रली के पास ही खाना खाते थे।

उस समय वहाँ उन्हें सुबह बिस्तर में चाय देने वाला कोई नौकर नहीं था। उन्हें बिस्तर में चाय पीने की आदत हो गई थी, इसलिये उन्हें सुबह चाय की कमी खटकती थी। उन्होंने जैसे-तैसे एक सेवादार लड़का ढूँढ लिया, जिसका नाम रतन था। उसे अपने नौकर की तरह रख लिया और चाय बनाना भी सिखा दिया। बाद में महाराज जी को पता लगा कि वह हरिजन है, परन्तु महाराज जी के लिये इसका कोई महत्व नहीं था।

बड़े महाराज जी के ज्योति-ज्योत समाने के बाद महाराज जी रतन को सिरसा ले आये और वह महाराज जी के पास कई वर्षों तक रहा। अब वह देहली सत्संग में एक प्रमुख सेवादार है।

मुस्लिम महिलाओं के बारे में बेजी ने हमें बताया कि देश के विभाजन के समय बड़े महाराज जी अमृतसर में इलाज के लिये ठहरे हुये थे, उस समय की बात है। ज़बरदस्त कौमी अशान्ति फैली हुई थी और चारों ओर दंगे हो रहे थे। जैसा कि हम सोच सकते हैं, कई मुस्लिम सत्संगी पाकिस्तान नहीं जाना चाहते थे जहाँ से वे आसानी से सत्संग और दर्शन के लिये न आ सकें। जिन लोगों के मन में ऐसे लगाव नहीं थे, वे भी निस्सन्देह ऐसी जगह छोड़ना पसन्द नहीं करते थे जिसे वे अपना घर समझते आये थे। गाँव की दो ऐसी महिलाओं को कुछ सत्संगी बड़े महाराज जी के पास लाये और उनसे निवेदन किया कि इन औरतों को वे अपनी शरण में रख लें।

उस समय तक बड़े महाराज जी को पिसावा से खबर आ चुकी थी कि महाराज जी की पत्नी ने एक कन्या-रत्न को जन्म दिया है। सो उन्होंने महाराज जी को बुलाया, जो उस समय उनके पास अमृतसर में थे। बड़े महाराज जी ने उनसे कहा कि इन महिलाओं को अपने यहाँ नौकर रख लें। उनमें से एक तो उनके घर और रसोईघर की देखभाल कर लेगी और दूसरी

महाराज जी की नवजात पुत्री को सँभालने में मदद देगी। बड़े महाराज जी ने उन महिलाओं के नये हिन्दू नाम रखे ताकि कोई उन्हें तंग न करे।

बेजी ने हमें बताया कि जब तक महाराज जी वकालत करते रहे उनमें से एक महिला महाराज जी के तीनों बच्चों को सँभालती रही और दूसरी सिरसा में खाना बनाती तथा घर के अन्य काम करती थी। फिर महाराज जी फ़ार्म में अपने पिता की मदद करने के लिये सिकन्दरपुर आ गये। बेजी ने कहा, "तब मैंने उस महिला के सुपुर्द पूरा रसोईघर कर दिया।" और वह अपनी मृत्यु तक रसोईघर का और खाना बनाने का काम देखती रही।

आज भी महाराज जी का निजी विश्वासपात्र और वफ़ादार नौकर हरिजन ही है। महाराज जी को इस बात का अभी कुछ ही समय पहले संयोग से पता चला। बीस वर्ष पहले उसे रखते समय उसकी जाति के बारे में उन्होंने पूछा ही नहीं था, क्योंकि इस बात को उन्होंने कभी महत्व नहीं दिया। वह बड़ा बुद्धिमान है, महाराज जी की सारी ज़रूरतों का ध्यान रखता है और उनकी बड़ी लगन तथा होशियारी के साथ सेवा करता है। महाराज जी ने भी उसके विश्वास पर अपना सारा घर छोड़ रखा है।

महाराज जी के कुछ वचन

महाराज जी द्वारा अंग्रेज़ी मीटिंगों में कहे गये कुछ वचन यहाँ दिये जा रहे हैं :

* परमात्मा अपने आपको हमारे ज़रिये पूजता है।
* दिखावटी नम्रता नकली आभूषणों के समान है।
* जब मालिक एक है, वह हमारे अन्दर है, और उसने हम सबको एक-सा बनाया है तो स्वाभाविक ही उस तक पहुँचने का मार्ग अलग-अलग लोगों के लिये अलग-अलग नहीं हो सकता। निश्चित ही वह भी एक है।
* जब वह हमारे अन्दर है, तो हम दूसरों को धोखा दे सकते हैं, अपने आप तक को धोखा दे सकते हैं, लेकिन उससे कुछ नहीं छिपा सकते।
* धन वरदान भी है और अभिशाप भी।
* ज़बान का वार तलवार के वार से गहरा होता है।
* दूसरों को परखने से पहले हमें चाहिये कि अपने आपको परखें।
* प्रेम है अपने आपको खोकर प्रियतम में समा जाना।

* विश्वास तर्क की दुनिया से दूर है।
* हमारे आलोचक ही हमारे सबसे अच्छे मार्ग-दर्शक हैं।
* अपने लफ़्ज़ों की ताकत बनाये रखना चाहते हो तो कम बोलो।
* हृदय के घावों की अचूक दवा है प्रेम और क्षमा।
* प्रेम का दिखावा, प्रेम की गहराई को नष्ट कर देता है।
* प्रेम का दिखावा करना, नकली फूलों का प्रदर्शन करना है।
* प्रेम के सामने मार्ग की सब बाधाएँ दूर हो जाती हैं।
* प्रेम की कोई कीमत नहीं लगाई जा सकती।
* स्वभाव की सरलता सन्तों का खास गुण है।
* शिक्षक बनना सरल है, शिष्य बनना कठिन।
* भक्ति प्रेम को उन्नत करती है, वासना पतित।
* सुख घटनाओं के अनुसार जीवन को ढालने में है, क्योंकि होनी नहीं बदलती।
* एकान्त हमारा सर्वोत्तम साथी है।
* प्रेम की गहराई को जानने के लिये प्रियतम से वियोग आवश्यक है।
* हास्य-रहित जीवन, आत्मा-रहित शरीर के समान है।
* जब मैं अकेला होता हूँ, अपने खुद के साथ होता हूँ।
* तेरे साथ का एक क्षण, तेरे बिना सारी ज़िन्दगी से कहीं मूल्यवान है। तेरे बिना ज़िन्दगी अर्थहीन है।
* सुख प्रेम के अर्पण में है, प्राप्ति में नहीं; देने में है, लेने में नहीं; सेवा करने में है, करवाने में नहीं; माफ़ करने में है, माफ़ किये जाने में नहीं।
* चरित्रहीन मनुष्य, सुगन्धहीन पुष्प के समान है।
* जब मैं अपने अन्तर की आवाज़ को मानता हूँ तो कभी असफल नहीं होता, असफल होता हूँ जब नहीं मानता।
* हमारी हर असफलता, सफलता की ओर एक कदम है।
* जो कुछ हमने सीख रखा है उसे भूल जाना ही सच्चा ज्ञान है।
* इन्द्रियों के भोगों की कीमत बहुत बड़ी चुकानी पड़ती है, उनसे सुख मिलता है बहुत कम।
* जो आप कर सकते हैं वह नहीं, जो करना चाहिये वह करें।
* दया और मिठास से परिपूर्ण वचन हीरे-मोतियों से कहीं कीमती हैं।

* सबका दास ही सबसे श्रेष्ठ है।
* दुनिया एक पुल है, उस पर चलो किन्तु मकान न बनाओ।
* मालिक जानता है कि हमारे लिये क्या बेहतर है।

महाराज जी की नम्रता

सत्संगी या गैर-सत्संगी जो कोई भी महाराज जी के निकट आया है, वह उनकी स्वाभाविक नम्रता और विनय से हमेशा प्रभावित हुआ है। उनके हर कार्य से, हर अदा से, विचारों और बातचीत से, उनकी अपार नम्रता प्रकट होती है जो हृदय को स्पर्श किये बिना नहीं रहती।

आप उनसे कुछ कह पायें या आदर व्यक्त कर पायें, उससे पहले ही वे दोनों हाथ जोड़कर राधास्वामी कर लेते हैं। कोई उन्हें फूलों का हार पहनाना चाहे, तो वे उसे मिठास के साथ मना कर देते हैं। आपसे मिलने आने वालों को वे हमेशा अपने बराबर की कुर्सी पर ही बिठाते हैं, चाहे वह ज़मीन पर बैठने की कितनी ही ज़िद करे।

जब महाराज जी श्वेत सादे कपड़े पहने और बड़ी भव्यता से अपनी ही अनोखी शैली में शाल लपेटे हुए रोज़ सुबह सत्संग में जाते हैं, तो मंच पर आते ही सबसे पहले दोनों हाथ जोड़कर राधास्वामी करते हैं। फिर कोई कुछ समझ पाये इससे पहले ही वे संगत को झुककर मत्था टेकते हैं।

यह उनकी नम्रता का अद्वितीय उदाहरण है जो न कहीं देखा जाता है, न पाया जाता है। कई पहली बार आने वाले जिज्ञासु यह देखकर आश्चर्य करते हैं, क्योंकि ऐसी सभाओं में रिवाज यही होता है कि श्रोता ही पहले झुककर प्रणाम करें। अक्सर अनुयायी ही अपने पूज्य नेता को सिर झुकाते हैं। यह कहीं नहीं देखा गया है कि गुरु एकत्रित हुए शिष्यों को झुककर मत्था टेकें। कई सभाओं में, प्रमुख नेता या कोई प्रसिद्ध व्यक्ति मंच पर तेज़ रोशनी की चकाचौंध में आते हैं और उनके प्रशंसक तालियों की गड़गड़ाहट से उनका स्वागत करते हैं। स्टेज पर खड़े रहकर वे उनके अभिवादन को स्वीकार करते हैं। डेरे के सन्त-सतगुरु ऐसा कुछ नहीं करते।

एक बार एक साधु महाराज जी से मिलने आया। वह महाराज जी को प्रणाम कर पाता उससे पहले ही उसने महाराज जी को अपने प्रति सिर

झुकाते हुए देखा। महाराज जी की इस नम्रता को देखकर साधु बहुत प्रभावित हुआ और उसने कहा, "जब कभी हम साधु-सन्तों या धार्मिक नेताओं के पास जाते हैं तो वे उम्मीद करते हैं कि हम उनको झुककर प्रणाम करें, और यह एक आम रिवाज भी है। मैंने यही एक ऐसी जगह देखी है जहाँ गुरु अपने शिष्यों को पहले प्रणाम करते हैं। ऐसा क्यों है ?" महाराज जी ने उत्तर दिया, "मैं परमात्मा का दास हूँ, और परमात्मा सबमें है।"

इस छोटे से जवाब में उन्होंने प्रश्न का उत्तर ही नहीं दिया बल्कि अपनी गहरी विनयशीलता और नम्रता का कारण भी स्पष्ट कर दिया।

सलाद की घटना

महाराज जी इस दुनिया में रहते हुए और इस बात को जानते हुए भी कि यह कैसे चल रही है, इस दुनिया से अछूते और पवित्र रहे हैं।

एक बार अंग्रेज़ी मीटिंग में महाराज जी ने एक रोचक घटना सुनाई जो उनके साथ १९६२ में इंग्लैंड की पहली यात्रा में बीती थी। कर्नल साण्डर्स, जो उस समय इंग्लैंड में उनके प्रतिनिधि थे, महाराज जी और प्रोफ़ेसर जनक पुरी के साथ स्काटलेण्ड में एडिनबरा गये। वहाँ कर्नल उनको एक शाकाहारी रेस्तराँ में ले गये।

उन्होंने महाराज जी से कहा कि उन्होंने सारा इन्तिज़ाम कर लिया है और शुद्ध शाकाहारी भोजन ही उन्हें परोसा जायेगा। भोजन के लिये आदेश देकर कर्नल बाथरूम में गये। इसी बीच, सलाद की प्लेटें लाकर महाराज जी और प्रोफ़ेसर पुरी के सामने टेबल पर रख दी गईं।

सलाद में महाराज जी ने कुछ सफ़ेद और पीली चीज़ देखी, जिसको वे नहीं पहचानते थे। उस चीज़ की बड़ी सफ़ाई से काटी हुई फाँकें अन्य सब्जियों के साथ रखी हुई थीं। सो उन्होंने प्रोफ़ेसर से पूछा, "यह सब्ज़ी है या फल ?" दोनों बातचीत करके इस नतीजे पर पहुँचे कि यह किसी प्रकार की सब्ज़ी है जो यूरोप में पैदा होती है, भारत में नहीं, और इसीलिए उन्होंने इसे पहले नहीं देखा है।

लेकिन भोजन शुरू करने से पहले वे अपने मेज़बान की राह देखते रहे। जब कर्नल वापस आये और सलाद को देखा, तो बोल पड़े, "हे भगवान!

इन्होंने अण्डों के टुकड़े सलाद में मिला दिये हैं।" फिर बहुत माफ़ी माँगते हुए उन्होंने सलाद को बदलवाया।

उस समय तक महाराज जी ने कभी अण्डा (टुकड़ों में) नहीं देखा था और इसलिये वे उसे पहचान नहीं पाये। महाराज जी ने कहा कि असल में उन्होंने कभी कोई सामिष भोजन की वस्तु, मांस या किसी प्रकार की शराब आदि अपनी ज़िन्दगी में नहीं देखी थी।

डेरे के अपने सुरक्षित बचपन में तो इन चीज़ों के देखने का सवाल ही नहीं था। परन्तु उसके बाद लॉ-कालेज के विद्यार्थी के नाते लाहौर में, या सिरसा में वकालत के दिनों में जबकि महाराज जी बहुत लोकप्रिय थे और क्लब के सदस्य थे, तब भी उन्होंने कभी अण्डे, मांस या शराब आदि वस्तुएँ नहीं देखी थीं।

इस दुनिया में सब चीज़ों के बीच रहते हुए भी महाराज जी हमेशा बेदाग रहे हैं, सबसे परे रहे हैं—जल में कमल की तरह जोकि अपनी पंखुड़ियाँ ऊपर सूर्य की पवित्र किरणों के लिये ही खोलता है।

प्रभु ही सच्चा दाता है

महाराज जी ने एक दिन सुबह सत्संग में एक कहानी सुनाई, जो बड़े महाराज जी सुनाया करते थे। वे सन्तोष के बारे में बात कर रहे थे। उन्होंने कहा कि सन्तोष मन की ही एक अवस्था है और हमें मन को वश में रखना सीखना चाहिए। अगर मन को ढील दे दें तो हमारी इच्छाओं की कोई सीमा ही नहीं रहेगी। महाराज जी ने इस बात को अकबर बादशाह की एक वार्ता का उदाहरण देकर समझाया।

सोलहवीं शताब्दी में अकबर हिन्दुस्तान का एक महान मुगल बादशाह हुआ है। एक दिन अकबर जंगल में शिकार खेलने गया और अपने साथियों से बिछुड़ गया। उसे बहुत प्यास लगी, वह पानी ढूँढ रहा था कि उसे एक किसान का कुआँ मिला और उसने किसान से पानी माँगा। किसान ने उसे पानी तो पिलाया ही, साथ ही गाँव के सीधे-सादे लोगों की तरह उसका सत्कार भी किया और खाना भी खिलाया; यद्यपि उसे यह मालूम नहीं था

कि उसका अतिथि ख़ुद बादशाह है, क्योंकि अभी तक बादशाह ने अपना परिचय नहीं दिया था।

बादशाह बहुत खुश हुआ और किसान के आतिथ्य से बहुत कृतज्ञ भी। फिर उसने किसान से कहा कि वह बादशाह है और अगर किसान को कभी किसी भी चीज़ की ज़रूरत पड़े तो वह उसके पास खुशी से आ सकता है।

लेकिन किसान ने जवाब दिया कि वह तो एक सीधा-सादा आदमी है जोकि खेती करता है और बादशाह को लगान देता है। इसलिये उसे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

फिर भी बादशाह ने उसे अपनी अँगूठी याददाश्त के रूप में दी और कहा कि अगर कभी भी उसे मिलना हो तो महल के सिपाहियों को अँगूठी दिखाकर आ जाये।

समय बीतता गया और किसान बादशाह और उसकी अँगूठी, दोनों के बारे में भूल गया। कुछ साल बाद देश में भारी अकाल पड़ा और गरीब किसान के तंग साधनों में तंगी और बढ़ गई। किसान की पत्नी ने उसे बादशाह की याद दिलाई और कहा कि वह बादशाह के पास जाकर सहायता माँगे क्योंकि वे बहुत तकलीफ़ में थे। सो किसान अपने साथ अँगूठी लेकर अकबर बादशाह की राजधानी आगरा आया।

जब किसान आगरा में बादशाह के महल पर पहुँचा तो उसने बादशाह की अँगूठी चौकीदारों को दिखाई और उसे बादशाह के पास पहुँचा दिया गया। लेकिन उस समय अकबर प्रार्थना कर रहा था, सो किसान धीरे से जाकर पास ही खड़ा हो गया।

अकबर अपनी सारी तकलीफ़ें और दुःख मालिक को सुना रहा था। वह कह रहा था, "हे मालिक, इस सूखे के कारण राज्य की आमदनी बहुत कम हो जायेगी, और शाही ख़जाने खाली हो जायेंगे। मैं अपने सिपाहियों को तनख़्वाह कहाँ से दूँगा ? मैं उन्हें क्या खिलाऊँगा ? अपने महल की सँभाल कैसे कर पाऊँगा ? और मेरी शाही शान-शौकत का क्या होगा ? मैं रुपये के बिना अपनी सल्तनत कैसे चलाऊँगा ?" बादशाह बहुत दुःखी था और मालिक से प्रार्थना कर रहा था कि उसकी समस्याओं को सुलझाए।

किसान यह सब सुनकर, बिना बादशाह से मिले ही, वापस जाने लगा।

परन्तु अकबर ने अपनी प्रार्थना ख़त्म कर ली थी। उसने किसान को देखा और पहचान लिया। अकबर को याद आ गया कि वह किसान का कर्ज़दार था। उसने किसान को वापस बुलाया। बादशाह ने उससे पूछा कि वह बिना मिले और बिना कुछ माँगे वापस क्यों जा रहा था? किसान ने जवाब दिया, "हे बादशाह! मैं अपनी तकलीफ़ में तुम्हारी मदद माँगने आया था, पर तुम्हारी समस्याओं को सुनकर, और जो तुम मालिक से इतनी माँगें कर रहे थे उसे देखकर मैंने अपना विचार बदल दिया। मैं तो समझा था कि तुम सचमुच बादशाह हो और कुछ भी दे सकते हो। पर मैं देख रहा हूँ, तुम तो मुझसे भी बड़े भिखारी हो। अगर मुझे कुछ माँगना ही है तो मालिक से ही माँगूगा, उसका ही दरवाज़ा खटखटाऊँगा।"

महाराज जी ने कहा कि आदमी जितना बड़ा होता है, उतनी ही बड़ी उसकी समस्याएँ भी होती हैं, इच्छाएँ और माँगें भी होती हैं, और उसका असन्तोष और दुःख भी उतना ही ज़्यादा होता है। महान अकबर एक बहुत असन्तुष्ट व्यक्ति था, और बेचारा गरीब किसान उससे कहीं सुखी और सन्तुष्ट था।

महाराज जी ने कबीर का उद्धरण दिया, 'जिसको कछू न चाहिये सो ही शाहंशाह।' इसी सिलसिले में महाराज जी अक्सर कहते हैं, 'विणु तुधु होरु जि मंगणा सिरि दुखा कै दुख।'

सन्तों के इशारे

महाराज जी के एक मित्र ने मुझे एक घटना सुनाई जिससे पता चलता है कि सन्त किस तरह आगे आने वाली विपत्तियों की ओर इशारा करके मदद करने की कोशिश करते हैं। मित्र ने कहा कि यदि हम उनकी दी हुई सलाह को गम्भीरता से लें तो कितनी ही मुसीबतें टल सकती हैं। फिर भी हम उनकी सलाह पर इतना कम ध्यान देते हैं कि जब तक वह घटना घट नहीं जाती, हमें उनकी सलाह के महत्व का पता नहीं चलता। फिर हमारी समझ में आता है कि हम कितने नासमझ थे। घटना का वर्णन उसी तरह किया जा रहा है जैसे कि उनके मित्र ने मुझसे किया था :

"महाराज जी एक बार हमारे घर आये थे, तब उन्होंने मेरी पत्नी को

हिदायत दी, 'बहन जी, अगले तीस दिन तक आप नियमित रूप से सुमिरन करें।'

"लेकिन मेरी पत्नी ने मज़ाक में जवाब दिया, 'आप ही मेरे लिये कर लें,' क्योंकि हम महाराज जी को उनके सतगुरु बनने के दस साल पहले से जानते हैं। वे हमारे लिये परिवार के एक सदस्य के समान थे और सतगुरु बनने के बाद भी हमसे वैसा ही सम्बन्ध रखते आये हैं।

"जाने से पहले, मोटर में बैठते हुए महाराज जी ने एक बार फिर बड़ा ज़ोर देकर मेरी पत्नी से सुमिरन करते रहने को कहा। लेकिन उसने महाराज जी की हिदायत को न तो गम्भीरता से लिया और न ही सुमिरन किया।

"कुछ समय बाद हमें एक शादी में शिमला जाना पड़ा। चार दिन के बाद, हमारे पड़ोसी ने हमें फोन से सूचित किया कि हमारे नौकर ने हमारे घर में चोरी कर ली है। हम उसी शाम वापस आये और देखा कि हमारी सारी मूल्यवान चीज़ें चोरी हो गई थीं। हमने पुलिस को ख़बर दी और महाराज जी को पत्र लिखा। लेकिन इससे पहले कि हमारा पत्र उनके पास पहुँचता उनका पत्र हमें मिला जिसमें उन्होंने लिखा कि जो कुछ हुआ है उसका उन्हें पता है।

"कुछ दिन बाद महाराज जी फिर हमारे यहाँ आये और मेरी पत्नी से बोले, 'मैंने आपको सुमिरन करने को कहा था, पर आपने नहीं किया। लेकिन आपका नौकर क्या ले गया है इसे अब भूल जायें और जो बच गया है उसके लिये मालिक का शुक्र करें, वह आपकी ज़रूरतों के लिये काफ़ी है।'

"मैंने कहा, 'महाराज जी, यह तो आपसे हमदर्दी की उम्मीद कर रही थी।'

"महाराज जी ने जवाब दिया, 'मैं इनसे हमदर्दी ही तो कर रहा हूँ कि काफ़ी बच गया है।'

"इस पर सब हँस दिये, और उनकी दया-मेहर से हम पूरी घटना को खुशी से ले सके।"

महाराज जी द्वारा लिखे पत्रों से कुछ अंश

महाराज जी द्वारा अपने मित्रों और रिश्तेदारों को लिखे हुए निजी पत्रों के कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं। ये उनके अपने हाथ से लिखे हुए हैं। इनसे प्रकट होता है कि इतने ऊँचे रूहानी स्तर पर होने के बावजूद महाराज जी अपने मित्रों से पहले जैसा ही सम्बन्ध रखते हैं, और अपने व्यवहार से उनको आभास नहीं होने देते कि कोई फ़र्क पड़ा है। बल्कि वे हमेशा सबसे ज़्यादा प्रेममय और परवाह करने वाले मित्रों में से एक रहे हैं।

अप्रेल १६, १९५३, डेरा

"........यहाँ आने पर मैंने देखा कि एक अमेरिकन दम्पती मेरी राह देख रहा है। कल दिन-भर वे मुझसे सन्तमत पर चर्चा करते रहे। ऐसा लगता है कि अमेरिकावासी अपनी भौतिक उन्नति से घबरा चुके हैं और शान्ति तथा सत्य की खोज कर रहे हैं। मुझे खुशी है कि मैं उन्हें सन्तोष दे सका।

"जितना ज़्यादा मुझे आभास होता है कि मैं इस काम के लायक नहीं हूँ, मालूम होता है कि उतना ही विश्वास उनमें पैदा होता जाता है। उनका प्रेम और भरोसा मुझे अपने बारे में शान्तिपूर्ण सोचने का मौका ही नहीं देता है...... ।"

* * *

नवम्बर ६, १९५७

"प्रोग्राम के अनुसार हम देहली से १ नवम्बर को जी. टी. एक्सप्रेस से रवाना होकर अगले दिन दोपहर को तीन बजे जबलपुर पहुँचे।.......स्टेशन पर जो भीड़ थी उसकी तुम कल्पना नहीं कर सकते। .....बड़ी मुश्किल से ही मैं मोटर तक पहुँच सका....... ।

"........सत्संग में करीब दस हज़ार लोग मौजूद थे, और उन्होंने पूर्ण शान्ति और खामोशी के साथ पूरा सत्संग सुना। मेरे कार्यक्रम को देखने से तुम्हें पता चलेगा कि मेरी रातें रेल में गुज़रती हैं और दिन में दो सत्संग करने पड़ते हैं। अगर तुम रेल का नक्शा अपने सामने रखकर देखने की कोशिश करो तो तुम्हें पता चलेगा कि मुझ पर क्या बीत रही है। अब मैं समझ सका हूँ कि कितनी दूर से और कितनी तकलीफ़ें उठाकर लोग ब्यास आते हैं। उनकी आँखें प्रेम और प्यार के आँसुओं से भरी होती हैं। मैं तो यही चाहता

हूँ कि लोग जितना मेरे लिये करते हैं और जो भाव मेरे प्रति रखते हैं, मैं उसके लायक हो सकूँ ।....."

* * *

मई ८, १९६०, ज़िला कांगड़ा

"तुम्हें यह जानकर बहुत सदमा पहुँचेगा कि भाई क्लेअर ने ६ तारीख की सुबह अपने मकान के अहाते में अपने आप पर गोली चलाकर जान दे दी। श्री राड़ेवाला के खिलाफ़ कोई टयूब-वेल सम्बन्धी जाँच-पड़ताल थी, और श्री क्लेअर को उस सम्बन्ध में बेकार तंग किया जा रहा था। जैसा कि तुम जानते हो, वे बहुत ईमानदार और खरे व्यक्ति थे, और वे इस तरह के झूठे दबाव और धमकियों को सहन नहीं कर पाये। यह राजनैतिक नेताओं के मुँह पर एक सख़्त तमाचा है, अगर उसे महसूस करने का हृदय उनके पास हो तो। बेचारी प्रीतम और उसके बच्चे–उनका रोना देखा नहीं जाता। तुम जानते हो कि इस शोकपूर्ण दुर्घटना से मुझ पर क्या बीत रही है। प्रीतम ने उसी समय मेरे पास यहाँ बहोटा में, जो नांगल से ६० मील दूर है, ख़बर भेजी। मैं फ़ौरन अन्तिम संस्कार में शामिल होने के लिये उनके पास पहुँचा, और वापस अपने सत्संग दौरे पर यहाँ आ गया हूँ।.....श्री क्लेअर ने एक वसीयत छोड़ी है जिसके द्वारा वे मुझे उनके बच्चों का कानूनी अभिभावक बना गये हैं। मेरे कमज़ोर कन्धों पर एक और भार ।....."

* * *

दिसम्बर २४, १९६०

"ज़िन्दगी तो बहुत सीधी-सादी है। पर हम लोग खुद समस्याएँ और उलझनें पैदा कर लेते हैं और फिर उन्हें सुलझाने में सारी ज़िन्दगी बिता देते हैं। पता नहीं हम सीधी बातों को सीधी तरह लेना कब सीखेंगे।"

* * *

मई ९, १९६१

"तुम्हें जानकर अफ़सोस होगा कि लुधियाना में मेरे साथ एक बहुत खतरनाक दुर्घटना हुई, लेकिन महाराज जी की दया-मेहर से दामोदर[1] और मैं दोनों ही बच गये।

---

१. उनका ड्राइवर।

"लुधियाना के रेल-क्रासिंग पर हम फाटक के खुलने की राह देख रहे थे। फाटक खुलने पर अचानक एक गाड़ी में भरे हुए छः इंच गोल और ३५ फ़ीट लम्बे लोहे के सरिये हमारे अगले काँच को तोड़कर मोटरकार के अन्दर घुस गये। वे दामोदर के बिलकुल पास से होते हुए पीछे की सीट तक आ गये, जहाँ मैं बैठा हुआ था। जब सरिये मेरे सिर से एक इंच दूर रह गये तब वह गाड़ी रुकी। उस समय वहाँ तीन-चार हज़ार लोग मौजूद थे और सबको बड़ा आश्चर्य हुआ कि हम मौत से कैसे बच गये।

"महाराज जी की दया-मेहर से मैं इतना शान्त और निश्चल रहा कि सबकुछ हो जाने पर मैं खुद भी हँसने लगा। लोहे के सरिये ६ फ़ीट तक मोटर के अन्दर घुस आये थे, और ३ फ़ीट की चौड़ाई तक फैले हुए थे।

"दुर्घटना के समय मैं अपनी आदत के अनुसार सुमिरन कर रहा था। फिर हमें करीब दो घण्टे पुलिस की खानापूरी करने में लग गये।...

"यहाँ घर पर और डेरे में सब लोग मेरी इस आगामी विदेश-यात्रा के बारे में बहुत चिन्तित हैं, खास कर मेहता के बीमार होने की वजह से। महाराज जी हमेशा मेरे साथ हैं और मुझे किसी तरह का कोई डर नहीं है। मुझे उनके रक्षा के हाथ के सिवाय और किसी के सहारे की ज़रूरत नहीं है।"

* * *

मई २८, १९६१, मनीला

"......मेरी आशा के विपरीत यह भी एक सत्संग का दौरा ही बन गया है। जहाँ भी जाता हूँ वहाँ मुझे हर रोज़ सत्संग करना पड़ता है। मेरे पहुँचने से पहले ही लोग मेरा चित्र और सत्संग का कार्यक्रम स्थानीय अखबारों में दे देते हैं, और फिर मैं बँध जाता हूँ।.....लोगों के प्रेम और सहृदयता के बोझ से हम दबे जा रहे हैं।..... यहाँ हर स्थान की अपनी सुन्दरता, अपनी संस्कृति और पोशाक है...। मैं स्थानीय गुरुद्वारे में दो सत्संग कर रहा हूँ। जहाँ भी मैं जाता हूँ सिंधी और पंजाबी भाई मिलते हैं, और वे मेरी बोली अच्छी तरह समझते हैं। वे सत्संग की बहुत प्रशंसा करते हैं और यह देखकर बहुत हैरान होते हैं कि चन्दे के लिये कोई अपील नहीं की जाती है। यह एक बड़ी अच्छी यात्रा रही है और मुझे बहुत से अनुभव हो रहे हैं.....।"

* * *

जून २८, १९६१, जहाज़ पर से

"....मैं बहुत व्यस्त रहा हूँ...। हर जगह सत्संग कर रहा हूँ, कितने ही स्वागत समारोहों में सम्मिलित हो रहा हूँ.....। जहाँ भी मैं जाता हूँ वहाँ महाराज जी की दया-मेहर से हर तरह की सुविधाएँ मिल जाती हैं। हर जगह मैं सत्संगियों से मिलता हूँ, और सत्संग के बाद हर जगह मेरे कई प्रशंसक बन जाते हैं। तरह-तरह के लोगों से मिलने और कई विषयों पर चर्चा करने में बड़ी खुशी होती है। यह यात्रा असल में आरामदेह नहीं है, बल्कि मैं काफ़ी थक गया हूँ।

"मुझे इस जहाज़ पर जगह मिलना एक सुखद संयोग है। यह एक और ऐसा अनुभव है जो मुझे पहले कभी नहीं हुआ। जहाज़ की अपनी ही दुनिया है—बाहर क्या हो रहा है इसकी ओर से यात्री बिलकुल बेफ़िक्र हैं।

"....सैगोन तक मैं बिलकुल अज्ञात रूप से यात्रा कर रहा था, परन्तु वहाँ कोई अखबार ले आया जिसमें मेरी पत्रकारों को दी गई भेंट का चित्र था। अब सब कोई मुझसे धर्म पर चर्चा करना चाहते हैं, और बड़े अचरज की बात है कि लोगों को अपने ही धर्म का कितना कम ज्ञान है। ज़्यादातर इस जहाज़ पर फ्रांसिसी हैं...मेरे ख़याल से जो समय मैं इस जहाज़ पर अभी बिता रहा हूँ वही इस यात्रा में मेरा सबसे अच्छा समय रहा है।"

* * *

मई २४, १९६७

"मैं एक बुरी ख़बर दे रहा हूँ। वह कम्पनी जिसमें मैंने अपने परिवार के अलग-अलग सदस्यों के नाम से पचास हज़ार रुपये लगा रखे थे, डूब गई है।

"...मेरे लिये चिन्ता मत करना। महाराज जी ने मुझे इस सबसे ऊपर उठने के लिये काफ़ी ताकत दी है, और उन्होंने हम सबको इस ज़िन्दगी को बसर करने के लिये भी काफ़ी दिया है। मैं तो सिर्फ़ तुम्हें परिस्थितियों की खबर देने के लिये लिख रहा हूँ।....."

* * *

जुलाई १५, १९६७

"...मैं जानता हूँ कि उसका हृदय अच्छा है पर स्वभाव तेज़ है, और

साथ ही वह बहुत जल्दी बुरा भी मान लेता है। .....उसका दिल अभी भी हिन्दुस्तान में ही है। वह अपने आपसे कड़ा संघर्ष कर रहा है, और उसकी भावुकता रोज़-रोज़ बढ़ती जा रही है...। तुम्हें ही इस लायक बनना पड़ेगा कि उसे शान्ति और धीरज दे सको। जब भी वह तुम्हारी बात सुनने के लिये अच्छे मूड में या अवस्था में हो, उसे प्रेमपूर्वक समझाओ। उसको अकेले ही, अपने माता-पिता की मदद और सहारे के बिना, अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ेगी। इसलिये इस समय जो उसके मन की अवस्था है, वह स्वाभाविक है। अन्दर ही अन्दर उसे मेरी कमी बहुत खटक रही है, खास कर जब मैं उससे उसी के स्तर पर नहीं मिल सकता, क्योंकि भाग्य ने मुझे अजीब भूमिका निभाने को दी है।

"मैं भी उसे लिखूँगा कि वह अपने तेज़ स्वभाव को वश में रखना सीखे। वह खुद इस बात को महसूस करता है, अपनी पूरी कोशिश करता है, पर कुछ कर नहीं पाता। तुम दोनों....को प्यार के साथ रहना चाहिये। मैं भी उसे समय-समय पर समझाने की कोशिश करूँगा।....."

* * *

जून २, १९६८, सिंगापुर

"...मेरी यात्रा बहुत बढ़िया रही है, इसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। लोग बड़े प्रेमी और मेहरबान हैं और हर जगह मेरे निवास को सुखपूर्ण और आरामदायक बनाने की पूरी कोशिश करते हैं। मुझे याद नहीं कि इस ज़िन्दगी में मैंने उनका इतना प्यार पाने के लायक कुछ भी किया हो। वे मुस्कराहटों के साथ मेरा स्वागत और प्रेमपूर्ण अश्रुओं के साथ मुझे बिदा करते हैं। लोग सत्संग के सन्देश को खुले दिल से ग्रहण करने को तैयार हैं। महाराज जी की जो मुझ पर दया-मेहर और बख़्शिश है उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।....."

* * *

जून २६, १९७३, बैंगलोर

"....मैं इस एकान्त और शान्ति में बहुत प्रसन्न हूँ, यहाँ मुलाकात के लिये मुझे कोई घेरने वाले भी नहीं हैं। इन मानवीय दुर्बलताओं से अगर कोई ऊपर उठ सके तो ज़िन्दगी कितनी सरल और सुन्दर हो सकती है। ये सदा

हमें चिन्ता और दुःख के जाल में फँसाए रखती हैं। जो होना है सो तो हो चुका है, हम नश्वर मानव तो केवल उसके असहाय दर्शक हैं। अगर हम इस खुदी या हौमैं को दूर कर सकें तो ज़िन्दगी के इस नाटक का आनन्द ले सकते हैं। मैं कोई उपदेश देने के लिये नहीं लिख रहा हूँ, मैं तो केवल अपनी भावनाओं को प्रकट करने के 'मूड' में हूँ।....."

* * *

जुलाई १९, १९८८

"....मैं तुम्हारे ज़िन्दगी भर के शारीरिक, आर्थिक और भावनात्मक संघर्ष से पूरी तरह वाकिफ़ हूँ। पर जिस तरह तुम इस सबमें से मुस्कराते हुए गुज़री हो, उसकी प्रशंसा और कदर किये बिना नहीं रह सकता। एक सत्संगी होने के नाते तुम जानती हो कि हम सबको अपना प्रारब्ध भुगतना पड़ता है और हमारे जीवन के घटनाक्रम को कोई नहीं बदल सकता। अब यह हमारे सोचने के तरीके पर निर्भर करता है कि हम अपने जीवन के उतार-चढ़ावों या घटनाओं को कैसे लेते हैं, हम अपना सन्तुलन बनाये रखते हैं या अपनी ज़िन्दगी को रो-पीट कर गुज़ारते हैं.... ।

"जब तुमने अपने खान-पान में स्वच्छन्दता करने का साहस शुरू कर दिया और सन्तमत के सिद्धान्तों के पालन में ढील देनी शुरू कर दी तो मुझे बेहद दुःख हुआ, क्योंकि इसके परिणाम मुझे मालूम थे; लेकिन मैंने इस बारे में तुमसे कुछ नहीं कहा क्योंकि मैं तुम्हारे दिल को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता था। मुझे यही खुशी है कि कम से कम तुमने अपने अन्दर प्रेम और विश्वास बनाये रखा और सत्संग में आने का कोई अवसर नहीं छोड़ा। मैं विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इससे तुम्हें बड़ी मदद मिल रही है। मुझे सतगुरु में पूरा विश्वास है कि अन्त में वे तुम्हें अपने पिछले कर्मों के लिये माफ़ कर देंगे और हमेशा के लिये तुम्हें अपनी शरण में ले लेंगे।

"पिछले तीन-चार महीने से तुम ज़िद कर रही थीं कि मैं तुम्हें बताऊँ कि तुम्हें इतनी तकलीफ़ क्यों भुगतनी पड़ रही है, हालाँकि तुम अपने अन्दर ही इसके कारण को पूरी तरह जानती थीं। ..... मुझे खुशी है आखिर तुम खुद ही सबकुछ समझ गई हो और एक मज़बूत कदम उठाकर वापस सन्तमत के सिद्धान्तों पर अमल करने लगी हो। अपने साथ सख़्त रहो; मैं विश्वास दिलाता हूँ, तुम्हें इसके लिये कभी पछताना नहीं पड़ेगा।

"तुम बहुत भाग्यशाली हो कि तुम्हें ऐसा भला, कोमल-हृदय, मददगार व्यक्ति पति के रूप में मिला है। आम तौर पर पुरुष स्वभाव से स्वार्थी होता है। पत्नी या कोई भी स्त्री उसकी प्राथमिकताओं में नहीं आती। उसे उसकी ज़रूरत होती है, लेकिन वह उसके अधीन नहीं होना चाहता। दूसरी ओर, स्त्री के लिये पुरुष ही उसकी ज़िन्दगी है। स्त्री को चाहिये कि वह अपने अन्दर इतनी समझ पैदा कर ले कि वह पुरुष के साथ खुशी से रह सके.....।

"जो कुछ भी हुआ है उसे भूलकर सतगुरु में भरोसा रखो। उसकी दया-मेहर की कोई सीमा नहीं है, उसका सँभाल का हाथ और मेरी शुभकामनाएँ तथा प्रार्थनाएँ हमेशा तुम्हारे साथ हैं।....."

लुईस हिलगर

मिस लुईस हिलगर बड़े महाराज जी की एक प्रमुख और प्रेमी सत्संगी हैं। वे अमेरिका की हैं और कई वर्षों से डेरे में ही रहती हैं। राधास्वामी सत्संग द्वारा प्रकाशित कोई अंग्रेज़ी की पुस्तक ऐसी नहीं है जोकि उनकी पैनी नज़र से न निकली हो। वे डेरे के प्रकाशन-विभाग के लिये बहुत बड़ी देन हैं। महाराज जी की गद्दीनशीनी के कुछ समय बाद १९५२ से ही वे महाराज जी की निजी सेक्रेटरी रही हैं। शुरू के कुछ वर्षों में वे साल में छः महीने डेरे में रहती थीं, और अब कई वर्षों से यहाँ स्थाई रूप से रहने लगी हैं।

महाराज जी अक्सर कहते हैं, "वे डेरे के आफ़िसरों में सबसे वरिष्ठ या सीनियर हैं, मुझसे भी सीनियर हैं, इस दृष्टि से कि वे सरदार बहादुर जी के देहावसान और अन्तिम संस्कार के समय यहीं थीं—एक दर्दनाक बख़्शिश जो मुझे प्राप्त न हो सकी।"

महाराज जी की इजाज़त से मैं लुईस हिलगर के पास रखी महाराज जी के व्यक्तिगत और निजी पत्र-व्यवहार की फ़ाइल में से उनके मित्रों और सम्बन्धियों को लिखे पत्रों के कुछ अंश नीचे दे रही हूँ। ये पत्र उनके विचारों और भावनाओं के बारे में बहुत कुछ बताते हैं और उनमें जीवन की समस्याओं के बारे में बड़े महत्वपूर्ण परामर्श भी हैं।

महाराज जी की निजी फ़ाइल में से कुछ पत्रों के अंश

अगस्त १९, १९६५

"…..भाग्य ने मुझे एक बड़ी असाधारण भूमिका निभाने को दी है। मैं हमेशा उन व्यक्तियों से घिरा रहता हूँ जो मुझसे प्रेम करते हैं, और जिन लोगों के प्रति मुझे आदर और प्रेम है, उनसे मैं बहुत दूर हूँ। अपने अन्दर मुझे चाहे कैसा भी लग रहा हो, मुझे हँसना पड़ता है और कहना पड़ता है कि मैं खुश हूँ। यह सब मेरे पद के साथ ही जुड़ा हुआ है। …. मुझे दूसरों को तसल्ली देनी पड़ती है, उनकी देखभाल करनी पड़ती है। जब मैं खुश होता हूँ तो मुझे उनके साथ रोना पड़ता है; जब उदास होता हूँ तो उनके साथ हँसना पड़ता है ।….."

* * *

सितम्बर १९, १९६५

" …..जो कुछ भी यहाँ सीमा पर हो रहा है, आप बी.बी.सी. रेडियो पर सुन रहे होंगे। महाराज जी की दया-मेहर से अभी तक हम पूरी तरह सुरक्षित हैं। वे ब्यास रेलवे स्टेशन, पुल और डेरे के सामने के शस्त्रागार पर बम डालना चाह रहे हैं। बम दायें और बायें गिर रहे हैं, लेकिन किसी लक्ष्य पर नहीं। लोग ज़रा भी घबराए हुए नहीं हैं। लड़ाई में हिन्दुस्तान का ही पलड़ा अभी तक भारी है। वही हिन्दुस्तान, वही राष्ट्र, अपने आपसे युद्ध कर रहा है, कितनी शर्म की बात है। स्वतन्त्रता के समय देश का विभाजन करना बड़ी भूल थी। किसी दिन इस बात को ये दोनों समझेंगे…. ।

"हमारी फ़िक्र मत करो। हमें डेरे से अच्छा कोई सुरक्षित किला नहीं मिल सकता था। महाराज जी का रक्षा का हाथ हम सब पर है ।….."

* * *

जून १०, १९६८

"…..कभी-कभी मुझे लगता है कि मेरा वह पुराना व्यक्तित्व फिर से मेरे साथ है; पर फिर मुझे अपने पुराने साथियों की कमी महसूस होती है और मैं कभी-कभी काफ़ी दुःखी हो जाता हूँ। हमेशा इतने प्रेम और कृपा के बीच रहते हुए भी यह आश्चर्य है कि मैं फिर भी यहाँ नहीं हूँ ।….."

* * *

अक्तूबर २४, १९७२

".....मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ कि तुम कितना अकेलापन महसूस कर रहे होगे। ...पर अगर तुम दूसरे दृष्टिकोण से देखो तो तुम्हें खुश होना चाहिये कि कम से कम तुम्हें अपने लिये समय तो मिलता है और कुछ समय अपने साथ शान्ति और चैन से तो बिता सकते हो।

"अकेले रहना एक दुर्लभ मौका और सुविधा है, खास कर जबकि हम पारिवारिक जीवन के इतने आदी हो चुके हों। हम सोच सकते हैं, अपने अन्दर झाँक सकते हैं। तब हमें पता चलता है कि हम व्यर्थ ही अपने आसपास के लोगों में कितने आसक्त हैं और कैसे अपने आपको धोखा देने की कोशिश करते हैं कि कोई हमारा है या हम किसी के हैं। यह जान लेना कि हम अकेले हैं और इस दुनिया में हमारा कुछ भी नहीं है, परमपिता की देन है, उसकी दया-मेहर है। फिर हम स्वाभाविक ही इस अकेलेपन को दूर करने के लिये उससे मार्ग-दर्शन और सहायता माँगते हैं और आखिर यही हमारा लक्ष्य भी है।

"....फिर भी मैं इतना भाग्यशाली नहीं कि मैं अकेला हो सकूँ, क्योंकि या तो सत्संग के कार्य मुझे घेरे रहते हैं या मित्र और परिवारजन। फिर भी मुझे परिस्थिति के अनुसार निभाना और अपने आपमें खुश रहना पड़ता है। ...मैंने अपने आपको पूरी तरह उस कर्तव्य और ध्येय के प्रति अर्पित कर दिया है, जोकि मेरे कंधों पर डाला गया है और अपनी तुच्छ कोशिशों से उन्हें अच्छी से अच्छी तरह पूर्ण करने में जुटा हुआ हूँ। मैं अपने सतगुरु का बहुत कृतज्ञ हूँ कि उसने मुझे इतनी ताकत बख़्शी है कि इस रोज़ की दिनचर्या का पालन कर सकूँ और व्यवस्था की परेशानियों का सामना कर सकूँ।

"मैं अभी देहली के दौरे पर गया था। पिछले छः महीनों में पहली बार मैं डेरे से बाहर निकला था। हालाँकि इन दिनों में मुझे ज़्यादा समय बिस्तर पर ही बिताना पड़ा है, लेकिन स्वस्थ रहते हुए भी मैंने इससे पहले कभी डेरे के दैनिक कार्यों में इतनी रुचि नहीं ली और न ही यहाँ की व्यवस्था के लिये कभी इतनी कड़ी मेहनत की है।

"आय-कर के कानून हर साल बदलते जा रहे हैं। सोसाइटी और ट्रस्ट बना देने के बाद तो हमें बराबर सावधान रहना पड़ता है कि हम कभी कोई

भूल न कर बैठें। सतगुरु की दया-मेहर से, लोगों की डेरे के प्रति बहुत सहानुभूति है और वे हमेशा सहायता करने के लिये तैयार रहते हैं। मैं बहुत भाग्यशाली हूँ कि मेरे पास वफ़ादार और अर्पित अधिकारियों का दल है जो व्यवस्था करने और यहाँ के दैनिक कार्यों में मेरी बहुत मदद करता है।

"बेशक कभी-कभी एक पति और पिता होने की ज़िम्मेदारी मुझे अपनी पत्नी और पुत्रों का ध्यान दिलाती है, लेकिन मैं जानता हूँ कि मैं अपने आप कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि सबकुछ महाराज जी के हाथ में है। तुम्हें मालूम है कि ज़मीन की उच्चतम सीमा निश्चित करने का कानून भी हाल ही में लागू हुआ है। इसका मतलब है कि हमारी ज़मीनों का बड़ा हिस्सा चला जायेगा। पर, जैसा कि तुम जानते हो, ज़मीन हमें आमदनी या अपनी ज़िन्दगी गुज़ारने का साधन नहीं दे रही है। यह तो सिर्फ़ महाराज जी की दया-मेहर है जिसने हमें सबकुछ दिया है, और इस दया-मेहर की वजह से ही हम आराम और सुविधाओं के साथ एक अच्छे स्तर पर गुज़ारा कर रहे हैं। सो जो कुछ हो रहा है, उसकी मुझे कोई खास चिन्ता नहीं है।....."

* * *

नवम्बर ४, १९७७

"....हमारा गेस्ट हाऊस (अतिथि-गृह) करीब-करीब सभी राष्ट्रों से आये विदेशियों से भरा हुआ है, और वे मुझे अपनी व्यक्तिगत समस्याओं, मुलाकातों और शाम की मीटिंगों की वजह से काफ़ी व्यस्त रखते हैं। मेरा कार्यक्रम बहुत सुबह ३.३० या ४.०० बजे से शुरू होता है और रात को १०.०० बजे खत्म होता है। दोपहर के भोजन के बाद एक घण्टे के विश्राम को छोड़कर, मुझे ज़रा भी फुरसत नहीं मिलती; दिन भर इधर-उधर जाने, लोगों से मिलने आदि में व्यस्त रहता हूँ। दुर्भाग्य से मेरे लिये कोई इतवार नहीं आता और छुट्टी के दिनों का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

"तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि आज मैंने इस पद पर २६ वर्ष पूरे कर लिये हैं। मुझे विश्वास नहीं होता कि मैं इस सबको इतने समय तक निभा पाया हूँ। फिर भी मैं यहीं हूँ, और तुम्हारे पत्र का जवाब दे रहा हूँ। कानून में यदि किसी को उम्र-कैद की सज़ा होती है तो उसे बारह या चौदह साल बाद छोड़ दिया जाता है। लेकिन सन्तमत में उम्र-कैद का मतलब है

जब तक मृत्यु हम पर दया न करे तब तक। फिर भी मैं अपने कर्तव्यों को निभा रहा हूँ और मुझे कोई अफ़सोस नहीं है, बल्कि मैं तो अपने सतगुरु की दया-मेहर और मदद का शुक्रगुज़ार हूँ। अपनी उम्र के लिहाज़ से मेरी तबियत ठीक है, पर मैं अक्सर थक जाता हूँ। सम्भव है कि अब यह उम्र का असर हो। .... उसकी दया-मेहर से मुझे कोई पारिवारिक या आर्थिक समस्याएँ नहीं हैं..... ।"

* * *

मार्च ६, १९७८

"...हम सबको राजस्थान के इस पर्यटन में बड़ा आनन्द आया, हालाँकि मैं इन सब स्थानों पर पहले जा चुका था, पर उस समय बहुत से लोग साथ थे। इस बार यात्रा थोड़ी भिन्न थी। इन ऐतिहासिक स्थानों को कितनी ही बार देख लो, इनका अपना ही आकर्षण और सौन्दर्य है।.....

"कई बार यह आश्चर्य होता है कि कैसे इन राजाओं ने ऐसे आलीशान किले बनाये और इतने आराम की ज़िन्दगी बिताई, जबकि गरीब जनता भूखों मर रही थी और उनके पास रहने के लिये झोंपड़ियाँ तक नहीं थीं। साथ ही अब उन (राजाओं) पर दया भी आती है कि ऐसी ठाट-बाट की ज़िन्दगी के बाद अब उन्हें कितनी तकलीफ़ें भुगतनी पड़ रही होंगी। जिन स्थानों में किसी समय मक्खी तक नहीं घुस सकती थी, वहाँ अब लोगों की भीड़ लगी रहती है और वही स्थान आज सार्वजनिक अजायबघर बना दिये गये हैं।

"मुझे सबसे ज़्यादा जैसलमेर पसन्द आया, जहाँ बहुत कम लोग जाते हैं। यह रेगिस्तान के बीच में है, पाकिस्तान की सीमा पर। सारा शहर पीले पत्थरों से बना हुआ है। रेगिस्तान के बीचो-बीच एक छोटे-से शहर का होना बहुत ही अनोखी बात है। सभ्यता ने अभी तक यहाँ धावा नहीं बोला है, यहाँ के लोग अभी भी पुराने सादे तरीके से रह रहे हैं। मैं यहाँ के राजा को व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ। ....मुझे कई बार ताज्जुब होता है कि वे उन दिनों इस शहर तक कैसे पहुँचते होंगे, जब जैसलमेर का रेल या सड़क द्वारा जोधपुर से कोई सम्बन्ध नहीं था, जोकि यहाँ से २५० किलोमीटर दूर है।

".....फिर ४ और ५ तारीख के सत्संगों के लिये जम्मू जाना पड़ा। ५ तारीख की सुबह बहुत ज़ोर की बारिश हुई और सत्संग भी बारिश में ही

हुआ। संगत पचास हज़ार के करीब थी। पर ज़रा सोचो, उनमें से एक भी नहीं हटा और सत्संग बारिश में ही एक घण्टे से अधिक समय तक चलता रहा। लोग बिलकुल भीग गये थे, वे कीचड़ में बैठे थे और ठिठुर रहे थे (क्योंकि काफ़ी ठण्ड हो गई थी), लेकिन उनके चेहरे प्रेम और भक्ति से परिपूर्ण थे। उन्हें बारिश से हुई तकलीफ़ का कोई होश नहीं था।....."

* * *

अप्रेल ५, १९७८

".....जब मैं अपने कर्तव्यों के बारे में सोचता हूँ तो मुझे खुशी होती है कि मैंने इस साल विदेश जाने की योजना नहीं बनाई; पर जब मैं अपने आपकी ओर देखता हूँ, तो बड़ा दुःखी होता हूँ कि मैं अपनी ज़िम्मेदारियों का कैदी हूँ। यहाँ आराम और चैन तो कोई बड़ी मुश्किल से पा सकता है, क्योंकि चाहे डेरा भरा हो या खाली, कोई फ़र्क नहीं पड़ता, मेरा दैनिक कार्यक्रम वही रहता है।....."

* * *

सितम्बर १८, १९७८

".....क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि पूना के सत्संग में करीब तीस हज़ार लोग आये थे। मुझे याद है, जब मैं पहली बार पूना गया था, उस समय सत्संग में केवल बारह व्यक्ति थे। तब मैंने राजा साहिब सांगली के मकान पर कोरेगाँव पार्क में सत्संग किया था। सत्संग में या तो उनके परिवार के सदस्य थे या उनके सेक्रेटरी आदि।

"पिछले तीन सप्ताह से मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं है, सर्दी-ज़ुकाम और खाँसी है, पर अब मुझे 'सल्फ़ा' औषधि दी जा रही है, और उम्मीद है कुछ ही दिनों में ठीक हो जाऊँगा। मेरी समस्या यह है कि मुझे अपने सत्संग का कार्यक्रम बहुत पहले से तय करना पड़ता है और फिर चाहे मेरी तबियत ठीक हो या न हो, मुझे उसे पूरा करना ही पड़ता है, क्योंकि उसे निरस्त या रद्द करने से हज़ारों लोगों को तकलीफ़ होती है।....."

* * *

नवम्बर २, १९७८

".....वह (शोक से) एकदम व्याकुल हो गया है। उसकी पत्नी देहली

गई है और अभी अपने माता-पिता के पास ही है। वह बिलकुल अकेला है, और मैं उसे जितना अपने पास रख सकता हूँ, रख रहा हूँ। यहाँ तक कि उसे अकेले ही अपने साथ दौरे पर ले जाता हूँ। हम सब सोचते हैं कि हमें अपने बच्चों से ज़्यादा मोह नहीं है, पर जब मौका आता है तो हमें पता चलता है कि हमारा उनके प्रति कितना गहरा प्यार या लगाव है।

".....तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि मैं आगरा में पहली बार २४,२५,२६ नवम्बर को सत्संग कर रहा हूँ। मेरे मन में यह बात हमेशा खटकती रही है कि जिस स्रोत से इस रूहानी मार्ग का प्रवाह चला है, वह सूखता जा रहा है। आखिर काफ़ी सोच-विचार के बाद मैंने वहाँ सत्संग करने का फैसला कर लिया।....."

* * *

दिसम्बर १५, १९७८

".....मुझे खुशी है कि वह मेरे साथ आगरा आ सका, चाहे थोड़े समय के लिये ही सही। यह सत्संग का एक ऐतिहासिक दौरा था। मैंने बहुत सोच-विचार के बाद यह प्रोग्राम निश्चित किया, क्योंकि मेरे किसी भी पूर्ववर्ती (सतगुरु) ने वहाँ सत्संग नहीं किया था। पिछले कई वर्षों से मेरे अन्तर में यहाँ सत्संग करने की बड़ी खींच थी; यहीं से स्वामीजी महाराज ने इस रूहानियत का प्रवाह चलाया था।

"मैं कई तरह की बातें और अफ़वाहें सुनता रहा हूँ कि वहाँ की दोनों संस्थाएँ असली उपदेश से दूर होती जा रही हैं और रीति-रिवाजों में लगकर स्वामीजी की शिक्षा के मर्म को भूले जा रही हैं। मैं उस खींच को रोक नहीं पाया, सो मैंने सत्संग का दौरा रख लिया। मुझे खुशी है, सबने मेरे साथ सहयोग किया; सभी इतने नेक और कृपालु थे, सहायक थे।

"इसमें शक नहीं कि वे लोग (आगरा की दोनों संस्थाएँ) भी चिन्तित थे, क्योंकि वे व्यर्थ ही सोच में पड़े हुए थे और समझ रहे थे कि हमारे आगरा आने का कोई ख़ास मतलब है। हमारा तो और कोई मतलब था ही नहीं सिवाय इसके कि हम उस धरती का अभिवादन करें जिसने हमें लगातार बढ़ने ही बढ़ने की प्रेरणा दी और परमपिता परमात्मा की सेवा में रहने का अवसर दिया।....."

* * *

जुलाई २६, १९७९

“.....मुझे सचमुच ही मास्को और लेनिनग्राड की यात्रा में बड़ा आनन्द आया। मेरे मेज़बान, हमारे राजदूत श्री गुजराल, बड़े अच्छे व नेक व्यक्ति हैं। उन्होंने हमारी बड़ी देखभाल की और हमारी यात्रा के सारे प्रबन्ध करवा दिये। मास्को एक खूबसूरत शहर है। सड़कें बहुत चौड़ी, साफ़-सुथरी हैं, और लोग बहुत अनुशासित हैं। मुझे रूस के बारे में कुछ गलत धारणाएँ थीं और अब मेरे विचार काफ़ी बदल गये हैं।

“उनकी ट्यूब-रेलें (ज़मीन के नीचे चलने वाली रेलें) दुनिया में शायद सबसे अच्छी हैं। प्लेटफ़ार्म के फ़र्श बड़े सुन्दर हैं, उन पर बहुत बढ़िया किस्म के संगमरमर लगे हुए हैं तथा चारों ओर बहुत खूबसूरत झाड़-फ़ानूस लटक रहे हैं; सफ़ाई इतनी है कि कहीं कचरे का तिनका भी नज़र नहीं आता। हज़ारों लोगों के आवागमन के बावजूद भी चारों ओर शान्ति थी। लगता है कि उन्होंने जन-साधारण की कई समस्याएँ सुलझा ली हैं।

“गिरजा के प्रमुखों ने मुझे अपने गिरजा-घर देखने के लिये खास तौर से न्यौता दिया। मास्को से तीस या चालीस किलोमीटर की दूरी पर एक बड़ी सुन्दर मोनेस्ट्री या मठ है, और पादरियों का एक धार्मिक विद्यालय है। सौभाग्य से उस दिन सेण्ट पीटर की ‘मास’ (पूजा समारोह) भी थी, इसलिये मैं गिरजों को अनुयाइयों से भरा देख सका; वे ‘मास’ में बड़ी शालीनता और भक्ति के साथ शामिल हो रहे थे। उन्होंने मुझे सभी स्थान दिखाये; किसी तरह उन्हें पता लग गया कि मेरा धार्मिक बातों से सम्बन्ध है। हमने बाइबिल पर अपने विचारों का आपस में खुलकर आदान-प्रदान किया। अगले दिन मैं ‘रशियन आर्थोडाक्स चर्च’ के प्रमुख से भी मिला। उन्होंने बड़ी सौजन्यता से मुझे उनकी चर्च संगीत की देर तक बजनेवाली कुछ रेकार्ड और कई पुस्तकें भेंट कीं।

“मुझे मास्को से लेनिनग्राड ज़्यादा पसन्द आया, खास कर हर्मिटेज संग्रहालय, जहाँ पीटर महान के समय से अब तक की मूर्ति-कला और चित्र-कला का बहुत बड़ा संग्रह है। भोजन की कहीं भी कोई समस्या नहीं थी, क्योंकि सब्ज़ियों की प्लेट तो हमेशा होटल में मिल ही जाती थी।.....”

* * *

मई २१, १९८०

"...मैं अप्रेल भण्डारे से ही बहुत व्यस्त रहा हूँ। पहले तो देहली में नामदान था .... फिर उज्जैन में लग रहे कुँभ मेले को देखने के लिये मेरी यात्रा और वहाँ फ़ोटोग्राफ़ी। देखने पर ही विश्वास हो सकता है कि धर्म के नाम पर किस तरह लोगों का शोषण हो रहा है। बीसवीं सदी में भी लोग इतने अन्ध-विश्वासों और अज्ञानता में रह रहे हैं, और उनके लिये ईश्वर-प्राप्ति के सबसे ज़रूरी और अन्तिम साधन रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड आदि ही हैं। लेकिन फ़ोटोग्राफ़ी की दृष्टि से तो वह मानों स्वर्ग ही था—हज़ारों आदमी और औरतों का गन्दे पानी में स्नान करना और प्रायः नग्न घूमते फिरना, खास तौर पर आदमियों का अपने शरीर पर राख मलना और जनता का उन्हें आदरपूर्वक नमन करना।....."

* * *

मार्च २२, १९८४

".....पंजाब में चारों ओर फैले तनाव का कोई अन्त दिखाई नहीं दे रहा है। मालिक की दया-मेहर से हम यहाँ कालोनी में बिलकुल शान्ति से हैं, हालाँकि सबने समझ लिया है कि हम ज्वालामुखी पर बैठे हैं.....।

"यह बड़े शर्म की बात है कि लोग धर्म के नाम पर एक-दूसरे से घृणा करते हैं, एक-दूसरे के गले काटते हैं, जबकि धर्म के द्वारा तो उनमें परमात्मा के लिये प्रेम और भक्ति जाग्रत होनी चाहिये, उन्हें प्रेमपूर्ण और दयावान बनना चाहिये। जब हम सन्तों के असली उपदेश को भूल जाते हैं और उन्हें व्यर्थ के कठोर संगठनों में जकड़ कर धर्म या सम्प्रदाय का रूप दे देते हैं तो ऐसा ही होता है। धर्म यदि हमें देवता नहीं, तो कम से कम इंसान तो बनाये।

"आप जानते हैं कि ये लोग हमें किस दिशा में ले जा रहे हैं। जब कोई रुपये-पैसे लेने वाला पुरोहित या पुजारी किसी सन्त की शिक्षा का प्रचार करने लगता है, तो उस शिक्षा का रूप तो बदलेगा ही। लोगों का धर्म के नाम पर शोषण होता है, उन पर अत्याचार होते हैं। पुरोहित और राजनैतिक नेता अपने अहं-भाव को पूरा करने और अपनी जेबें भरने में दिलचस्पी रखते हैं, न कि सन्तों-महात्माओं के उपदेशों को जानने, समझने और उन पर अमल करने में।.... खैर, हम सब यहाँ बिलकुल सुरक्षित हैं।

"हरियाणा में जो भी हुआ वह बहुत शर्मनाक है, पर यह तो कई दिनों से उबल रहा था, और आप अच्छी तरह जानते हैं कि वहाँ उस तनाव और वातावरण के लिये कौन ज़िम्मेदार हैं।....."

* * *

अप्रेल २५, १९८४

"......पंजाब के हालात की वजह से मैं डेरा नहीं छोड़ सकता, एक दिन के लिये सिकन्दरपुर अपने फ़ार्म पर जाने के लिये भी नहीं। ...हम शान्ति-पूर्वक और आराम से ज्वालामुखी पर बैठे हुए हैं।"

* * *

मई १४, १९८४

"....पंजाब की परिस्थिति भयानक है और हर रोज़ बदतर होती जा रही है। चारों ओर गोलियाँ चल रही हैं, पर मालिक की दया-मेहर से डेरे में शान्ति और अमन-चैन है और हम इसे बनाये रखने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। आश्चर्य तो यह है कि इस सबके बावजूद सत्संग में हर रोज़ ज़्यादा लोग आते जा रहे हैं, और अब हमारे सकराँत तथा इतवार के सत्संग छोटे भण्डारे जैसे हो गये हैं।....."

* * *

अगस्त २९, १९८४

"....आसक्ति या कह सकते हैं कि प्रेम ने तुम दोनों को साथ लाकर विवाह के सूत्र में बाँध दिया.....और मालिक ने दया करके तुम्हें दो सुन्दर पुत्र दिये। उतार-चढ़ाव या तूफ़ान शायद कभी-कभी हर विवाहित जीवन में आते ही हैं, क्योंकि स्वाभाविक ही आसक्ति धीरे-धीरे खत्म होने लगती है और हम एक-दूसरे से दूर होने लगते हैं। केवल प्रेम ही वह चीज़ नहीं है जो तुम्हें साथ रख सकती है ; बच्चों को बड़ा करने की ज़िम्मेदारी भी है, जो तुम दोनों ने साथ उठायी है, और मालिक के आगे किया हुआ वादा भी है कि पूरी ज़िन्दगी तुम एक-दूसरे का साथ दोगे। तुम दोनों पढ़े-लिखे और समझदार व्यक्ति हो ; मैं आशा करता हूँ कि तुम इस स्थिति का सामना करोगे और आपसी सहयोग तथा मेलजोल की भावना जाग्रत करोगे।....."

"मुझे नहीं मालूम तुम दोनों में असली मतभेद क्या है ; बुनियादी तौर

पर और अपने-अपने निजी स्वभाव से तुम दोनों ही बड़े मधुर और प्रेमपूर्ण व्यक्ति हो ; तुम दोनों को एक-दूसरे के साथ सुखी रहना मुश्किल नहीं होना चाहिये। सुख एक-दूसरे के साथ मेल या समता रखने और अपने आपको एक-दूसरे को दे देने में है, न कि एक-दूसरे को ठेस पहुँचाने में। तुम्हें अपने मिथ्या अभिमान को छोड़ना और संकोच की भावना से ऊपर उठना होगा, तभी दोनों एक-दूसरे के निकट आ सकोगे, समता और शान्ति के साथ रह सकोगे और तभी बच्चों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी निभा सकोगे। यह तुम पर है कि तुम दोनों एक-दूसरे का विश्वास और प्रेम प्राप्त करो और सुखी घर बनाओ, खासकर जबकि शादी तुम्हारी अपनी ही पसन्द से हुई है।

"मैं नहीं चाहता कि विवाहित जीवन में आने वाली समस्याओं को सुलझाने वाले का पार्ट अदा करूँ, पर स्पष्ट है कि मैं तुम्हारी वैवाहिक शान्ति के लिये चिन्तित हूँ। सवाल सिर्फ़ एक-दूसरे को समझने, पुरानी बातों को भूलने, फिर से नई शुरुआत करके अपने अन्दर प्रेम जाग्रत करने और एक-दूसरे के प्रति विश्वास पैदा करने का है। वैवाहिक जीवन में प्रमुख साथी होने के नाते पति को चाहिये कि घर में सुखी वातावरण बनाये रखने के लिये केवल पहल ही नहीं बल्कि कुछ समझौता या त्याग भी करे।...."

* * *

जुलाई ११, १९८७

".....मैं नहीं जानता इस प्यारे प्रान्त का क्या होने वाला है। यह बड़े शर्म की बात है कि लोग वहीं खून बहा रहे हैं, जहाँ इतने सन्तों और सतगुरुओं ने लोगों को परमात्मा के प्रति प्रेम और भक्ति से भरपूर कर दिया था, इंसान को इंसान के पास ला दिया था। लेकिन महाराज जी की दया-मेहर से यहाँ कालोनी में और ब्यास अस्पताल में सब ठीक है।....."

* * *

सितम्बर १४, १९८९

".....यह एक ऐसी उमर है जब हम पीछे मुड़कर देखते हैं और मालिक की दी हुई दातों को गिनते हैं, तथा औरों को देखकर मालिक का शुक्र करते हैं कि उसने हम पर कितनी दया-मेहर की है। तब हमें ज़िन्दगी से कोई शिकायत नहीं रहती। मुझे खुशी है कि भाग्य उसके हाथ में है, और जैसे वह



महाराज जी मिस लुईस हिलगर के साथ

चाहता है इसे चलाता है। नहीं तो, अगर हम पर छोड़ दिया जाता तो पता नहीं हम अपने जीवन को अस्त-व्यस्त करके क्या का क्या बना लेते।...."

* * *

देहली सत्संग में प्रकट किये गये महाराज जी के कुछ विचार

(२५ नवम्बर, १९८९)

"हमने अपनी आधुनिक सभ्यता में, जीवन के हर क्षेत्र में बड़ी तरक्की की है। खेती-बाड़ी, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, रक्षा-व्यवस्था और विज्ञान, कोई क्षेत्र ऐसा नहीं जहाँ हम बहुत आगे न बढ़ गये हों। पर जब सन्त हमारे लिये अफ़सोस करते हैं और कहते हैं कि दुनिया गलत रास्ते पर चली जा रही है, तो हमें ताज्जुब होता है कि सन्त हमारी आधुनिक सभ्यता की, हमारी प्रगति की और हर दिशा में किये गये विकास की कदर क्यों नहीं करते।

"इसलिये हम एक बार अपने आपको देखें कि क्या हम पहले से सुखी हैं, पहले से अधिक स्वस्थ, सन्तुष्ट और निश्चिन्त हैं, या हम अब और दुःखी हो गये हैं और हमारी इच्छाएँ, तृष्णाएँ तथा कामनाएँ और भी बढ़ गई हैं।

"पहले हमारे पास बहुत कम चीज़ें थीं, लेकिन हमारे अन्दर सन्तोष था। अब हमारे पास बहुत-कुछ है, पर हमें और चाहिये, और अधिक चाहिये। आज बीमारियाँ बढ़ गई हैं, टूटी या बिखरी गृहस्थियाँ बढ़ गई हैं, मानसिक तनाव से पीड़ितों की और आत्महत्या करने वालों की संख्या अधिक हो गई है, अस्पताल केंसर के मरीज़ों से भर गये हैं।

"पहले हम झोंपड़ियों में रहते थे और एक-दो झोंपड़ियों में सारा परिवार आ जाता था। हम हाथों से या बैलों की मदद से खेती करते थे। इसी तरह, अपनी बिरादरी में ही शादियाँ हो जाया करती थीं और हमारी सारी दुनिया पन्द्रह या बीस मील के दायरे में होती थी और इसी में गुज़ारा करके मर जाते थे।

"लेकिन अब ज़िन्दगी के हर पहलू में हमने बड़ी तरक्की की है। कितने अच्छे मकान बना लिये हैं, कितना अनाज पैदा कर रहे हैं, ट्रेक्टर आ गये हैं, रासायनिक पदार्थ आ गये हैं। इसी तरह चिकित्सा में कितनी प्रगति की है,

कितनी नई-नई अच्छी दवाइयाँ और कितने विशेषज्ञ डाक्टर आ गये हैं। कानून की ओर देखें, कितनी कचहरियाँ बन गई हैं, कितने लायक वकील आ गये हैं, और आज हम सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) तक मुकद्दमा ले जा सकते हैं।

"फिर महात्मा हमें दुःखी क्यों कहते हैं? हमें तो ज़िन्दगी में हर चीज़ मिली हुई है; जब हर सुविधा हमारे पास मौजूद है तो हम दुःखी क्यों हैं। या तो हमारे सोचने में कोई दोष है या महात्मा के समझाने में कुछ फ़र्क है।

"जिस समय हम झोंपड़ियों में रहते थे, सारा परिवार एक जगह रहता था। दिन-भर काम करते थे, शाम को इकट्ठे बैठकर खाना खाते थे। एक-दूसरे के प्रति प्रेम होता था, एक साथ नाचते, गाते और ढोलक बजाते थे। फिर रात को बड़े आराम से गहरी नींद सो जाते थे।

"अब हमने बड़ी-बड़ी पक्की कोठियाँ बना ली हैं, कमरों में एअर-कंडीशनर (वातानुकूलक) भी लगा रखे हैं, टी. वी. लगा है, टेलीफ़ोन लगे हैं, पलंगों पर साढ़े नौ-नौ इंच की स्प्रिंग हैं और उन पर छः इंच मोटे गद्दे लगे हैं। लेकिन फिर भी हमें रात को नींद नहीं आती, नींद की गोलियाँ खानी पड़ती हैं, टीका (इन्जेक्शन) लगाना पड़ता है। सुबह उठते हैं तो कहते हैं कि हम थके हुए हैं, हमारे घुटने दुखते हैं।

"पहले माता-पिता की कितनी इज्ज़त थी और माता-पिता का भी बच्चों से कितना प्यार था। अब माता-पिता ही रात को दस-ग्यारह बजे अपनी पार्टियों से वापस आते हैं, और बेचारे बच्चे तो आठ-नौ बजे ही सो जाते हैं। सुबह दस-ग्यारह बजे के पहले कोई सो कर नहीं उठता और बच्चे सुबह सात-आठ बजे ही स्कूल चले जाते हैं। बच्चे भी अपने माँ-बाप की ऐसी ही इज्ज़त करेंगे। वे अपने माँ-बाप के सहारे कैसे बनेंगे; उनका किस तरह अपने माँ-बाप से इतना प्यार हो सकता है?

"पुराने ज़माने में गाँवों में मामूली हकीम या जर्राह वगैरह होते थे, लेकिन हरएक को दवा मिल जाती थी, हरएक का इलाज भी हो जाता था।

"अब ज़रूर विज्ञान ने तरक्की की है, चिकित्सा ने तरक्की की है। लेकिन ज़रा देखें, आज कितनी नई-नई तरह की बीमारियाँ होने लगी हैं, क्योंकि अनाज आदि की पैदावार के लिये कितने केमिकल्स (रासायनिक पदार्थ) काम

में लेने पड़ते हैं, जिनका हमारे शरीर पर ज़रूर असर पड़ता है। और डाक्टर मिलते किसे हैं? अस्पतालों में पलंग किसे मिलते हैं? अगर मिल भी जायें तो अस्पतालों के खर्चे कितने ज़्यादा हैं! बीमार तो बेचारे बरामदों में ही पड़े रहते हैं।

"बेशक हमने बहुत अनाज पैदा कर लिया है। लेकिन कीमतें बहुत बढ़ गई हैं। आप जानते हैं बारह-तेरह रुपये (प्रति किलो) में शक्कर खरीद कर कोई कैसे अपने बाल-बच्चों को खिलायेगा। यह नहीं कि दुनिया में अनाज की कोई कमी है, लेकिन हम जिस तरह इस्तेमाल करते हैं, उसमें ज़रूर कोई नुक्स है।

"महात्मा प्यार के साथ समझाते हैं कि आज अमीर खा नहीं सकते क्योंकि उनको हज़्म नहीं होता, और गरीब को ज़्यादा कीमत की वजह से मिलता नहीं। तो इतने अनाज-उत्पादन का फ़ायदा किसी को क्या हुआ?

"उस ज़माने में गाँव में अगर कोई झगड़ा हो जाता था तो गाँव के दो-चार भले लोग इकट्ठे होकर शाम तक उसका फ़ैसला कर देते थे। अब आप कोई मुकद्दमा करके देख लें, बीस-पच्चीस साल से पहले फ़ैसला नहीं होता। जज कितने भी योग्य क्यों न हों, वकील कितने भी लायक क्यों न हों, फ़ैसला तो किसी को भी जल्दी नहीं मिलता।

"इसी प्रकार तरह-तरह की दवाइयाँ आ गई हैं, बड़े कुशल डाक्टर आ गये हैं, लेकिन इलाज कितने लोगों का होता है? बड़े-बड़े मकान बन गये हैं, लेकिन फिर भी रात को कितने लोग सड़कों पर सोते हैं?

"सो, या तो हमारी तरक्की में, हमारे विकास में कोई नुक्स है, या हमें इसका उपयोग करना नहीं आता।

"आज लोग शादियाँ अपनी मर्ज़ी से करते हैं। फिर भी तीसरे-चौथे साल तलाक के लिये कचहरी में जा पहुँचते हैं। पहले माँ-बाप शादी कर देते थे। हर विवाहित जीवन में एक-दो आँधियाँ ज़रूर आती हैं। लेकिन उन दिनों दोनों घरों के माता-पिता इकट्ठे होकर फैसला करा देते थे और झगड़ा खत्म हो जाता था। अब तो माता-पिता को पता ही नहीं लगता कि बच्चे तलाक कब ले लेते हैं और दूसरी शादी कब कर लेते हैं। सो इस सब विकास का फ़ायदा किसने उठाया?

"किसी से पूछकर देख लें, किसी को फ़ुरसत नहीं है; मज़दूर को

फ़ुरसत नहीं है, इंजीनियर को फ़ुरसत नहीं है, डाक्टर को फ़ुरसत नहीं है, उद्योगपति को फ़ुरसत नहीं है। किसे फ़ुरसत है ? किसी को भी नहीं। तो इस विकास का फ़ायदा क्या हुआ ? हमें अपने लिये एक घण्टा नहीं मिलता। सबके मन में, सबके मुँह पर तनाव दिखाई देता है, किसी को चैन नहीं है। चार लोग बैठकर हँस-खेल नहीं सकते; ऐसी तरक्की का हम कौन-सा फ़ायदा उठा रहे हैं ?

"इस सबका नतीजा है बढ़ते हुए हृदय रोग, डाइबिटीज़, बढ़ा हुआ रक्त-चाप। हमारी पूरी ज़िन्दगी बनावटी हो गई है। हम हँसना भूल गये हैं, आँसू बहाना भूल गये हैं। हमारी मुस्कराहटें नकली बन गई हैं, हमारे आँसू नकली बन गये हैं।

"यह विकास का कसूर नहीं है। हम इन चीज़ों के कैदी बन गये हैं। ये चीज़ें हमारे फ़ायदे के लिये बनी हैं, न कि हम इनके लिये बने हैं। हम इन मशीनों के पुर्ज़े बन गये हैं; मशीनों के मालिक नहीं बन सके, गुलाम बन गये हैं। हमें इस तरक्की का मालिक बनना चाहिये। हरएक को खाना मिलना चाहिये, हरएक को कपड़ा मिलना चाहिये, रहने को जगह मिलनी चाहिये; मन में चैन होना चाहिये, किसी के मन में तनाव नहीं होना चाहिये। माता-पिता के लिये इज्ज़त होनी चाहिये, बच्चों से प्यार होना चाहिये। यही तो ज़िन्दगी में हर इंसान माँगता है। अगर जीवन के मूल्य ही नहीं रहे, तो इस विकास का हमें क्या फ़ायदा हो सकेगा ?

"जो महात्माओं ने कहा है वह पहले भी ठीक था और आज भी ठीक है। इन चीज़ों में न कभी पहले किसी को सुख मिला है और न ही आज किसी को सुख मिल सकता है, क्योंकि मालिक ने यह दुनिया ही दुःख और सुख की बनाई है। स्वामीजी ने इसीलिये कहा है, 'तजो मन यह दुःख सुख का धाम'। कि भाई, यह दुनिया दुःखों और सुखों की बनी हुई है। तुझे कभी इस दुनिया में सुख नहीं मिल सकता, क्योंकि यह पुण्य और पाप की नगरी है। यहाँ पुण्य का हिसाब देने भी आना पड़ेगा, और पाप का हिसाब देने भी आना पड़ेगा। पुण्य के कारण तू सुखी होगा, तो पाप के कारण दुःखी। सो अगर सुख है तो मालिक की भक्ति में है, मालिक के प्यार में है। इसलिए कहते हैं, 'लगो तुम चढ़ कर अब सतनाम'।"

खण्ड २

बड़े महाराज जी का जन्म-दिन

१९ जुलाई, १९५२ को महाराज जी ने सत्संग में कहा :

"यह तो आपको मालूम है कि आज हुज़ूर महाराज जी का जन्म-दिन है। ऐसे दिन, जब महात्मा इस दुनिया में आते हैं, बड़े कल्याणकारी होते हैं, बड़ी खुशी के मौके होते हैं, क्योंकि उनके आने से हज़ारों लाखों जीवों का उद्धार होता है। वे हमसे मालिक की भक्ति करवा कर, हमें ले जाकर परमात्मा की गोद में समा देते हैं और हमारा जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा हो जाता है।

"महात्मा के जन्म-दिन की खुशी केवल हलवा-पूरी खाने में ही नहीं है, बल्कि अपने अन्दर विचार करना है कि जिस रास्ते पर उन्होंने हमें चलाया है, क्या उस पर हम सच्चे दिल से चल रहे हैं, जिन उसूलों पर खड़ा किया है, क्या उन पर हम कायम हैं। अगर नहीं, तो हमें चाहिये कि उन त्रुटियों और कमज़ोरियों को दूर करें।

"सन्त-महात्मा दुनिया में कोई कौम या मज़हब बनाने के लिये नहीं आते, बल्कि हमें इन भ्रमों और बन्धनों से छुड़ाकर, हमसे नाम की कमाई करवा कर, मालिक से मिलाने के लिये आते हैं। हम बेशक उनके उपदेशों को कौम और धर्म की शक्ल दे देते हैं। महात्मा तो नाम का ही प्रचार करते हैं, और नाम का ही होका देते हैं। आपको पता है कि हुज़ूर ने कितनी मुश्किलें और तकलीफ़ें उठा कर पैंतालीस वर्षों तक सन्तों की शिक्षा का, नाम का प्रचार किया है। उन्होंने कट्टर लोगों के विरोध और आलोचना की कभी परवाह नहीं की, अपना सन्देश देने के लिये वृद्धावस्था में भी दूर-दूर के स्थानों के, गाँव-गाँव के दौरे किये। उनके प्रेमपूर्ण अथक परिश्रम, उनकी गहरी लगन के फलस्वरूप आज उनके सेवक केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं, बल्कि बाहर के देशों में भी उनको याद कर रहे हैं।"

* * *

कालेज के दिन

एक अंग्रेज़ी मीटिंग में किसी ने महाराज जी से पूछा, "क्या आप कालेज के दिनों में भजन किया करते थे ?" महाराज जी ने जवाब दिया, "मैं कभी-कभी ही करता था, सिवाय एक बार ६० दिनों के, जब मैंने नियमित रूप से किया। १९३६ में, जब मैं इन्टरमीजिएट में पढ़ता था, मेरी सगाई हो गई थी ; पर जिस लड़की के साथ सम्बन्ध तय किया गया था मैं उससे शादी नहीं करना चाहता था। मैंने बुआजी (बीबी रली) के ज़रिये बड़े महाराज जी से कहलाया कि मैं यह विवाह नहीं करना चाहता, मेरी सगाई तोड़ दी जाये। जब बुआजी ने बड़े महाराज जी से अर्ज़ किया तो वे हँस दिये और इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। बुआजी ने कई बार बिनती की पर कोई नतीजा नहीं निकला।

"१९४१ में जब मैं लॉ कालेज में था तब बुआजी ने एक बार फिर काफ़ी ज़ोर देकर मेरी ओर से वकालत की। बड़े महाराज जी ने कहा, 'ठीक है, अगर वह साठ दिन तक नियमित रूप से एक घण्टे भजन में बैठे तो मैं सगाई तोड़ दूँगा।' सो मैं नियमित रूप से बैठने लगा। जिस रोज़ साठ दिन पूरे हुए मैंने बुआजी से कहा, 'मैंने पूरी तरह बड़े महाराज जी के हुक्म का पालन किया है, अब उन्हें अपने वादे की याद दिलाइये।' बुआजी मुस्कराते हुए बोलीं, 'वे तो आज से बीस दिन पहले ही सगाई तोड़ चुके हैं।' मैंने बुआजी से झगड़ते हुए कहा, 'आपने यह बात मुझे पहले क्यों नहीं बताई ?' लेकिन वे केवल मुस्करा दीं।"

रक्षा का हाथ

पिछले कुछ वर्षों से, जब से पंजाब में आतंकवाद शुरू हुआ है, हर रोज़ कोई न कोई घटना होती है—कभी किसी गाँव में, कभी किसी शहर में ; कभी रेल की पटरियों को उखाड़ा जाता है तो कभी निर्दोष लोगों की हत्या की जाती है ; बैंकों को बन्दूकों के बल पर लूटा जाता है, अपहरण होते हैं, ज़बरदस्ती रकम वसूल की जाती है, और किसी न किसी प्रकार की हिंसा हर रोज़ हो रही है। लेकिन महाराज जी की रक्षा-पूर्ण छत्रछाया में डेरे में रोज़ का कार्यक्रम नियमित रूप से चलता रहा है।

मासिक सत्संगों पर लाखों लोग इकट्ठे होते हैं। हर इतवार को भी हज़ारों लोग आते-जाते हैं। लगता है कि संगत पंजाब के हालात की ओर से निश्चिन्त है। ऐसा है अपने सतगुरु के प्रति सत्संगियों का प्रेम और विश्वास।

महाराज जी का पहला सत्संग

महाराज जी अक्तूबर १९५१ में डेरे आ गये थे, परन्तु उन्होंने सत्संग करना शुरू नहीं किया। तीन पुराने सत्संगी, बाबू गुलाबसिंह, सरदार गोकुल सिंह और बाबा रामेश्वरदास सत्संग करते थे, और जब महाराज जी डेरे में होते तो मंच पर बैठ कर संगत को दर्शन देते थे।

सत्संग करना कैसे शुरू किया, इस बारे में बताते हुए महाराज जी ने कहा, "एक बार मैं बाहर गया हुआ था, एक दिन बिना खबर दिये मैं डेरे आ गया। जब मैं यहाँ पहुँचा सत्संग शुरू हो गया था। उन दिनों लाइब्रेरी के बाहर के मैदान में सत्संग होता था। मैं जाकर चुपचाप संगत के साथ बैठ गया। एक सेवादार भगतराम शब्द 'दिल का हुजरा साफ़ कर' पर सत्संग कर रहा था। मैंने देखा कि वह न तो शब्द की व्याख्या ही कर रहा था और न ही उसके सत्संग का सन्तमत की शिक्षा से कोई सम्बन्ध था। वह तो केवल बड़े महाराज जी के चमत्कारों की चर्चा कर रहा था। उसका सत्संग मुझे बड़ा अजीब लगा और उसे सुनकर मुझे बड़ा संकोच भी हुआ।

"सत्संग के बाद मैंने प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल से भगतराम के सत्संग के बारे में उनकी राय जानना चाही। प्रोफ़ेसर साहिब ने फ़ौरन जवाब दिया, 'अगर आप सत्संग नहीं करेंगे तो और क्या होगा ?' मैंने प्रोफ़ेसर साहिब को समझाया और दलील दी कि मैं सन्तमत के बारे में कुछ नहीं जानता। मैंने कभी बड़े महाराज जी और सरदार बहादुर जी के सत्संग ध्यान से नहीं सुने, हालाँकि उनमें मुझे आनन्द आता था। मुझे यह भी ध्यान नहीं रहता था कि शब्द कौन-सा लिया गया है। मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि तीन उसूलों पर दृढ़ रहना चाहिये और भजन-सुमिरन बराबर करते रहना चाहिये।

"इस बारे में हमारी काफ़ी बहस हुई। मेरे मन में प्रोफ़ेसर साहिब के लिये बहुत आदर था ; फिर भी वे मेरे मित्र के समान थे, और हमारी उम्र में फ़र्क होते हुए भी मैं उनसे बहस कर लेता था, उन्होंने मुझे काफ़ी छूट दे

रखी थी। अपने कालेज के दिनों में मैं कपूरथला उनके घर एक साल रहा था। फिर रावलपिण्डी के गोर्डन कालेज में जब मैं बी. ए. कर रहा था तो उनके बड़े पुत्र के पास दो साल तक रहा था। प्रोफ़ेसर साहिब ने मुझे ज़ोर देकर समझाया, 'आप कानून में ग्रेजुएट हैं और वकालत में सफल हुए हैं; और फिर इसी वातावरण में आप बच्चे से बड़े हुए हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि आप सत्संग क्यों नहीं कर सकते ?'

"मुझे आश्चर्य हुआ जब शाम को बाबू गुलाबसिंह 'सार बचन' छंद-बंद, और पंजाबी में 'शब्द की महिमा के शब्द' पुस्तकें लेकर आये और मुझे दोनों में से पन्द्रह-पन्द्रह शब्द छाँटकर बताये और कहा कि मैं उनसे इनके बारे में चर्चा करूँ; इससे मुझे सत्संग करने में आसानी होगी। मुझे लगा कि इस सुझाव के पीछे प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल का ही हाथ है। मैं बाबू गुलाब सिंह से कुछ नहीं कह पाया, क्योंकि वे बाबाजी के सत्संगी थे और मैं उनका बहुत आदर करता था। लेकिन जब मैंने उन्हें बताया कि न मैं हिन्दी जानता हूँ और न ही पंजाबी पढ़ सकता हूँ, तो वे हैरान रह गये। वे केवल मेरी ओर देखते रहे और समझ न पाये कि क्या कहें। कुछ देर की खामोशी के बाद मैंने उनसे पूछा कि क्या ये पुस्तकें उर्दू में मिल सकती हैं। उन्होंने पता लगाने का वादा किया, लेकिन निराश-से होकर चले गये।

"तीन दिन बाद वे उर्दू में आदि ग्रन्थ के चारों भाग ले आये, जो अब भी मेरे पास हैं। वे स्वामीजी महाराज के शब्दों की एक छोटी पुस्तक भी लाये जो बख़्शी मलूकचन्द द्वारा उर्दू में छपवाई गई थी। आखिर मैं उनसे सन्तमत की शिक्षा के सभी पहलू समझने लगा। इसी बीच प्रोफ़ेसर जगमोहन लाल ने मुझे 'पाथ आफ़ दि मास्टर्स' पढ़ने के लिये दी, क्योंकि वह फिर से छपने के लिये भेजी जा रही थी और वे धर्मों की कुछ आलोचना उसमें से निकाल देना चाहते थे। उसे पढ़ने से भी मुझे सन्तमत के सिद्धान्त समझ में आने लगे।

"सर्दियों में मैं डेढ़ महीने के लिये सिरसा गया। मुन्शीराम जी ने वहाँ मुझे हिन्दी लिपि सिखाने की कोशिश की, क्योंकि बहुत से सन्तों की वाणी हिन्दी में थी, और इससे मुझे कई सन्तों के उपदेश समझने में मदद मिल सकती थी। पर एक सप्ताह के बाद उन्होंने मुझे पढ़ाना बन्द कर दिया, क्योंकि इतने समय में मैं केवल कुछ ही अक्षर सीख पाया।

"खैर, मैंने अपना पहला सत्संग किया और तुलसी साहिब का शब्द 'दिल का हुजरा साफ़ कर' लिया। फिर धीरे-धीरे मैं स्वामीजी महाराज और आदि ग्रन्थ के शब्दों से भी सत्संग करने लगा।"

इस प्रकार महाराज जी ने दो और ढाई घण्टे लम्बे सत्संग देना शुरू कर दिये और कभी-कभी तो दिन में दो बार भी सत्संग करने लगे। उनकी प्रेरक और मीठी आवाज़ से प्रभावित हो संगत मंत्र-मुग्ध-सी निश्चल बैठी रहती है। उनकी स्पष्ट व्याख्या बड़ी प्रभावशाली और तर्कपूर्ण होती है, जिसे सुनकर सहज ही मन में विश्वास जाग उठता है। कई वर्षों तक महाराज जी सत्संग में दो शब्द लेते थे, एक आदि ग्रन्थ से और दूसरा स्वामीजी महाराज की वाणी से।

महाराज जी के पिता

महाराज जी के पिताजी के बारे में एक बार बेजी हमसे बोलीं कि वे इस बात का बहुत ध्यान रखते थे कि जिस किसी का जो कुछ देना हो वह दे दिया जाये; यहाँ तक कि उन्होंने अपने जीते-जी ही अपनी अर्थी बनाने के रुपये भी चुका दिये थे। हमें इस बारे में और जानने की इच्छा हुई, हमने उनसे कुछ और बताने के लिये आग्रह किया। वे बोलीं कि उनके देहावसान के तीन-चार दिन पहले उन्होंने मुझसे पूछा, "मैंने सबकुछ बच्चों को दे दिया है; अब मेरे पास केवल पन्द्रह रुपये हैं जोकि मेरे अपने हैं। इन दस रुपयों को सेवा में दे देना।" वे कुछ देर चुप रहे, फिर कहने लगे, "ये पाँच रुपये भगतसिंह बढ़ई को दे देना।" बेजी की समझ में नहीं आया कि उन्होंने बढ़ई को रुपये देने के लिये क्यों कहा।

जब वे चोला छोड़ गये तो भगतसिंह बढ़ई को उनकी अर्थी बनाने के लिये बुलाया गया। तब बेजी और अन्य परिवार-जनों की समझ में आया कि वे बढ़ई को उसकी मज़दूरी के रुपये पहले ही दे गये हैं। बेजी बोलीं कि वे एक साधुवृत्ति के व्यक्ति थे और किसी के प्रति आसक्त नहीं थे। उन्होंने अपना अन्तिम भोग भी खुद ही कर दिया जोकि आम तौर पर परिवार के सदस्य मृत्यु के बाद करते हैं।

वे एक सच्चे शिष्य के अपूर्व उदाहरण थे।

नामदान का प्रारम्भ

एक दिन महाराज जी ने अपनी गद्दीनशीनी के दिनों की बात करते हुए कहा, "मैंने कुछ समय के बाद सत्संग करना तो शुरू कर दिया था, लेकिन सरदार बहादुर जी, बड़े महाराज जी और बाबाजी की तरह भण्डारों और मासिक सत्संगों के बाद नाम देना शुरू नहीं किया था। डेरे के कई पुराने और बुज़ुर्ग सत्संगी मुझ पर नाम देने के लिये ज़ोर डालते रहे। असल में मैं नामदान को जितने भी दिन हो सके टालना चाहता था। मैंने सोचा था कि जब भी नाम देना शुरू करूँगा, बहुत थोड़े से चुने हुए लोगों को ही दूँगा। मुझे सबसे पहले अप्रेल १९५३ में एक अमेरिकन महिला श्रीमती किंज़िंगर को कुछ बहुत ज़रूरी हालात की वजह से नाम देना पड़ा। उसी साल मैंने जून में श्री खन्ना के परिवार के तीन व्यक्तियों को भी नाम दिया।"

इस बारे में मैंने एक दिलचस्प वृत्तान्त सुना था और मैं चाहती थी कि उसके सही या गलत होने के बारे में महाराज जी से जानकारी प्राप्त कर सकूँ। सो मैंने पूछा, "क्या यह सच है कि श्री खन्ना अपनी माता, पत्नी और पुत्र को सरदार बहादुर जी के पास उनकी बीमारी के दिनों में ले गये थे और उन्हें नाम देने के लिये विनती की थी? सरदार बहादुर जी ने उनसे वादा किया कि जब वे फिर से नामदान शुरू करेंगे तो श्री खन्ना का परिवार नाम पाने वाले लोगों में पहला होगा? परन्तु सरदार बहादुर जी ने चोला छोड़ दिया और आपने उनका वादा पूरा किया।" महाराज जी ने कहा, "हाँ, यह सही है।"

मेरे पति अक्तूबर १९५३ में भण्डारे के समय यहीं थे। उन्होंने बताया कि भण्डारे के सत्संग के बाद बाबाजी महाराज के प्रेमी और आदरणीय सत्संगी बाबू गुलाबसिंह जी ने महाराज जी से अर्ज़ की कि नाम की बख़्शिश शुरू करने की दया करें। उनकी आँखों में आँसू भरे थे। उन्होंने कहा, "संगत नामदान के लिये तरस रही है। मैं नामदान के प्यासे जीवों की ओर से आपसे दीनता के साथ विनती करता हूँ कि अपनी दया-मेहर का ख़ज़ाना खोलें और इन्हें नामदान बख़्श कर इनका जीवन सफल करें।"

संगत में सब लोगों का हृदय इस भाषण से पिघल गया और सबकी आँखों में आँसू भर आये। बाबूजी की इस प्रार्थना का जवाब सुनने के लिये सब लोग बड़े ध्यान से महाराज जी की ओर देखने लगे। महाराज जी ने

कहा, "बाबूजी और कई बुज़ुर्ग सत्संगी मुझ पर नाम देने के लिये ज़ोर डालते रहे हैं। हुज़ूर सरदार बहादुर जी भी यही हुक्म मेरे लिये छोड़ गये हैं। मैं तो अपने सतगुरु और उनकी संगत का दास हूँ.... ।" इतना कहते-कहते उनका गला रुँध गया, कुछ समय की खामोशी के बाद उन्होंने फिर कुछ कहने की कोशिश की, पर कह नहीं पाये, उनकी आँखों से आँसू बहे जा रहे थे, और वे सत्संग से उठकर चले गये।

अगले दिन २६ अक्तूबर, १९५३ को महाराज जी ने नामदान का आरम्भ कर दिया। परन्तु महाराज जी छँटनी करने में बहुत सख़्त थे, क्योंकि उन्होंने ७०० में से करीब ७० स्त्री-पुरुषों को ही नामदान के लिये चुना। मेरे पति उन भाग्यशाली लोगों में से एक थे। उन्होंने बताया कि शाम को प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल जी उनके पास आये और बोले, "मुझे हुक्म मिला है कि आप सबको कल सुबह नामदान के स्थान पर ले चलूँ। सो कृपया ७.३० बजे तैयार रहें।" मेरे पति के साथ इन्दौर के सात और व्यक्ति थे। सभी को नामदान के लिये चुन लिया गया। महाराज जी नाम देते समय दीवार का तनिक-सा सहारा लिये पूरे वक्त खड़े रहे। ऐसा लग रहा था मानों वे अपने प्यारे सतगुरु के दास की भाँति उनका कार्य कर रहे हों। लेकिन उनके मुख-मण्डल और नेत्रों से प्रेम और सामर्थ्य प्रकट हो रहा था। धुन देते समय ही महाराज जी तख़्त पर बिराजे।

फिर कुछ समय तक नामदान के समय छँटनी में सख़्ती का यही सिलसिला चलता रहा। पर जैसे-जैसे महाराज जी के हिन्दुस्तान में सत्संग के दौरे बढ़ते गये, नामदान के याचकों की संख्या भी बढ़ती गई।

महाराज जी ने फ़रमाया, "सिर्फ़ थोड़े-से लोगों को ही नाम देने के इरादे के बावजूद मेरे पास कोई चारा ही नहीं रहा। रूहानियत के भूखे लोग सन्तमत में आने के लिये तरस रहे थे, उनके प्रेम और लग्न को देखकर मेरा हृदय नहीं मान रहा था कि उन्हें मना करूँ।"

सतगुरु तो दया की जीती-जागती मूर्ति होते हैं। उन्होंने अपनी दया-मेहर और बख़्शिश के दरवाज़े खोल दिये । आज सभी मानते हैं कि संगत कितनी बढ़ गई है। अब महाराज जी एक भण्डारे पर २०,००० व्यक्तियों को नाम बख़्शते हैं। सबसे ज़्यादा लोगों को १९८७ में नामदान मिला; उस पूरे साल में संख्या १,१२,११४ तक पहुँच गई। ऐसी है

महाराज जी की अपने सतगुरु के प्रति निःस्वार्थ समर्पण की भावना, जिनकी प्रेमपूर्ण सेवा वे हमेशा करते रहते हैं। इस सेवा में लीन महाराज जी अपने स्वास्थ्य और आराम तक की चिन्ता नहीं करते।

लाला मुन्शीराम जी की महत्वपूर्ण सलाह

अपनी पुरानी बातें याद करते हुए महाराज जी ने एक बार बताया कि वे अपने लिये कभी भी कोई चीज़ डेरे के स्टोर से नहीं खरीदते, हमेशा बाज़ार से मँगवाते हैं। इसका कारण बताते हुए महाराज जी ने कहा कि शुरू-शरू में जब वे डेरे आये ही थे तो उन्हें पगड़ी के लिये एक थान की ज़रूरत पड़ी। एक दिन उन्होंने अपने आफ़िस में स्टोर के अधिकारी ज्ञानी करमसिंह से कहा कि बाज़ार से उनके लिये एक थान मँगवा दें। ज्ञानी जी बोले, "बाज़ार से मँगवाने की क्या ज़रूरत है ? डेरे के स्टोर में कई थान सेवा में आये हुए हैं। बाज़ार में जो भी कीमत हो वह देकर उनमें से एक खरीद लें।" इसके लिये महाराज जी ने अपनी मंज़ूरी दे दी।

लाला मुन्शीराम जी भी वहीं बैठे थे। जब महाराज जी आफ़िस से अपने निवास-स्थान की ओर जाने लगे तो मुन्शीराम जी ने पूछा कि क्या वे भी साथ चल सकते हैं, क्योंकि वे कुछ बात करना चाहते हैं। सो वे भी महाराज जी के साथ आये। उन्होंने कहा, "आप जब कीमत दे ही रहे हैं तो स्टोर से कपड़ा क्यों खरीदना चाहते हैं ? आपको हमेशा बाज़ार से ही लेना चाहिये। कई लोग ज्ञानी जी को स्टोर से कपड़ा यहाँ लाते हुए देखेंगे, पर कोई भी आपको कीमत चुकाते हुए नहीं देखेगा। ये कपड़े के थान सेवा में आये हैं। आपके द्वारा स्टोर से कपड़ा खरीदने से संगत के मन में शंका या गलतफ़हमी पैदा हो सकती है। सो यह तय कर लीजिये कि आप कोई भी चीज़ स्टोर से नहीं खरीदेंगे, हमेशा बाज़ार से ही मँगवायेंगे।" महाराज जी ने कहा, "उस दिन से मुझे जिस चीज़ की भी ज़रूरत हुई हमेशा बाज़ार से खरीदी, डेरे के स्टोर से कुछ नहीं लिया। राय साहिब ने यह बड़ी कीमती सलाह दी और मैं उसकी बड़ी कद्र करता हूँ।"

इसी बारे में महाराज जी ने कहा कि एक बार राजस्थान का एक सत्संगी एक बड़ी खूबसूरत पानी रखने की सुराही लाया, जोकि धातु की बनी

हुई थी और जिस पर ऊनी कपड़ा चढ़ा हुआ था। उसने इसे अपने हाथ से बनाया था और महाराज जी को देते हुए उसने कहा, "गर्मियों में इसमें पानी बहुत ठण्डा रहेगा। यह मैंने ख़ासकर आपके लिये बनाई है, कृपया इसे मंज़ूर करें।" महाराज जी ने बड़ी मिठास से उसे वापस कर दिया और कहा कि उन्हें इसकी ज़रूरत नहीं है। इस पर सत्संगी ने सुराही सेवा में देना चाही और उसका दिल न दुखाने के ख़याल से उसे सेवा में स्वीकार कर लिया गया।

उस समय डेरे के सेक्रेटरी श्री आहलूवालिया आफ़िस में लाला मुन्शीराम के साथ ही बैठे हुए थे। आहलूवालिया साहिब को सुराही बहुत पसन्द आई और वे बोले कि वह डेरे के स्टोर में किसी काम नहीं आयेगी, इसलिये वे उसकी कीमत जमा करवा कर उसे अपने पास रखना चाहते हैं। लाला मुन्शी राम ने उन्हें सुराही लेने से मना किया, फिर भी श्री आहलूवालिया ने सुराही ले ली और उसे आफ़िस के ऊपर के अपने सोने के कमरे की खिड़की की सिल पर रख दिया।

दो या तीन दिन बाद उस सत्संगी ने सुराही वहाँ रखी देखी और महाराज जी से आफ़िस में मिला। उसने महाराज जी से कहा, "मैंने तो सुराही आपके लिये बनाई थी, न कि आहलूवालिया साहिब के लिये। आपने उसे अपने लिये नामंज़ूर किया, पर सेवा में ले लिया, फिर वे उसे क्यों काम में ले रहे हैं ?" श्री आहलूवालिया भी आफ़िस में बैठे थे, यह सुनकर वे बहुत शर्मिन्दा हुए और उन्होंने सुराही वापस डेरे के स्टोर में पहुँचा दी। लाला मुन्शीराम से बोले बिना नहीं रहा गया, उन्होंने कह ही दिया, "मैंने तुमसे कहा था न कि डेरे में सेवा में आई हुई कोई चीज़ काम में नहीं लेनी चाहिये !"

विदेश से सत्संगियों के आने पर बन्दिश का हटना

पंजाब में आतंकवाद के बावजूद मार्च १९८९ में पाँच वर्ष के बाद विदेशियों के आने-जाने के लिये पंजाब को खोल दिया गया। दुनिया के हर कोने से सत्संगी अब डेरे आ सकते हैं। यह महाराज जी की दया-मेहर से ही सम्भव हो सका है। वे लगातार डेरे के अधिकारियों के ज़रिये सरकार को समझाने की कोशिश करते रहे कि विदेशियों को डेरे आने की इजाज़त दी

जानी चाहिये। इस कोशिश में कोई कसर नहीं छोड़ी गई। जब गृहमंत्री, सरदार बूटासिंह, देहली में महाराज जी से सत्संग-घर पर मिलने आये तो महाराज जी ने फिर इस बात को उठाया और उनसे कहा, "मेरे मन पर इस बात का बड़ा बोझ है कि विदेशी सत्संगी इतना खर्च उठाकर यहाँ आते हैं और उन्हें मेरे साथ केवल एक सप्ताह बम्बई और देहली में मिलता है।" फिर महाराज जी उन्हें विदेशी सत्संगियों के पास ले गये, ताकि गृहमंत्री खुद देख सकें कि संसार के अलग-अलग मुल्कों से सत्संगी कितनी बड़ी संख्या में कितने कम दिनों के लिये आये हुए थे।

गृहमंत्री विदेशी संगत का इतना बड़ा समूह देखकर बहुत प्रभावित हुए। उनका परिचय कराते हुए महाराज जी ने कहा कि मंत्रीजी ने वादा किया है कि वे पंजाब को विदेशियों के लिये जल्दी खुलवाने में मदद करेंगे, ताकि विदेश से सत्संगी ड़ेरे आ सकें। फिर महाराज जी ने उनको विदेशी मेहमानों से कुछ शब्द कहने के लिये आमन्त्रित किया। गृहमंत्री ने कहा, "मैं जानता हूँ कि सन्तमत और इसके उपदेशों को केवल हिन्दुस्तान की सरहद तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता, ये उपदेश तो विश्व-व्यापी हैं, और आप लोगों को अपने सतगुरु के पास डेरे जाने की इजाज़त मिलनी चाहिये। मैं अपनी पूरी कोशिश करूँगा कि आप सबके लिये पंजाब खुल जाये।" इतने लोगों को इकट्ठा देखकर उन्होंने आये हुए विदेशी सत्संगियों की संख्या जाननी चाही। जब उन्हें मालूम हुआ कि पच्चीस देशों से ८०० व्यक्ति आये हुए हैं तो वे केवल अत्यन्त विस्मित ही नहीं हुए, बल्कि बहुत प्रभावित भी हुए।

पंजाब के राज्यपाल पर भी दबाव डाला गया कि वे इस बारे में पहल करें। आखिर मार्च १९८९ में रोक उठा ली गई। पाँच साल बाद पहली बार विदेशी सत्संगी पंजाब आ सकते थे। जो भी देहली सत्संग के लिये आये थे, उन्हें महाराज जी ने डेरे आने की इजाज़त दी। वे बड़े ही खुश हुए और जो भी आ सकते थे डेरे आये। कुछ सप्ताह बाद पंजाब के राज्यपाल, श्री एस. एस. रे भी डेरे आये और इतने देशों के इतने बड़े अतिथि समुदाय को देखकर वे भी चकित रह गये। उन्होंने अतिथियों के साथ चाय पी और उनसे मिलकर बहुत खुश हुए।

यद्यपि पंजाब की स्थिति वही थी, फिर भी विदेशी सत्संगी आने में नहीं



महाराज जी अपने पहले सत्संग के समय

झिझके। ऐसा था उनका अपने सतगुरु के प्रति विश्वास और ऐसी थी उनके अन्दर दर्शन की तीव्र लालसा जो उन्हें पंजाब की खतरनाक स्थिति के बावजूद भी यहाँ खींच लाई।

महाराज जी इतने दयालु और कोमल-हृदय हैं और अपने सत्संगियों की भावनाओं का इतना ख़याल रखते हैं कि जिन वर्षों में पंजाब विदेशियों के लिये बन्द था, उनमें आपने विदेशी संगत को देहली और बम्बई के सत्संगों में आने की इजाज़त दे दी। इस प्रकार विदेशी सत्संगियों को वर्ष में तीन बार देहली सत्संगों और एक बार बम्बई सत्संग में आने का अवसर प्राप्त हुआ। महाराज जी ने देहली और बम्बई सत्संग के व्यवस्थापकों को आदेश दिया कि विदेश से आने वाले सत्संगियों को हर तरह की सुविधा दी जाये, उनके हर आराम का ख़याल रखा जाये और उन्हें जिस भी मदद की ज़रूरत हो दी जाये। उन्हें हर रोज़ भोजन, चाय, नाश्ता आदि निःशुल्क देने का भी प्रबन्ध किया गया। देहली सत्संग-घर में जितनी भी ठहरने की जगह है, वह उनको दे दी गई। सेवादारों ने उनकी सेवा बड़े प्रेम और लगन के साथ की। जो लोग भी आये उन्हें ये सेवा बड़ी मर्म-स्पर्श लगी। अपने प्यारे सतगुरु की इतनी प्रेमपूर्ण मेहमानदारी, अपार दया और मेहमानों के आराम के प्रति चिन्ता को देखकर, वापस जाते समय उनके हृदय प्रेम से भरे हुए थे और आँखों में खुशी के आँसू थे। अपने अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद महाराज जी रोज़ अंग्रेज़ी मीटिंग करते, अलग-अलग देशों के सत्संगियों से मिलते और जिन्हें ज़रूरत होती उन्हें व्यक्तिगत मुलाकात भी देते थे। महाराज जी की उन लोगों के प्रति चिन्ता एक प्यारे पिता के समान थी, और उन पर दया अपार थी।

सितम्बर १९८९ में डेरे का गेस्ट हाऊस नियमित रूप से खुल गया। महाराज जी ने हर विदेशी सत्संगी को तीस दिन तक के लिये डेरे आने की इजाज़त दे दी। यह जानकर विदेशी सत्संगियों के हृदय खुशी और कृतज्ञता से भर गये। कुछ ऐसे सत्संगी भी थे जिन्होंने अपने सतगुरु के कभी दर्शन ही नहीं किये थे, और कुछ ने डेरा नहीं देखा था। वे यहाँ आकर रोमांचित हो गये। उनके आने का प्रवाह लगातार चलता रहा। सबसे ज़्यादा संख्या फ़रवरी १९९० में ४४९ पहुँच गई। इस साल में विदेशी मेहमानों की इतनी बड़ी संख्या को देखते हुए महाराज जी ने गेस्ट हाऊस के अहाते में दो और

भवनों का निर्माण शुरू कर दिया है। इनमें से एक पुरुषों और दूसरा स्त्रियों के लिये होगा, तथा इनमें कुल मिलाकर ३०६ और अतिथियों को ठहराने की जगह हो जायेगी। महाराज जी भोजन के कमरे को और चाय, नाश्ते आदि के स्थान को भी बड़ा कर रहे हैं, जिसमें ५०० अतिथि एक वक्त भोजन के लिये बैठ सकेंगे। सितम्बर से अप्रेल तक कुल मिलाकर १८६३ विदेशी अतिथि डेरे में आये।

इस दौरान विश्व के चालीस अलग-अलग देशों से अतिथि आये। इनमें से कुछ डाक्टर और नर्सें भी थीं जिन्होंने महाराज सावनसिंह अस्पताल में सेवा की। कई अतिथियों ने गेस्ट हाऊस में बड़े प्रेम और लगन के साथ सेवा की। गेस्ट हाऊस का पूरा वातावरण एक सुखी बड़े परिवार के समान था।

आज जब संसार आतंक, क्रूरता और अशान्ति से त्रस्त है, डेरा पंजाब के मध्य में शान्ति और आनन्द का एक अनुपम मरूद्यान है, जिसका पोषण एक महान प्रेमपूर्ण हस्ती द्वारा किया जा रहा है--वह हैं हमारे सतगुरु।

राव साहिब

महाराज जी ने राव साहिब के बारे में एक बार बात करते हुए एक घटना सुनाई जिससे उनकी भक्ति और हृदय की सरलता प्रकट होती है। पचास के दशक में एक गर्मी के मौसम की बात है। महाराज जी अभी डलहौज़ी अपनी पत्नी के साथ पहुँचे ही थे। उनके बच्चे वहाँ पढ़ते थे और महाराज जी उनके साथ कुछ दिन बिताने के लिये गये थे। उसी दिन राव साहिब का तार आया कि वे डलहौज़ी पहुँच रहे हैं। महाराज जी और उनकी पत्नी को राव साहिब के एकाएक आने के समाचार से चिन्ता हुई, उन्होंने सोचा कि अवश्य ही कोई ज़रूरी बात होगी जिसकी वजह से राव साहिब को अकस्मात आना पड़ रहा है।

डलहौज़ी पहुँचने पर राव साहिब काफ़ी विचलित और परेशान दिखाई दिये। उन्होंने महाराज जी से उसी समय बात करने की इच्छा ज़ाहिर की। चाय की प्याली के लिये भी मना करते हुए वे बोले, "पहले मुझे आपसे बात करनी है।"

महाराज जी राव साहिब को एक ओर ले गये। राव साहिब की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी, वे कहने लगे, "महाराज जी, मैं आपका ससुर नहीं हूँ। मैं तो केवल आपका एक शिष्य हूँ, आपका दास हूँ।"

महाराज जी ने कहा, "राव साहिब, अपने आपको शान्त करें और बतायें कि हुआ क्या है ?" सिसकते हुए राव साहिब ने कहा, "एक सत्संगी पुरुषोत्तमदास ने देहली सत्संग में एक दोहा पढ़ा जिसका मतलब था कि सन्तों के सभी शिष्यों को मुक्ति मिल जायेगी, लेकिन केवल उनके ससुराल वाले, उनके पैतृक और मातृ-पक्ष के रिश्तेदार और उनके बचपन के दोस्त उनकी दया-मेहर से खाली रहेंगे। यह सुनकर मैं बहुत ही दुःखी और चिन्तित हो गया हूँ। रात-भर सो नहीं सका। जब से आप डेरे में सतगुरु बनाये गये हैं, मैंने आपको हमेशा अपना गुरु ही माना है, कभी दामाद की दृष्टि से नहीं देखा। मैं आपका ससुर नहीं हूँ। मैं तो केवल आपका शिष्य हूँ।"

राव साहिब के भोलेपन और श्रद्धा को देखकर महाराज जी का हृदय भर आया, उन्होंने बड़े प्यार के साथ उत्तर दिया, "राव साहिब, आप तो बड़े महाराज जी के शिष्य हैं, मेरे ससुर होने से आपका बड़े महाराज जी से सम्बन्ध कैसे बदल सकता है ? मैं तो आपका दामाद होकर अपने आपको बड़ा सम्मानित मानता हूँ।"

फिर महाराज जी ने राव साहिब को उस दोहे का असली भाव समझाया। सन्तों के निकट मित्र और सम्बन्धी कई बार उन्हें पुत्र, दामाद, पति, पिता या दोस्त ही मानते हैं और उनकी रूहानी महानता को नहीं समझ पाते। वे उन्हें साधारण मनुष्य ही मानने लगते हैं। इस वृत्ति के कारण वे सन्तों के करीब होते हुए भी उनसे लाभ नहीं उठा पाते। राव साहिब को यह समझाते हुए महाराज जी ने कहा, "आप तो बड़े महाराज जी के प्रेमी सत्संगी हैं। आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये।"

महाराज जी के ये वचन सुनकर राव साहिब को बड़ा सन्तोष हुआ, और वे बहुत प्रसन्न हुए।

रुपये मैं बाद में ले लूँगा।' महाराज जी की दया से पूरा गेस्ट हाऊस तैयार हो गया और वह व्यापारी एक महीने बाद रुपये भी ले गया।''

* * *

''लड़ाई के दौरान पूरे समय मैं यहीं था। एक रात, करीब दस बजे हमारे सेक्रेटरी खन्ना साहिब एक फ़ौजी अफ़सर को मेरे पास लाये। वह मुझसे बोला कि उनको खबर मिली है कि डेरे के पास फ़ौज के गोला-बारूद के डिपो पर रात को बमबारी होने वाली है। इससे डेरे को भी ख़तरा है। अफ़सर ने सुझाव दिया, 'आप खाइयाँ खोद लीजिए, हम लोग ज़रूरत के समय साइरन बजायेंगे, उस समय यहाँ के निवासी उन खाइयों में चले जायें।' मैंने कहा कि हमारे यहाँ के ज़्यादातर लोगों की उम्र साठ साल से अधिक है। खाइयों में जाते समय उनमें से आधे तो पैर तोड़ लेंगे। और कुछ तो यह ख़बर सुनते ही बेहोश हो जायेंगे। इसलिये यही ठीक होगा कि हम कुछ न करें। जो होगा देखा जायेगा। मैंने अफ़सर से पूछा कि डेरे के आसपास कितनी एण्टी-एयरक्राफ़्ट गन लगी हुई हैं। पहले तो वह जवाब देने में झिझका, लेकिन फिर बोला, 'केवल आप ही हमारी एन्टी-ऐयरक्राफ़्ट गन हैं।' महाराज जी की दया-मेहर से डेरे में या नज़दीक में, कहीं भी कोई दुर्घटना नहीं हुई, सारा समय शान्ति से निकल गया। हाँ, दो-एक दिन बाद सेना के गोला-बारूद के डिपो के आसपास कई एन्टी-एयरक्राफ़्ट गन ज़रूर लग गईं।

''लुईस हिलगर, जो उस समय वहाँ मौजूद थीं, बोलीं कि युद्ध की वजह से लोगों को फ़िज़ूल ही कितना कष्ट और दुःख उठाना पड़ता है! मैंने जवाब दिया कि अगर राजनीतिज्ञों को लड़ने भेजा जाता तो उन्हें पता चलता कि सैनिकों पर क्या बीतती है। लेकिन वे तो एयर-कंडीशण्ड (वातानुकूलित) कमरों में बैठे रहते हैं और सैनिकों को युद्ध करने का हुक्म देते हैं। अगर उन्हें मोर्चे पर भेजा जाये तो उन्हें पता चले कि युद्ध होता क्या है। ये आज के युद्ध तो पिछली सभी लड़ाइयों से कहीं बदतर हैं,

बुरे हैं। आज तो नागरिकों को भी उतना ही खतरा होता है जितना जवानों को। शायद कुछ ज़्यादा ही, क्योंकि बेचारे नागरिकों के पास तो बचाव और सुरक्षा का कोई साधन तक नहीं होता। अगर रात के बारह बजे बम गिरता है तो सैंकड़ों के प्राण व्यर्थ ही चले जाते हैं।"

महाराज जी द्वारा सुनाई गई कुछ यादें

"बेजी (मेरी माता) की उमर इस समय करीब ९२ वर्ष है, लेकिन उनकी याददाश्त असाधारण है। वे कई बार बड़े महाराज जी की और डेरे के शुरू के दिनों की बातें सुनाती हैं।

"जब बेजी पहली बार डेरे में अपनी शादी के कुछ ही दिनों बाद आईं, उस समय यहाँ बहुत थोड़े मकान थे और आसपास वीरान जंगल था। बड़े महाराज जी अपनी कोठी के पूर्व में स्थित मकान * की दूसरी मंज़िल के पाँच कमरों में से एक में रहते थे। बाबाजी का कमरा उस समय तक एक छोटी-सी कुटिया जैसा था, जिसके बाहर घास-फूस का एक छज्जा था। बीबी रली जिन दो कमरों में बाद में रहती थीं, वे लंगर का ही हिस्सा थे और उस समय तक लंगर के अन्दर का भाग ही बना था। लंगर में भोजन करने वाले लोगों में सबसे ज़्यादा इतवार को आते थे, जिनकी संख्या करीब १५० होती थी।

"जब भी बेजी और परिवार के दूसरे सदस्य डेरे आते थे तो नीचे की मंज़िल के कमरों में ठहरा करते थे।

"कुएँ से पानी का पहला घड़ा बड़े महाराज जी बड़ी नम्रतापूर्वक खुद खींचकर लंगर में ले जाते थे। वे स्वयं पहली रोटी को तवे पर सेकते थे, जिसे बीबी रुक्को बेलती थी। इसके बाद ही संगत कुएँ से पानी खींचती थी और अंन्य महिलाएँ रोटियाँ बनाती थीं। इससे पता चलता है कि पूर्ण गुरु अपनी

---

* यह मकान बाबाजी के समय में १९०२ में बना था। इसमें चार कमरे पहली मंज़िल में, और पाँच दूसरी में हैं। बाबाजी दूसरी मंज़िल के पूर्व की ओर बने कमरे में रहते थे।

संगत की किस नम्रता के साथ सेवा करते हैं और हमारे लिये एक जीवित उदाहरण बनते हैं।

"बड़े महाराज जी की अपनी अलग रसोई थी। उन्होंने कभी लंगर में खाना नहीं खाया। उन दिनों यहाँ कोई बाथरूम नहीं था, इसलिये बड़े महाराज जी कुएँ पर ही नहाते थे। बाद में आपने अपने लिये एक बाथरूम बनवाया। शुरू-शुरू में आप ज़मीन पर ही सोते थे। लेकिन कुछ समय बाद, सत्संगियों के ज़ोर देने पर वे चारपाई पर सोने लगे।"

* * *

"बाबाजी के धुरधाम जाने के बाद सात-आठ साल तक बड़े महाराज जी सरकारी नौकरी में ही थे और छुट्टियों में सत्संग करने डेरे आते थे।

"बीबी रुक्को का स्वभाव काफ़ी तेज़ था। वे डेरे का इन्तिज़ाम देखती थीं, और सत्संगियों के साथ काफ़ी सख़्ती के साथ पेश आती थीं। वे चाहती थीं कि लोग, और खास तौर पर स्त्रियाँ, सत्संग में सादे लिबास में आयें। गुस्से में छड़ी का उपयोग भी कर लेती थीं।

"अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में बीबी रुक्को अमृतसर के निकट एक गाँव में कुछ प्रेमी सत्संगियों के पास रहने चली गईं। कुछ समय बाद बड़े महाराज जी उन्हें वापस डेरे ले आये, परन्तु एक वर्ष बाद वे फिर उसी गाँव में चली गईं।

"अपने अन्तिम समय में बीबी रुक्को ने उन सत्संगियों को बताया कि बड़े महाराज जी अन्दर प्रकट हुए हैं और उन्होंने कहा है कि वे बीबी रुक्को को लेने आये हैं और उनसे अपने साथ चलने के लिये कह रहे हैं। पर बीबी रुक्को ने बड़े महाराज जी के साथ जाने से इंकार कर दिया। उन्होंने कहा, 'मैं आपके साथ नहीं जाऊँगी। मुझे ले चलने के लिये बाबाजी को ही आना होगा।' दूसरे दिन बीबी रुक्को ने बताया कि बाबाजी महाराज ने अन्दर प्रकट होकर फ़रमाया है, 'मैंने बाबू सावनसिंह को तुम्हें

ले चलने का हुक्म दिया है।' बीबी रुक्को ने खुशी के साथ जवाब दिया, 'मैं उनके साथ जाने के लिये तैयार हूँ।' कुछ ही समय बाद उन्होंने नश्वर शरीर त्याग दिया।''

सेवा का मूल्य

एक सत्संगी महिला ने महाराज जी से एक बार पूछा कि उसकी अपनी कोई आमदनी नहीं है और उसे सेवा देने के लिये हमेशा अपने पति से रुपया माँगना पड़ता है; क्या ऐसी सेवा का उसको लाभ मिलेगा? क्या ऐसी सेवा का कोई मूल्य है?

महाराज जी ने उत्तर दिया, ''हाँ, अगर आप दोनों सेवा देने में खुश हैं।'' महाराज जी ने एक लंगड़े सत्संगी का उदाहरण देकर इस बात को समझाया, ''वह लंगड़ा सत्संगी भण्डारों पर हिमाचल प्रदेश के पहाड़ों से आता था और बहुत गरीब था। वह ७५ मील बैसाखी के सहारे पैदल चलकर आता था, ताकि सेवा में देने के लिये रुपया बचा सके। उसे श्री बुलाकानी एक दिन धन की सेवा के समय मेरे पास लाये। उसने एक रुपया सेवा में दिया। उसकी गरीबी देखते हुए मैंने सेवादारों से उसकी सेवा लेने को मना किया, इस पर वह रोने लगा, और मुझे उसकी सेवा मंज़ूर करनी पड़ी।''

महाराज जी ने पूछा, ''क्या इस सेवा की कीमत आँकी जा सकती है? क्या यह धनवानों के दिये हुए हज़ारों-लाखों रुपये से ज़्यादा कीमती नहीं है? सेवा का मूल्य इससे नहीं आँका जा सकता कि आपने क्या दिया है; उसकी कीमत तो उस प्रेम की भावना में है जिसके साथ वह सेवा दी गई है।''

* * *

इसी सिलसिले में मुझे एक और बात याद आई जोकि महाराज जी ने एक बार बताई थी।

संगत उस समय गहरे खड्डों में मिट्टी भरने की सेवा कर रही थी। दक्षिण अफ्रीका के एक पुराने सत्संगी महाराज जी के पास बैठे थे। कुछ महिलाओं को अपनी टोकरी में बहुत थोड़ी मिट्टी ले जाते हुए देखकर उस सत्संगी ने कहा, ''इनकी सेवा का क्या फ़ायदा है? ये तो ज़रा-सी मिट्टी ले जा रही हैं।''

महाराज जी ने जवाब दिया, "कोई कितनी मिट्टी ले जाता है इसका महत्व नहीं है। महत्व तो इसका है कि वह कितने प्रेम के साथ मिट्टी ले जा रहा है। ये महिलाएँ केवल प्रेम-वश ही तो सेवा कर रही हैं।"

* * *

महाराज जी ने बताया कि जब डेरे में बड़ा सत्संग-घर बनाया जा रहा था, तब देहली के एक बहुत अमीर और मशहूर ठेकेदार सरदार नारायण सिंह ने, जोकि बड़े महाराज जी के प्रेमी सत्संगी थे, विनती की कि पूरा सत्संग-घर बनाने के खर्च की सेवा उन्हें दे दी जाये। पर बड़े महाराज जी ने इस प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए जवाब दिया, "मैं चाहता हूँ कि गरीब से गरीब सत्संगी को भी सत्संग-घर की सेवा का मौका मिले, चाहे वह सिर्फ़ एक रुपया डाले या आठ आने। मैं चाहता हूँ कि हर सत्संगी, चाहे वह अमीर हो या गरीब, जवान हो या बूढ़ा, सत्संग-घर के निर्माण की सेवा में हाथ बँटाये; चाहे वह केवल मुट्ठी-भर मिट्टी या ईंट के कुछ टुकड़े ही उठाये। संगत की छोटी से छोटी सेवा मेरे लिये कीमती है, सेवा में बही उनके पसीने की हर बूँद अनमोल है; क्योंकि यह प्रेम की सेवा है, भक्ति और समर्पण की सेवा है।"

संगत ने अपने सतगुरु के प्रति प्यार-भरी सेवा से कितना निर्माण किया है, यह डेरे में हर जगह नज़र आता है।

महाराज जी द्वारा मित्रों को लिखे कुछ पत्रों से उद्धरण

१०-८-६३

अब तुम वहाँ हो इसलिये तुम्हें चाहिये कि परिस्थिति का पूरा फ़ायदा उठाओ। पत्नी के प्रेम और सहारे से ऐसा कुछ भी नहीं जो मनुष्य नहीं कर सकता। वह तुम्हारे सहारे पर बहुत निर्भर है, इसलिये तुम उसे ज़रूरी हौसला दो। मुझे विश्वास है कि वह तुम्हारे प्यार और अपने मृदु तथा कोमल स्वभाव से परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको ढाल सकेगा।

* * *

२०-८-६५

राधास्वामी।

मैं जानता हूँ कि मेरी इस लम्बी और अकारण चुप्पी से तुम्हारे मन में तूफ़ान-सा उठ रहा होगा। मैं अपना दोष स्वीकार करता हूँ। मैं क्या लिखूँ? यहाँ तो बहुत-कुछ हो गया है। तुम्हें कुछ भी लिखने से क्या मतलब है, जब तुम्हें मेरे बारे में सारी ख़बरें दूसरों से मिल गई हैं, और मैं जो लिखना चाहता हूँ वह लिख नहीं पाता। शायद हृदय की भाषा खामोशी ही है।

* * *

१७-९-६५

इतने महीनों की खामोशी के लिये मैं दोषी हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि मुझे क्या हो गया है। मैं अपने प्रियजनों को लिख नहीं पा रहा हूँ। अपने ख़यालों में हमेशा उनके साथ हूँ, लेकिन पत्र से सम्पर्क नहीं रख पाता हूँ। जब से तुम और .....गये हो, मैं लगातार सफ़र ही कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ, तुम्हारे जाने से पहले देहली न पहुँचने के लिये मुझे सफ़ाई देनी चाहिये, पर मैं हमेशा महसूस करता हूँ कि सफ़ाई देना दूसरे पर भरोसे की कमी प्रकट करना है।

हमारी सरहद पर क्या हो रहा है यह तुम्हें मालूम ही है। यहाँ सदैव हवाई हमलों की आशंका रहती है। महाराज जी की दया से हम इस छोटी-सी बस्ती में सुरक्षित हैं और मुझे विश्वास है कि यहाँ कुछ भी नहीं होगा। मेरे प्रेमियों ने मुझे यहाँ से चले जाने की सलाह दी है, पर मुझे यहाँ से अच्छा किला और कहीं नज़र नहीं आता। मैं जानता हूँ कि सीमा पर कुछ भी हो सकता है, पर महाराज जी का रक्षा का हाथ हमेशा मुझ पर और उनकी अपनी संगत पर है।

* * *

९-६-६८

राधास्वामी।

मुझे झकझोर कर तुम फिर गहरी नींद सो गये हो। महाराज जी की दया-मेहर से मेरी पूरी यात्रा बड़ी सुखद और आनन्दमय रही है। मैं जहाँ जाता हूँ वहाँ बड़े प्रेमी और दयालु लोग मिलते हैं, और मेरे निवास को आरामदेह बनाने के लिये सबकुछ करने को तैयार रहते हैं। मुझे याद नहीं

आता कि इस जीवन में मैंने इतना प्रेम और आदर पाने लायक कोई काम किया हो। मैं जैसा भी हूँ उसके बावजूद भी महाराज जी मुझ पर बहुत ही मेहरबान हैं। मैं बहुत खुश हूँ, और मुझे इतनी अच्छी तरह खिलाया जा रहा है कि मेरा वज़न पाँच पाउण्ड बढ़ गया है।

* * *

जनवरी २०, १९६४

राव साहिब का देहावसान १३ तारीख की सुबह सेन नर्सिंग होम (नई दिल्ली) में हो गया। उनके पार्थिव शरीर को उसी दिन शाम को डेरे लाया गया, लेकिन दाह-संस्कार अगले दिन सुबह हुआ। मुझे यह समाचार कलकत्ता में जल्दी सुबह ही मिल गया था, इसलिये देहली के लिये सुबह का हवाई जहाज़ ले सका और राव साहिब के शरीर को ले जाने वालों के साथ ही मैं भी शाम को ब्यास पहुँच गया। उनके भोग का कार्यक्रम भी यहीं डेरे में २५ तारीख को होगा। जैसा कि आप सब जानते हैं, वे एक नेक बुज़ुर्ग सज्जन थे; विनम्र, स्वभाव से सरल और व्यवहार में सच्चे तथा निश्छल व्यक्ति थे। वे बड़े महाराज जी के बहुत प्रेमी सत्संगी थे। सत्संगियों में राव साहिब बहुत लोक-प्रिय थे और सबका उनके लिये बड़ा आदर था। वे मेरे ससुर थे, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। मुझे उनके लिये बड़ा आदर और प्यार था।

आपने कलकत्ता के उपद्रवों का हाल अखबारों में पढ़ा होगा। संयोग से मैं उन दिनों सत्संग के लिये वहीं था। मोहमडन पार्क में सत्संग था, जोकि मुसलमानों की बस्ती है। मुझे इस दौरे में अपनी ज़िन्दगी का एक अनोखा अनुभव हुआ।

जब मैं सत्संग कर रहा था, हमारी नज़र के सामने गोलीबारी और आगजनी हो रही थी। बन्दूकें चल रही थीं। उस समय सत्संग में करीब तीन हज़ार व्यक्ति मौजूद थे, लेकिन उनमें से एक भी हिला-डुला नहीं, और न ही चारों तरफ़ के हालात से कोई परेशान हुआ। मुझे खुद ऐसा विश्वास और प्रेम देखकर आश्चर्य हुआ। सत्संग करीब दो घण्टे चला और जैसे ही वह ख़त्म हुआ सेना ने इन्तिज़ाम अपने हाथ में लेकर वहाँ कर्फ़्यू लगा दिया। हरएक सत्संगी सुरक्षित अपने घर पहुँच गया, और हममें से किसी को भी चोट नहीं लगी।

* * *

श्रीमती भरतराम कलकत्ता के इस दौरे पर महाराज जी के साथ थीं। उन्होंने मुझे बताया कि सत्संग में जाते समय महाराज जी की मोटर में दो स्थानीय सत्संगी और कलकत्ता सत्संग के सेक्रेटरी बैठे हुए थे और वे खुद दूसरी मोटर में थीं। एकाएक श्रीमती भरतराम की गाड़ी रुक गई; यह देखकर महाराज जी ने अपनी गाड़ी रुकवाई और उन्हें अपनी गाड़ी में बैठा लिया। जैसे ही गाड़ी चली एक गोली आकर उसमें लगी, लेकिन महाराज जी ने ड्राइवर को गाड़ी चलाते रहने के लिये कहा, और वे सब सत्संग पंडाल पर सुरक्षित पहुँच गये।

श्रीमती भरतराम कहती हैं कि सत्संग के बाद जब महाराज जी घर पहुँचे तो उन्हें कलकत्ता सत्संग के सेक्रेटरी ने ख़बर दी कि सारा पंडाल जला दिया गया है। इसलिये नामदान अगले दिन पंडाल की बजाय श्रीमती भरतराम के घर पर हुआ।

उन्होंने यह भी बताया कि देहली से कलकत्ता के लिये रवाना होने से पहले महाराज जी सेन नर्सिंग होम में राव साहिब से मिलने गये थे। उस समय श्रीमती भरतराम ने मोटर में महाराज जी से पूछा कि क्या राव साहिब ठीक हो जायेंगे ? महाराज जी ने जवाब दिया, "जब हम वापस आयेंगे तब तक वे गुज़र चुके होंगे। इसलिये मैंने खन्ना साहिब (डेरे के सेक्रेटरी) से सब इन्तिज़ाम करने को कह दिया है।" जब राव साहिब की मृत्यु की खबर आई तो महाराज जी को कर्फ़्यू होते हुए भी देहली के हवाई जहाज़ में जगह मिल गई।

लाला मुन्शीराम जी के पत्र

जब मैं डेरे के रेकार्ड को देख रही थी, मुझे कुछ पत्र मिले जो लाला मुन्शीराम ने सरदार बहादुर जी के जीवन-काल में महाराज जी को लिखे थे। पहला पत्र तारीख ६-६-५१ का है, जिसमें वे लिखते हैं कि सरदार बहादुर जी ने राय साहिब मुन्शीराम से कहा है कि रुपये ५०,०००/- के सेविंग डिपाज़िट डेरे के खाते में सरदार बहादुर जी और महाराज जी के संयुक्त नाम में करवा दें, और इसके लिये फ़ार्म पर महाराज जी के दस्तख़त चाहियें। दूसरा पत्र २२-६-५१ का है, जिसमें लाला मुन्शीराम जी चार फ़ार्मों पर महाराज जी के हस्ताक्षर मँगा रहे हैं। तीसरा पत्र २२-९-५१ का है

जिसमें वे महाराज जी को लिख रहे हैं कि सरदार बहादुर जी अपने और महाराज जी के नाम में एक संयुक्त खाता खुलवाना चाहते हैं। आख़िरी पत्र सरदार बहादुर जी के ज्योति-ज्योत समाने के ठीक एक महीने पहले का है। इससे ज़ाहिर होता कि सरदार बहादुर जी ने तय कर लिया था कि उनके बाद सतगुरु होने योग्य कौन है। सरदार बहादुर जी ने अपने जीवन-काल में यह बात महाराज जी को नहीं बताई, जिसका कारण वे ही जानें।

दीपक पूरी तरह तैयार था, ज़रूरत थी केवल लौ के हलके से स्पर्श की, ताकि उसकी अभी तक छिपी हुई ज्योति अपने पूरे प्रकाश में जगमगा उठे।

लाला मुन्शीराम जी द्वारा महाराज जी को लिखे पत्रों का अनुवाद नीचे दिया जा रहा है :

डेरा, ब्यास
६-६-५१

प्रिय स. चरनसिंह जी,

सरदार बहादुर जी ने मुझे आदेश दिया है कि आपके और उनके संयुक्त नामों में डेरे के ५०,०००/- रुपये दस साल के ट्रेज़री सेविंग डिपाज़िट में जमा करा दिये जायें, ब्याज और मूल दोनों में से किसी को या दोनों में से जो भी जीवित रहे (एतिहातन) उसे मिलेगा। इसलिये मैं एक छपा हुआ फ़ार्म आपके पास भेज रहा हूँ, जहाँ × निशान लगा है वहाँ दस्तख़त कर दीजिये। कृपया मुझे बताइये कि क्या आपके और कोई ट्रेज़री सेविंग डिपाज़िट हैं ताकि मैं फ़ार्म के कालम में यह जानकारी भर सकूँ। इस बात को बिलकुल गुप्त रखिए, और जवाब जल्दी दीजियेगा।

सप्रेम,

आपका स्नेही,
मुन्शीराम
सेक्रेटरी

* * *

डेरा बाबा जैमलसिंह,
ब्यास, २२-६-५१

प्रिय चरनसिंह जी,

मैं आपको चार फ़ार्म भेज रहा हूँ, जहाँ × निशान लगाया है वहाँ

दस्तख़त कर दीजिये। श्री सरदार बहादुर साहिब दस-दस हज़ार रुपये के पाँच सर्टिफ़िकेट खरीदना चाहते हैं, ताकि उनके भुगतान में आसानी रहे। मुझे आशा है आप विवाह से लौट आये होंगे। मेरी बधाई है। आपको और स. हरबंससिंह जी को मेरी राधास्वामी। कृपया इस बात को अपने तक ही रखें।

सप्रेम,

आपका स्नेही,
मुन्शीराम
सेक्रेटरी

* * *

डेरा बाबा जैमलसिंह,
ब्यास, २२-९-५१

प्रिय सरदार चरनसिंह जी,

श्री हुज़ूर सरदार बहादुर साहिब कुछ खाते आपके संयुक्त नाम में खुलवाना चाहते हैं, कृपया साथ भेजे जा रहे फार्मों पर जहाँ × निशान लगा है वहाँ दस्तख़त करके मुझे रजिस्ट्री से जल्दी वापस भेज दें।

डेरे में सब ठीक है। हुज़ूर की दया-मेहर पहुँचे। स. बचिंतसिंह डलहौज़ी से वापस आ गये हैं।

आपका स्नेही,
मुन्शीराम
सेक्रेटरी

महाराज जी के कुछ पत्रों के अंश

लॉस एंजेल्स,
केलिफ़, (यू.एस.ए.)
मई १५, १९६४

मिस हिलगर और सोंधी बहुत व्यस्त रहे हैं, इसलिये वे भी पत्र नहीं लिख सके। हुज़ूर महाराज जी के अमेरिकन सत्संगियों से उनके ही देश में मिलकर मुझे बहुत खुशी हुई है। जैसे ही मैं एयरपोर्ट पर पहुँचा तो देखने लायक नज़ारा था, जिसका वर्णन शब्दों में किया नहीं जा सकता। लोगों की

आँखों से आँसू बह रहे थे, भावनाओं से उनके गले रुँधे हुए थे, प्रेम से होंठ फड़क रहे थे और उनके हृदय आनन्द-विभोर थे। ये सब बड़े अच्छे सत्संगी हैं। मुझे खुशी है कि मैं इन सबसे इनके अपने देश में आकर मिल सका हूँ।

* * *

जोहन्सबर्ग (दक्षिण अफ़्रीका)
२१ मई, १९६६

राधास्वामी ।

मुझे आपके पत्र से यह जानकर दुःख हुआ कि आपके पिता का देहावसान हो गया है, और आप उनकी अन्तिम क्रिया के लिये इंग्लैण्ड में हैं। मैं आपकी भावनाओं को समझ सकता हूँ, क्योंकि कुछ समय पहले मैं भी ऐसे ही अनुभव से गुज़र चुका हूँ। अपने बुज़ुर्गों का मार्गदर्शन हमें ज़िन्दगी में मिलता रहे और वे हमारे हितों की देख-भाल करते रहें, यह बड़े सौभाग्य की बात है। एक-दूसरे को छोड़कर सभी को जाना पड़ता है, यही दुनिया की रीति है। इस दुःख को सहने की महाराज जी आपको शक्ति दें, और परमात्मा दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

* * *

नवम्बर १३, १९६६

बेशक मेरा हिमालय का दौरा बहुत थकानपूर्ण था। पर इन सीधे-सादे पहाड़ी लोगों का इतनी दूर से सत्संग के लिये आना मेरे लिये एक अपूर्व अनुभव है। पहाड़ों में सन्तमत दावानल की तरह फैल रहा है। यहाँ के लोग ईमानदार, निर्दोष और सच्चे हैं, और इस सरल शिक्षा को आसानी से समझ लेते हैं। जिसे हम सभ्यता कहते हैं वह अभी तक पहाड़ी इलाकों में नहीं पहुँची है, इसलिये यहाँ के लोग नेक और सीधे हैं। सत्संग के समय उनकी आँखों से प्रेम झलकता है और आँसू बहते रहते हैं। लेकिन वे अपने भावों को कहकर नहीं बताते।

मुझे तो आश्चर्य होता है कि उस समय ऐसे स्थानों पर महाराज जी कैसे पहुँचते होंगे, क्योंकि तब सड़कें भी नहीं थीं। मैंने सुना है कि वे कई बार दस से बीस मील पैदल चलते थे, और कभी तो पूरे दिन घोड़े पर सवारी करके उन स्थानों पर पहुँचते थे। महाराज जी ऐसी छोटी-छोटी झोंपड़ियों में ठहरते थे, जिनमें बराबर हवा भी नहीं आती थी और जहाँ बाथरूम होने का

तो सवाल हीं नहीं था। उनकी मेहनत का फल अब मिल रहा है, क्योंकि सन्तमत हिमाचल में दूर-दूर तक फैल रहा है। कई स्थानों पर महाराज जी के बनाये हुए बड़े सुन्दर सत्संग-घर हैं। वे मेरे और संगत के ठहरने के लिये बहुत आरामदायक हैं।

* * *

फ़रवरी २, १९७२

पिछले दो सालों में मुझे बहुत ज़्यादा परिश्रम करना पड़ा है, मेरे ख़याल से मेरे दिल के दौरे की यही वजह है। शायद मेरे हृदय को मेरी सत्संग की बढ़ती हुई गतिविधियों के साथ-साथ चलने में मुश्किल हुई है। मुझे २६ नवम्बर को दर्द हुआ और उसी समय मेडिकल इन्स्टीच्यूट देहली में भर्ती कर लिया गया। लेकिन लड़ाई छिड़ जाने से पूरा इलाज कराये बिना ही मुझे ६ दिसम्बर को डेरे आना पड़ा। तब से मैं रेस्ट (आराम) ले रहा हूँ, जिससे मुझे काफ़ी फ़ायदा हुआ है। अब डाक्टर ने मुझे रोज़ के काम-काज शुरू करने की इजाज़त दे दी है।

* * *

मेरे स्वास्थ्य-लाभ के लिये कृपया किसी आत्मिक-चिकित्सक के पास न जायें, क्योंकि मैं उनके हाथों में नहीं हूँ। हम लोगों की देखभाल करने वाला तो कोई और ही है, उस पर आप अविश्वास क्यों करते हैं? आपके सोचने का यह तरीका मुझे बड़ा अजीब लगता है, ख़ास कर जब मैं अपनी पुस्तकों में इस प्रकार के इच्छा-शक्ति द्वारा इलाज के विरुद्ध साफ़-साफ़ लिख चुका हूँ। आपको महाराज जी में पूरा विश्वास रखना चाहिये। जो कुछ वे करते हैं, हमारे अच्छे के लिये ही करते हैं। जब तक वे चाहते हैं तब तक हमें उनके द्वारा सौंपा हुआ पार्ट अदा करना है। कोई भी डाक्टर या इच्छा-शक्ति से इलाज करने वाला उस समय में एक क्षण भी नहीं बढ़ा सकता। कृपया मुझे यकीन दिलाइये कि आप ऐसा कुछ नहीं करेंगे, क्योंकि इससे मुझे संकोच होता है और बुरा भी बहुत लगता है।

* * *

बड़े महाराज जी का आशीर्वाद और रक्षा का हाथ उनकी सब भेड़ों पर है, भटकी हुई भेड़ों पर भी। मुझे दुःख है कि धीरे-धीरे तुम सत्संग के रास्ते

से अलग होते जा रहे हो, और इस तरह अपने बच्चों को डेरे के पवित्र वातावरण और सत्संग के नेक असर से दूर रख रहे हो। तुम डेरे केवल नाम-मात्र के लिये आते हो और वह आना भी सत्संग के लिये नहीं होता। डेरे से प्रकाशित पुस्तकों से भी तुम्हारा सम्पर्क नहीं रहा है।

* * *

ऑकलैण्ड

१४-६-६८

इस बेतहाशा बही जा रही दुनिया से बहुत दूर बिलकुल अकेले रहने का भी एक निराला ही अनुभव हो रहा होगा। असल में ऐसे मौके मालिक की देन होते हैं, क्योंकि तब हम अपने अन्तर में समझ जाते हैं कि असल में हमारा इस संसार से सम्बन्ध क्या है। हमें अपनी ओर खींचने के मालिक के अपने ही तरीके हैं। मुझे खुशी है आप भजन-सुमिरन कर रहे हैं।

* * *

१२-३-६३

आप जानते ही हैं कि हमारी पूरी ज़िन्दगी असल में कर्मों का हिसाब चुकाने का एक सिलसिला है। यह कहना बहुत मुश्किल है कि हमारे लिये क्या अच्छा है। सबकुछ मालिक पर छोड़ देना और वह जो करे उसमें खुश रहना ही बेहतर है।

परेशान बिलकुल न हों। भजन-सुमिरन की ओर ध्यान दें। आप मालिक की मौज में रहकर ही खुश रह सकेंगे। अपने रिश्तों और आसपास की हर चीज़ को इस दृष्टि से देखें कि यह संसार अपना लेन-देन निपटाने के लिये है। जो कुछ भी मालिक ने दिया है उसके लिये उसका शुक्र करें और अपने मन को भजन-सुमिरन में लगायें।

* * *

नवम्बर ४, १९६६

तुम्हारे पत्र से मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि तुम मानसिक अशान्ति से परेशान हो। बेशक अब तुम बड़े हो गये हो फिर भी हम कई बातें उम्र के साथ ही सीखते हैं। तुम एक ऐसे समय से गुज़र रहे हो जब तुम्हें अस्थाई कल्पनाएँ और धोखे में डालने वाली भावनाएँ आकर्षित कर सकती हैं, सो

यह समझने के लिये कि वे तुम्हारे लिये कितनी वास्तविक हैं तुम्हें उनसे संघर्ष करना होगा। इस उम्र (१८ वर्ष) में तुम्हें लगातार मार्गदर्शन की ज़रूरत है ; शायद पहले से भी अधिक मार्गदर्शन की। इसलिये अपने माता-पिता को सब बताने में और उनसे सलाह लेने में मत झिझको।

* * *

निआग्रा फ़ाल्स,
केनेडा की ओर से
जून २१, १९६४

कल मैं हवाई जहाज़ से न्यूयार्क जाऊँगा और वहाँ से २४ तारीख को लन्दन के लिये जहाज़ पर बैठूँगा। मैं जहाज़ पर पहुँचने की काफ़ी उत्सुकता से राह देख रहा हूँ ताकि मुझे सोने के लिये कुछ समय मिल सके और लन्दन और उसके आगे के बहुत व्यस्त सत्संग के कार्यक्रमों के शुरू होने से पहले मैं कुछ आराम पा सकूँ।

मेरी पूरी यात्रा मेरे लिये एक बहुत अच्छा अनुभव रहा है। यहाँ, डेरे से हज़ारों मील दूर, हुज़ूर महाराज जी के सत्संगियों को उनके उपदेशों पर चलते देखकर मुझे बहुत खुशी हुई है, और खासकर ऐसी परिस्थितियों में जोकि सत्संग के वातावरण के लिये अनुकूल नहीं है। उनके प्रेम, भक्ति और लगन का वर्णन करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। बड़े महाराज जी की शिक्षा को ग्रहण करके उस पर अमल करने के लिये वे तैयार हैं ताकि इस भ्रम और माया से घिरे संसार से छुटकारा पा सकें। इन सबने मुझे ज़रूर बहुत व्यस्त रखा है, लेकिन महाराज जी की दया से इस सबमें मेरे स्वास्थ्य ने मेरा पूरा साथ दिया है, और सत्संग के इन व्यस्त कार्यक्रमों को निभाने में मुझे सच्ची खुशी और आनन्द मिला है। उनकी दया-मेहर से मेरी पूरी यात्रा बड़ी सफल रही है।

* * *

जनवरी २९, १९७६

बम्बई के दौरे से लौटने के बाद से ही मैं सत्संग की गतिविधियों में बहुत व्यस्त रहा हूँ। गेस्ट हाऊस विदेश से आये मेहमानों से भरा हुआ है और उनकी वजह से मुझे बहुत कम समय मिल पाता है। मैं अभी नागपुर,

कलकत्ता और मद्रास के लम्बे सत्संग दौरे से वापस आया हूँ। कल मैं फिर सत्संग के लिए देहली जा रहा हूँ, वहाँ से ग्वालियर होता हुआ एक दिन के लिये एक शादी में इन्दौर जाऊँगा, वहाँ से ७ तारीख़ को सिरसा पहुँचूँगा और फिर १३ तारीख को इन्दौर सत्संग के दौरे पर जाना है। पर २२ फ़रवरी से ५ मार्च तक मैं ब्यास में ही हूँ।

लोगों की भक्ति और प्रेम के कारण मैं केवल उनसे मिलने एक जगह से दूसरी जगह जाता रहता हूँ, सो न तो मैं सो पाता हूँ और न ही आराम कर पाता हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम दोनों मेरे स्वास्थ्य के लिये और खास कर मेरे आपरेशन के बारे में कितने चिन्तित रहते हो, लेकिन मुझे अपने बारे में सोचने का समय ही नहीं है। मुझे इतनी ज़्यादा तकलीफ़ नहीं है कि आपरेशन के लिये इंग्लैण्ड आना पड़े। सबकुछ महाराज जी के हाथ में है, और मैं उनकी योजना पर चलने में खुश हूँ।

* * *

अक्तूबर ५, १९८३

इसमें कोई शक नहीं कि मैं सत्संग के दौरों पर जाता रहा हूँ, पर फिर भी यह कोई कारण नहीं कि मैं अपने निजी पत्र-व्यवहार को समय न दूँ। हम इस पंजाब समस्या में इतने लगे रहते हैं कि किसी को पत्र लिखने को मन ही नहीं करता। इस समस्या का न कोई अन्त दिखाई दे रहा है, न कोई हल नज़र आता है और न ही राजनीतिज्ञों को इसे सुलझाने में कोई दिलचस्पी है। उन्हें तो अपनी कुर्सियों की चिन्ता पड़ी है। हम तो सिर्फ़ आशा कर सकते हैं कि सब ठीक हो जाये। फिर भी मालिक की दया से हम सब सुरक्षित हैं और डेरे में शान्ति है। अखबारों के सिवाय हमें तो पता भी नहीं चलता कि हमारे चारों ओर क्या हो रहा है।

तुम्हें जानकर दुःख होगा कि बुआजी (बीबी रली) ने २७ तारीख की रात करीब पौने दो बजे चोला छोड़ दिया है। उनका अन्त शान्तिपूर्ण था और पिछली शाम तक वे होश में थीं। मैं उनसे २६ तारीख की शाम को ६ बजे मिला तब वे मुझे पहचान कर मुस्करा दीं। खैर, हम जानते थे वे अधिक समय नहीं रहेंगी। असल में मैं तो चाह रहा था कि जब अन्त आना ही है, तो आ ही जाये, क्योंकि उन्हें उस क्षीण शरीर में बाँधे रखकर उनकी

तकलीफ़ के दिनों को बढ़ाना बेमतलब था। वे अपने आप में एक संस्था थीं; वे सात वर्ष की उम्र में डेरे आईं और ९२ वर्ष की उम्र तक यहीं रहीं। वे एक बार मेरे साथ बम्बई और इन्दौर गईं, और कभी-कभी मेरे साथ सिरसा जाती थीं। इसके सिवाय मुझे याद नहीं कि वे कभी डेरे के बाहर निकली हों। तुम जानते हो वे सबके लिये क्या थीं, लेकिन हमें मालिक का हुक्म तो मंज़ूर करना ही है।

* * *

वाशिंगटन
मई २१, १९७०

हुज़ूर महाराज जी की दया-मेहर से मेरी यह यात्रा सत्संग की दृष्टि से विलक्षण रही है। जैसा कि जनक के पत्रों से आपको पता लगा होगा, जहाँ भी मैं गया हूँ बहुत बड़ा समुदाय खिंचा चला आया है। यहाँ लोगों में परमार्थ के लिये बड़ी तड़प है और वे समझ गये हैं कि भौतिक प्रगति और सफलताएँ उन्हें सुख या मन की शान्ति नहीं दे पाई हैं। वे स्वतन्त्रापूर्वक विचार करने लगे हैं और अपनी परम्परागत रूढ़ियों और विश्वासों से निकलने की कोशिश कर रहे हैं। बाइबिल के द्वारा उन तक पहुँचना काफ़ी आसान है।

मेरा स्वास्थ्य काफ़ी अच्छा है; हालाँकि ये लम्बी हवाई यात्राएँ कष्टप्रद हैं, और फिर समय का परिवर्तन कई निद्राहीन रातें देता है। परन्तु मुझे अपना कर्तव्य पूरा कर पाने में खुशी है और लोगों के प्रेम तथा हुज़ूर महाराज जी के सन्देश को ग्रहण करने की भावना देखकर प्रसन्नता होती है। प्रतिदिन एक-सा व्यस्त कार्यक्रम बेशक बहुत थकानेवाला है, पर यह देखकर गहरे सन्तोष और सुख का अनुभव होता है कि हुज़ूर महाराज जी का उद्देश्य और लक्ष्य उनकी दया-मेहर से सिद्ध हो रहा है। अपने सत्संग सम्बन्धी कार्यों की पूर्ति में मैं सुख और आराम महसूस कर रहा हूँ; और फिर संगत का प्रेम-प्यार अपने आपके बारे में सबकुछ भुला देता है।

जनक काफ़ी सहायक सिद्ध हो रहे हैं और सत्संग में उनकी व्याख्याएँ बहुत अच्छी होती हैं। उनका दृष्टिकोण बहुत बौद्धिक, दार्शनिक और स्पष्ट है और लोग इससे काफ़ी प्रभावित होते हैं। वैसे भी वे एक अच्छे साथी हैं।

पर वे हमेशा अपने आपमें खोये से रहते हैं, खास कर जब वे कस्टम और इमिग्रेशन (प्रवेश-विभाग) में से निकलते हैं।

* * *

मैं तुम्हारी भावनाओं को समझता हूँ और अपने सतगुरु के प्रति तुम्हारे एकनिष्ठ प्रेम की कद्र करता हूँ। लेकिन दूसरों के प्रति, तुम्हारे परिवार के प्रति, तुम्हारे कुछ कर्तव्य और उत्तरदायित्व हैं। तुम्हें चाहिये कि उन्हें प्रेम और ईमानदारी के साथ पूरा करो। सतगुरु से प्रेम का यह अर्थ तो नहीं कि इन्सान को अपने परिवार के प्रति उपेक्षा बरतने या लापरवाही करने की छूट है। प्रेम तो हमें अधिक सहनशील और दूसरों के सुख-दुःख को समझने के अधिक योग्य बनाता है। प्रेम के फलस्वरूप तो तुम्हें पहले से अच्छी पत्नी, अच्छी माता बनना चाहिये, हर तरह से एक बेहतर इन्सान बनना चाहिये।

प्रेम का यह अर्थ तो नहीं कि हम अपने कर्तव्य अदा न करें, दुनियावी ज़िम्मेदारियों की ओर से मुँह फेर लें। प्रेम तो हमें एक आदर्श व्यक्ति बनाता है, औरों के लिये एक मिसाल बनाता है। तुम्हें देखकर सम्भव है और लोग भी सन्तमत की ओर आकर्षित हों। सो इस भावना के साथ कि सतगुरु हमेशा तुम्हारे साथ है और तुम्हारी सहायता कर रहा है, अपने परिवार के प्रति अपने कर्तव्य बराबर निभाओ। सतगुरु को प्यार करो, लेकिन परिवार का हक भी चुकाओ।

* * *

मिनेसोटा (अमेरिका)
जून ८, १९७०

हर सत्संग-केन्द्र में मेरा कार्यक्रम एक-सा रहता है। सुबह दिनचर्या की शुरुआत मुलाकातों से होती है और उसके बाद कॉफ़ी लेते समय भी स्थानीय सत्संगी छोटे-छोटे ग्रुप में मिलते हैं। कभी-कभी इस सबमें सुबह के ११.३० बज जाते हैं। फिर मुझे किसी न किसी के घर में दोपहर के खाने के लिये जाना पड़ता है। यहाँ एक स्थान से दूसरे की दूरी बहुत है। इसलिये कई बार कार द्वारा पहुँचने में पौन घण्टे से एक घण्टा तक लग जाता है। एक घण्टा खाने में लगता है और मैं ३.०० या ३.३० से पहले अपनी होटल में नहीं पहुँच पाता। फिर भी शाम की सत्संग-मीटिंग से पहले थोड़ा

समय आराम के लिये मिल जाता है। मुझे याद नहीं कि हिन्दुस्तान छोड़ने के बाद से अब तक मैं कभी रात को ग्यारह बजे से पहले सो पाया हूँ। लेकिन मैं प्रसन्न हूँ और मेरा स्वास्थ्य ठीक है; इस बारे में मुझे कोई परेशानी नहीं है। यहाँ सभी लोगों में बहुत प्रेम और लगन है, वे मेरे लिये ज़्यादा से ज़्यादा करना चाहते हैं। सत्संगी एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र मेरे पीछे-पीछे चले आते हैं, और हवाई जहाज़ करीब-करीब सत्संगियों से भरे रहते हैं। जिन होटलों में मैं ठहरता हूँ, वे भी जिज्ञासुओं और सत्संगियों से भरी रहती हैं। मेरे ख़याल से मैं वायु सेवाओं, होटलों और फ़ोटोग्राफ़रों को बिना किसी कमीशन के बहुत अच्छी बिज़नेस दे रहा हूँ।

एक बात जो मुझे अमेरिका के लोगों में ख़ास तौर पर पसन्द आयी वह है कि ये लोग ईमानदार, सच्चाई-पसन्द और स्पष्टवादी हैं–कभी-कभी तो बहुत ही स्पष्ट या खरी बात करते हैं। हमेशा पता चल जाता है कि वे आपके बारे में क्या सोचते हैं। अगर वे आपको प्यार करते हैं तो उसे प्रकट करने में कभी नहीं झिझकते; लेकिन अगर वे नफ़रत करते हैं तो वह उनके चेहरे से साफ़ ज़ाहिर हो जाती है।

इस बार सत्संगियों में काफ़ी मेल-जोल की भावना है और वे एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझते हुए आपस में सहयोग करते हैं। फिर भी मुझे लगता है कि वे केवल अपने आपके बारे में ही सोचने लगे हैं या कुछ स्वार्थी हो गये हैं। शायद यह आज की सांसारिक सहूलियतों और टैलीविज़न का असर है। व्यक्तिगत रूप से हर कोई सोने के समान है, पर इकट्ठे होने पर समझ में नहीं आता उन्हें क्या हो जाता है। लेकिन कम से कम सत्संग केन्द्रों में मुझे किसी समस्या का सामना नहीं करना पड़ता, क्योंकि उनमें काफ़ी आपसी प्रेम है।

आपको यह जानकर खुशी होगी कि डीट्राइट में मैं सभी पुराने और अनुभवी सत्संगियों से मिला और उनसे अमेरिका में एक केन्द्रीय प्रबन्ध व्यवस्था के बारे में चर्चा की। उन सबने एक-मत से स्वीकार किया कि सब ट्रस्ट और कमेटियाँ भंग करके एक केन्द्रीय संस्था बनाई जाये। उनके इस निर्णय से मुझे बहुत खुशी हुई। इन सबके आपसी प्रेम और मेल-जोल की भावना को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। ये समझ गये हैं कि पूरे

अमेरिका में सत्संग की गतिविधियों को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये एक केन्द्रीय व्यवस्था समिति आवश्यक है।

महाराज जी की एक सलाह

"जब तक आपकी बहस तटस्थ भावना के साथ होती है और जब तक उसमें किसी प्रकार की व्यक्तिगत आलोचना नहीं है, तब तक आपका कमेटी की मीटिंग में अगर एक-दूसरे से मत-भेद होता है तो कोई बात नहीं। लेकिन अन्त में आप सबको किसी एक ही निर्णय पर पहुँचना चाहिये और तय की हुई बात को कमेटी से बाहर एक ही स्वर में कहना चाहिये। अन्दर होने वाले मत-भेद का किसी को भी पता नहीं चलना चाहिये। ये लोकतन्त्र के मूल सिद्धान्त हैं।

"आपस में मन-मुटाव क्यों हो? सत्संगी तो सभी भाई-बहन हैं। हम सबका पिता एक ही है। आपका ध्येय तो संगत की खुशी होना चाहिये। आप सेवा कर रहे हैं, हुकूमत नहीं। यह कमेटी अपनी योग्यता का दिखावा करने या औरों पर धौंस जमाने के लिये नहीं है। यह संगत की सेवा करने के लिये है, संगत पर हुक्म चलाने के लिये नहीं। मन हमें इस भ्रम में डाल सकता है कि हम महत्वपूर्ण हैं; पर हम महत्वपूर्ण हैं नहीं। हम तो यहाँ केवल संगत की खुशी के लिये हैं।"

कर्नल बर्ग द्वारा युनिटेरियन सोसाइटी के हाल में सत्संगियों और जिज्ञासुओं को दिया गया परिचय
(मई २८, १९६४ मिनियापोलिस)

यह रूहानी शिक्षा, जिसे सन्तमत कहते हैं, भारत, ईरान, चीन आदि देशों के महान सन्तों का बताया हुआ मार्ग है। सन्तमत का यह केन्द्र भारत में आम तौर पर पाये जाने वाले साधुओं और फ़कीरों का संघ नहीं है। इस मार्ग को अपनाने वाले संसार का त्याग नहीं करते, बल्कि साधारण पारिवारिक जीवन बिताते हैं और अपना रूहानी अभ्यास दुनिया के कर्तव्यों

को निभाते हुए करते हैं। सन्तमत इस बात पर ज़ोर देता है कि जो लोग सांसारिक जीवन की परीक्षाओं और मुसीबतों का सामना नहीं कर सकते, वे इससे कहीं अधिक कठिन रूहानी मार्ग पर चलने के योग्य नहीं हो सकते। सतगुरु स्वयं इसके उदाहरण हैं और उन्होंने जुलाहे, कुम्हार, मोची, सुनार, किसान, इंजीनियर आदि का कार्य करते हुए अपना गुज़ारा किया है। मौजूदा सतगुरु चरनसिंह जी महाराज एक वकील और कृषि-फार्म के स्वामी हैं।

ब्यास के सन्तों की एक विशेषता यह है कि वे साधारणतया अपने शिष्यों के प्रारब्ध में दख़ल नहीं देते। वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि अगर शिष्य परमात्मा की रज़ा में राज़ी रहे तो रूहानी तरक्की में मदद मिलती है। वे व्यापार, परीक्षा या मुकद्दमे में सफलता दिलाने की बात नहीं करते और न ही अच्छी नौकरी दिलाने का वादा करते हैं; बल्कि वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि हमें सुख-दुःख, सफलता-असफलता, हर्ष-शोक आदि सभी में सन्तुलन या समता बनाये रखना चाहिये और अपना रूहानी अभ्यास इन बदलती हुई परिस्थितियों में भी करते रहना चाहिये। अगर ऐश्वर्य और सुख के समय खुशी से फूलकर या दुःख और मुसीबतों से तंग आकर रूहानी अभ्यास करना भूल जायें, तो फिर अभ्यास करेंगे कब?

सतगुरु ज़ोर देकर कहते हैं कि शिष्य को चाहिये कि ज़िन्दगी में जो कुछ होता है उसे शान्ति से भुगते और अपना आध्यात्मिक कार्य संसार में रहते हुए करे। वे इस बात को भी महत्व देते हैं कि हम साधारण मनुष्य की तरह रहें तथा औरों से अलग नज़र आने के लिये किसी भी प्रकार का बाहरी दिखावा न करें। यहाँ कोई भगवा वस्त्र या ख़ास तरह की वेश-भूषा नहीं है।

मिनियापोलिस में दिये गये महाराज जी के भाषण के कुछ अंश

(मई २८, १९६४)

अमेरिका ने जो सामाजिक व आर्थिक उन्नति तथा वैज्ञानिक प्रगति की है, उसे देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। लेकिन मुझे लगता है कि लोग अब इस सचाई को महसूस करने लगे हैं कि इन सब उपलब्धियों के द्वारा भी उन्हें सच्चा सुख और खुशी प्राप्त नहीं हो सकी है। और यह बात सच भी

है। यदि हम बिना किसी पक्षपात के साफ़ दिल से विचार करें तो हम देखेंगे कि जिस सच्चे सुख व शान्ति की हम खोज कर रहे हैं वे एक स्वप्न के समान अप्राप्य रहे हैं, क्योंकि हमारी खोज हमेशा राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर ही रही है। हमने कभी मानवीय और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विश्व-शान्ति की प्राप्ति का प्रयास नहीं किया है। सारे संसार को एक ही प्रकार के राजनैतिक ढाँचे या समान विचारधारा के अधीन लाना तो लगभग असम्भव ही है। इतिहास इस बात का गवाह है कि ऐसा आज तक कभी नहीं हो पाया है। परन्तु आध्यात्मिक या रूहानी आधार पर सारी दुनिया एक हो सकती है, और यह रूहानियत ही ऐसा साधन है जो सबको इकट्ठा करके सबके अन्तर में प्रेम और शान्ति के बीज बो सकता है।

परमात्मा एक है और वह हम सबके अन्दर मौजूद है। यह एक ऐसी सचाई है जिससे किसी को भी इनकार नहीं। जितनी अधिक हमारे दिल में परमात्मा के प्रति भक्ति होगी, प्यार होगा, उतना ही हम परस्पर एक-दूसरे के निकट होंगे। जितना अधिक हम परमात्मा को भूलते जायेंगे उतने ही हम एक-दूसरे से दूर और विमुख होते जायेंगे; यह दूरी सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रकट होगी। आज हमारा झुकाव परमात्मा को बिसार कर सांसारिक पदार्थों और प्राप्तियों में सुख व शान्ति ढूँढने की ओर है। जितना हम इनकी ओर भागते हैं, उतने ही हताश और दुःखी होते हैं।

हम इस संसार में रहते हुए भी, केवल परमात्मा की भक्ति व प्यार के द्वारा ही सच्चा सुख प्राप्त कर सकते हैं। जैसे, एक बच्चा अपने पिता की उँगली पकड़कर नुमायश देखने जाता है और वहाँ की चीज़ों को देखकर बहुत खुश होता है। वह समझता है कि उसे यह खुशी केवल नुमायश की वस्तुओं से मिल रही है। परन्तु संयोगवश यदि उसके हाथ से पिता की उँगली छूट जाये और वह पिता से बिछुड़ जाये, तो नुमायश की सब वस्तुएँ वहाँ होते हुए भी वह रोने-चिल्लाने लगता है और अब उसे कोई भी वस्तु आकर्षित नहीं करती। तब उसे पता लगता है कि नुमायश और उसके सामान तभी तक खुशी दे रहे थे जब तक कि वह पिता का हाथ पकड़े था। इसी प्रकार वह मालिक हमारा पिता है। यह दुनिया की नुमायश हमें तब तक ही सुख दे सकती है जब तक हमारी लिव अपने परम पिता के साथ लगी हुई है।

महाराज जी की अमेरिका-यात्रा के समय विदेशी सत्संगियों द्वारा दीवान दरियाईलाल को लिखे कुछ पत्रों के अंश

जून २१, १९६४

महाराज जी अति सुन्दर, दयालु और प्रेम से परिपूर्ण एक रत्न हैं। इस नर-रूप में परमात्मा को देखने का आनन्द मुझे चार दिन और रात मिला, और मैंने उनके साथ भोजन भी किया। हमारे लिये कैसी महान देन है! आपको डेरे में उनकी कमी कितनी अखरती होगी।

हम तो बस उनके प्रेम और आराधना में भूल गये कि आप उनको कितना याद कर रहे होंगे। एक बार वे हमारे सामने हों तो उनके पास से हटने को जी नहीं चाहता।

* * *

....मुझे दुःख है कि महाराज जी—आपके अनमोल, पूजनीय, परमप्रिय, प्रेममय प्रियतम आपके पास नहीं हैं, परन्तु उनके प्रेमपूर्ण हृदय की धड़कन हम सबके लिये है।

प्यारे भाई दरियाईलाल, अपने प्रियतम महाराज जी के सम्बन्ध में जानने की आपकी इच्छा ने मेरे हृदय को प्रेम और कृतज्ञता से भर दिया है। एक प्रेमी द्वारा अपनी प्रियतमा को लिखी हुई कविता की आपने मुझे याद दिला दी है.... मैं इसे यहाँ लिख रहा हूँ, क्योंकि यह महाराज जी के प्रति आपकी भावनाओं का चित्रण करती है और मुझे उनकी याद दिलाती है :

"जो प्रेम तूने मेरे अन्दर जगाया है,
उसने छीन ली है मुझसे
मेरी अक्ल, मेरी सुध-बुध;
उसने छीन ली है मुझसे
मेरी भूख-प्यास, मेरी नींद;
विमुख कर दिया है उसने
मुझे अपने मित्रों से।
कीर्ति मेरे लिये सारहीन है
और सफलता अप्रिय—

जब तक इनमें न हो
तेरी प्रसन्नता।
तेरे प्रेम ने समा लिया है
मुझे अपने अन्दर,
पहुँचा दिया है उसने मुझे
उन्माद की कगार पर;
और अब झुलस रहा है मेरा हृदय,
दहक रहा है रक्त।"

मैं कामना करता हूँ कि उनका सबको अपने में समा लेने वाला प्रेम आपके हृदय के हर कोने को भर दे, उनकी सर्वव्यापी करुणा और शोभा में आप समा जायें, उनकी दिव्य ज्योति में सदा के लिये लीन हो जायें। मैं अत्यन्त आभारी हूँ आपका कि आपने मुझे अपने प्रियतम की याद दिलाई और याद दिलाई उनके प्यारे प्रेमियों की...।

अन्तिम अध्याय

अन्तिम अध्याय

मार्च १९९० में जब महाराज जी देहली सत्संग से लौटे तो हमें लगा कि वे किसी भी चीज़ में दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। वे अपना रोज़ का काम-काज हमेशा की तरह कर रहे थे, लेकिन फिर भी सब ओर से उदासीन से थे। मैं महाराज जी से इसका कारण पूछे बिना नहीं रह सकी। महाराज जी ने जवाब दिया, "मुझे किसी बात में दिलचस्पी नहीं रही है; अब यहाँ कोई भी चीज़ ऐसी नहीं जो मुझे रोके रखे। मेरा काम ख़त्म हो गया है।" महाराज जी के इन शब्दों से मुझे बड़ा धक्का लगा, मन में गहरा भय पैदा हो गया और आशंका से घबरा कर मैंने कहा, "बड़े महाराज जी ने नब्बे वर्ष की उमर में संसार त्यागा था, आप तो अभी ७३ वर्ष के ही हैं।"

देहली सत्संग के दिनों में महाराज जी को दिल में दर्द महसूस हुआ था। डेरे आने पर उनका कार्डियोग्राम लिया गया और डाक्टरों ने सलाह दी कि वे अपना रोज़ का काम-काज थोड़ा कम और हलका कर दें, आराम ज़्यादा करें और कुछ दवाइयाँ नियमित रूप से लें। दिन बीतते गये, परन्तु मेरे मन में महाराज जी द्वारा कही हुई बात रह-रह कर खटकती रही।

मई में महाराज जी की तबियत ठीक लग रही थी और वे अपनी रोज़ की दिनचर्या हमेशा की तरह निभाते रहे। केवल एक दिन नियमित सैर के समय उनकी साँस भर गई और उन्होंने सैर बन्द कर दी। मई का भण्डारा आ रहा था, सो उनकी व्यस्तता बढ़ती गई। भण्डारे के दिन सत्संग के बाद उन्होंने बताया कि सुबह से ही उन्हें दिल के आसपास के हिस्सों में रह-रह कर दर्द होता रहा है। हम लोगों ने उनसे विनती की कि तुरन्त डाक्टर को दिखायें और कुछ आराम करें। लेकिन उन्होंने आदेश दिया कि हम किसी से इस बारे में कुछ न कहें। उन्होंने फ़रमाया, "चिन्ता की कोई बात नहीं है, मैंने डाक्टर जोशी से बात कर ली है, वे शाम को मेरा कार्डियोग्राम लेंगे।"

दर्द होते हुए भी महाराज जी सख़्त गरमी के समय लंगर में प्रसाद करने गये और फिर वहाँ से सेवा में गये। सेवा में उन्होंने मुलाकातें दीं और अन्य कार्य हमेशा की तरह किये। शाम को डाक्टर जोशी ने कार्डियोग्राम लिया जो ठीक था। इसके बाद महाराज जी सामान्य रूप से सब कार्य करते रहे और रोज़ की तरह अपनी माता (बेजी) से मिलने गये, हालाँकि उन्हें दर्द बराबर होता रहा। बेजी के पास महाराज जी ७.४५ बजे तक रहे और

परिवार के साथ भोजन किये बिना अपने सोने के कमरे में चले गये। भोजन उन्होंने अकेले ही किया।

अगले दिन २८ मई को डाक्टर जोशी ने फिर कार्डियोग्राम लिया जिसमें कुछ परिवर्तन दिखाई दिये। लेकिन खून की जाँच से पता लगा कि महाराज जी को दिल का दौरा पड़ा था। सो डाक्टरों तथा डेरा कमेटी के सदस्यों के बहुत ज़ोर देने पर महाराज जी को अगले दिन के नामदान के कार्यक्रम को रद्द करने की मंज़ूरी देनी पड़ी।

महाराज जी के शब्द मुझे बार-बार याद आते रहे और मेरा दिल बैठता रहा। उनके दर्शन के लिये हम बेचैनी के साथ उनके सन्देश की राह देखते रहे। सौभाग्य से उन्होंने हमें शाम को बुलाया। हम पूरा दिन चिन्ता में डूबे हुए थे, उनके बुलावे में हमें आशा की किरण दिखाई दी कि उनकी तबियत अच्छी होगी। सो लुईस हिलगर, श्रीमती भरतराम और मैं महाराज जी की कोठी गये।

डाक्टर जोशी वहाँ मौजूद थे, उन्होंने हमें महाराज जी से बातचीत करने के लिये मना किया। उनके दर्शन करके हमें बहुत खुशी हुई और जब उन्होंने कहा कि उनकी तबियत पहले से ठीक है तो हमें बड़ी राहत मिली। हम दस मिनिट ठहर कर वापस आ गये। सोचा कि कुछ दिन बिस्तर पर आराम करने से महाराज जी बिलकुल अच्छे हो जायेंगे और अपनी रोज़ की दिनचर्या शुरू कर देंगे। उस समय हम सोच भी नहीं सकते थे कि उन्होंने संसार से चले जाने का फ़ैसला कर लिया है और यह बात केवल हमें तसल्ली देने के लिए कही है।

अगले दिन, २९ मई की सुबह १०.३० बजे महाराज जी ने हम तीनों तथा मेरे पति को फिर बुलवाया। फेफड़ों में कुछ सूजन आ जाने के कारण महाराज जी को बोलने में मामूली-सी तकलीफ़ हो रही थी, फिर भी उन्होंने कहा कि उनकी तबियत पहले से कुछ अच्छी है।

महाराज जी की कृपा और करुणा इतनी थी कि गिरते हुए स्वास्थ्य के बावजूद उसी दिन शाम को हमें फिर बुला भेजा। उन्होंने मेरे पति को कुछ आदेश दिये। हम उनके पास कुछ ही मिनिटों के लिये रुके, पर उनकी इस कृपा के लिये हम अत्यन्त कृतज्ञ थे।

बुधवार ३० मई की सुबह महाराज जी ने डेरा के सेक्रेटरी श्री एस. एल.

सोंधी तथा कुछ प्रमुख सत्संगियों को बुलाया। उन्होंने डाक्टर जोशी के सिवाय और सभी डाक्टरों, नर्सों और अपने परिवार के सदस्यों को कमरे से बाहर भेज दिया। उसके बाद जो कुछ महाराज जी ने फ़रमाया वह उन सबके लिये एक बहुत बड़ा आघात था। महाराज जी ने सेक्रेटरी से अपनी वसीयत लिखवाई, और सरदार गुरिन्द्रसिंह ढिल्लों सुपुत्र सरदार गुरमुखसिंह ढिल्लों (मोगा) को अपना रूहानी जानशीन अथवा उत्तराधिकारी नियुक्त किया। महाराज जी ने उन्हें सत्संग और नामदान देने की आध्यात्मिक शक्ति और अधिकार प्रदान किया और उन्हें राधास्वामी सत्संग ब्यास सोसाइटी तथा महाराज जगतसिंह मेडिकल रिलीफ़ सोसाइटी ब्यास का संरक्षक नियुक्त किया।

वसीयत के लिख लिये जाने के बाद महाराज जी ने अपनी पढ़ने की ऐनक लगाई और ध्यानपूर्वक वसीयत को पढ़ा। वसीयत सभी गवाहों को भी पढ़ कर सुनाई गई।

वसीयत लिखाते समय महाराज जी की आवाज़ थोड़ी धीमी किन्तु स्पष्ट और दृढ़ थी। और जिस समय उन्होंने वसीयत पर दस्तख़त किये महाराज जी के मुख पर एक अपूर्व तेज था, वह अपनी रूहानी ज्योति में जगमगा रहा था। फिर वसीयत पर श्री एस. एल. सोंधी, डाक्टर पी. एस. जोशी, सरदार सेवासिंह और श्री वीरेन्द्र सेठी ने दस्तख़त किये। हुज़ूर के आदेश के अनुसार सरदार सोहनसिंह भण्डारी ने ग्राम के सरपंच की हैसियत से अपनी स्टाम्प लगा कर दस्तख़त किये।

कुछ समय बाद महाराज जी ने श्री एस. एल सोंधी तथा वसीयत के एक और गवाह को बुलाया और उन्हें वसीयत की फ़ोटो कापी (ज़ेराक्स कापी) करवाने और मूल प्रति को डेरा की तिजोरी में रखने के बारे में आदेश दिये। महाराज जी द्वारा वसीयत बनाये जाने से उन सभी सत्संगियों को जो उस समय वहाँ मौजूद थे बहुत गहरा आघात लगा। परन्तु उनकी भीगी आँखें और दुःख-पीड़ित चेहरों को देखकर महाराज जी ने कहा, "सोंधी साहिब, फ़िक्र मत करो, मैं बिलकुल अच्छा हो जाऊँगा।" कुछ तसल्ली पाकर वे नीचे आ गये और वसीयत की कापी करवाने तथा उसे तिजोरी में रखने चले गये।

३१ मई की सुबह महाराज जी ने डाक्टर जोशी से कहा, "यह शरीर अब सेवा के लायक नहीं रहा है, इसे अब और रखने का क्या फ़ायदा ?"

डाक्टर जोशी ने इस बात का विरोध किया और कहा "यह बीमारी एक अस्थाई अवस्था है, आप कुछ समय में ठीक हो जायेंगे।" डाक्टर जोशी ने महाराज जी को याद दिलाया कि उन्होंने वादा किया था कि बिलकुल ठीक हो जायेंगे। महाराज जी ने जवाब दिया, "सबकुछ मालिक के हुक्म से हो रहा है।"

उसी दिन, तारीख ३१ की सुबह १०.३० बजे महाराज जी ने हमें फिर बुलाया। उन्होंने डाक्टरों से कह कर आक्सीजन हटवा दिया था। उनके चेहरे पर ऐसी अभूतपूर्व चमक थी कि कोई भी नहीं सोच सकता था वे बीमार हैं। उनकी आवाज़ थोड़ी कमज़ोर थी लेकिन स्पष्ट थी। वे अपने बच्चों को सलाह दे रहे थे कि आपस में प्रेम-प्यार तथा मेल-जोल रखें। वे हमसे कुछ शब्द बोले और मेरे पति तथा लुईस हिलगर को कुछ आदेश दिये। परन्तु मेरा दिमाग दुःख के कारण बिलकुल खाली था। हम मत्था टेक कर बाहर आ गये, लेकिन हमें कल्पना तक न थी कि यह हमारे लिये अपने प्रिय सतगुरु के अन्तिम दर्शन थे।

१ जून की सुबह हमें बताया गया कि कोई हृदय-रोग की विशेषज्ञा देहली से आई हैं और महाराज जी की जाँच कर रही हैं। सो हम अपने कमरे में इन्तिज़ार करते रहे, पर मेरे पति महाराज जी की तबियत के बारे में पता लगाने कोठी गये। सुबह ११.३० बजे उन्होंने आकर खबर दी कि महाराज जी की तबियत बहुत चिन्ताजनक है। हम कोठी में गये, सोचा कि वहीं बैठेंगे। लेकिन वहाँ पहुँचे तो भयानक समाचार मिला कि हमारे प्यारे सतगुरु ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया है; शब्द शब्द में समा गया, ज्योति ज्योति में लीन हो गई। हालाँकि सतगुरु हमेशा हमारे अंग-संग हैं, पर उनके देह-स्वरूप का वियोग हम सबके लिये एक अत्यन्त गहरा आघात था।

यह समाचार एक दावानल की भाँति चारों ओर फैल गया, डेरे में, पूरे देश में और विदेशों में। सत्संगियों के लिये यह एक भयंकर वज्रपात था। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि ऐसा हो सकता है, किसी को विश्वास नहीं हो रहा था। सब लोग बार-बार पूछ रहे थे, इस आशा में कि शायद किसी ने एक क्रूर मज़ाक किया हो और यह समाचार ही गलत हो। पाँच दिन पहले ही तो महाराज जी ने मई भण्डारे का सत्संग किया था। सब

पूछ रहे थे कि यह कैसे हो सकता है ? लेकिन अफ़सोस, यह सच था ; यही उनकी मौज थी।

उस समय से सत्संगियों को केवल ब्यास की ओर आने का ख़याल था। सब डेरे पहुँचना चाहते थे, जैसे भी हो सके अपने प्यारे सतगुरु के अन्तिम दर्शन करना चाहते थे। महाराज जी तो सबके लिये एक पिता थे, मार्ग-दर्शक थे, गुरु थे, परम मित्र थे, सर्वेसर्वा थे, स्वयं परमात्मा थे। वे संगत के लिये जीने का एकमात्र सहारा थे और रूहानी मण्डलों में पहुँचने के लिये एक ही आशा। सत्संगी उनके अन्तिम दर्शन के लिये ब्यास की ओर खिंचे चले आ रहे थे।

उनका नश्वर शरीर दर्शनों के लिये सत्संग मैदान में एक खास तौर से बनाये गये मंच पर रखा था—उसी स्थान पर जहाँ से वर्षों तक एक देदीप्यमान सूर्य की तरह बैठकर सत्संग किया करते थे। लाखों लोग डेरे की ओर आ रहे थे। जी. टी. रोड पर ब्यास स्टेशन के दोनों ओर १५ किलोमीटर तक भीड़ के कारण यातायात रुक-सा गया था। स्टेशन और डेरे के बीच तो ट्रक, ट्राली, वेन, मोटर, बस आदि हर तरह के वाहन एक से एक लगे हुए थे और रास्ता बिलकुल बन्द हो गया था। लोग डेरे पहुँचने की जल्दी में वाहनों को सड़कों पर और खेतों में छोड़कर पैदल दौड़ रहे थे। कल्पना नहीं की जा सकती ऐसी भीड़ की।

हर कोई जल्दी में था, चारों ओर भाग-दौड़ मची हुई थी, किसी को डेरे पहुँचने के सिवाय और कुछ सूझ ही नहीं रहा था। कोई किसी की सुन भी नहीं रहा था। ऐसा मालूम हो रहा था मानों इनसानों का महासागर उमड़ आया है। फिर भी बहुत थोड़े लोग समय पर पण्डाल पर पहुँच पाये। राज्य सरकार के प्रतिनिधि और उच्च शासकीय अधिकारी, आई. जी. पुलिस आदि रास्ते में ही अटक गये, वे अपनी श्रद्धांजलि अर्पित नहीं कर पाये। अनुमान है कि उस समय डेरे में १० से १२ लाख स्त्री-पुरुष मौजूद होंगे।

२ जून की सुबह सत्संग मैदान में मंच के सामनें से लोग कतार में दर्शन करते हुए निकले। महाराज जी का शरीर वहाँ था, हमेशा जैसा सुन्दर और शान्त मुख, वही अलौकिक भव्यता, वही जलाल, वही सुहावनी श्वेत दाढ़ी, वही दयामय भाव और ज्योतिर्मय मुख पर वही हलकी मन्द मुस्कान जो मित्र और विरोधी सबके हृदय को सहज ही जीत लेती थी।

शरीर के आसपास बैठे महाराज जी के परिवार के परिचित चेहरे असीम शोकाकुल अवस्था में नज़र आ रहे थे। लाखों ने अन्तिम दर्शन करके अपने को कृतार्थ किया। वे बड़ी शान्ति के साथ, कतार बना कर, पूर्ण अनुशासन में उनके सामने से निकले, बिलकुल वैसे ही जैसे कि महाराज जी पसन्द करते।

सुबह ठीक आठ बजे महाराज जी के पार्थिव शरीर को डेरे के अन्दर से होते हुए संस्कार-स्थल पर ले जाया गया—उसी डेरे से होते हुए जिसकी एक-एक ईंट महाराज जी तथा उनके पहले के सतगुरुओं के प्रेमपूर्ण मार्गदर्शन में रखी गई थी। पूरे मार्ग के दोनों ओर हज़ारों की संख्या में लोग हाथ जोड़े, आँसुओं से भरी आँखों से दर्शन कर रहे थे। हर तरफ़ हृदय-विदारक दृश्य था; कई फूट-फूट कर रो रहे थे, कई की खामोश आँखों से अश्रु-धाराएँ बह रही थीं। जुलूस श्मशान-भूमि में पहुँचा। वहाँ पहले से ही असंख्य जन-समूह मौजूद था।

शरीर को एक सुचारु रूप से बनी चिता पर रखा गया। अन्तिम संस्कार महाराज जी के जानशीन मौजूदा सतगुरु तथा महाराज जी के दोनों पुत्रों ने किया।

जैसे ही अग्नि प्रज्वलित हुई, संगत की एक गगन-भेदी चीत्कार से आकाश गूँज उठा। यह अन्त था, और एक प्रारम्भ की शुरुआत भी। ज्योति ज्योति में लीन हो गई थी, पर साथ ही एक नई ज्योति प्रज्वलित होकर जगमगा रही थी।

हुज़ूर महाराज जी के महाप्रयाण से कई लोगों को भ्रम हो सकता है कि एक ऐसा ख़ालीपन आ गया है जो कभी भरा नहीं जा सकता, कि डेरे के प्राण चले गये हैं, कि सत्संग का मार्गदर्शक नहीं रहा है और पूरे विश्व में उनके शिष्य अनाथ हो गये हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। महाराज जी ने अपनी वसीयत बनाई है, उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया है। अब वह रूहानी ज्योति उनके उत्तराधिकारी में है जिन्हें हुज़ूर महाराज जी ने अपने समस्त आध्यात्मिक और सत्संग से सम्बन्धित अधिकार प्रदान कर दिये हैं। जो हरएक कार्य अच्छे से अच्छा करते थे, जो सदा पूर्णता में विश्वास करते थे, उन्होंने प्रभु और उसकी सृष्टि से प्रेम का अपना सन्देश देने और

परमात्मा के मिलाप की प्यासी आत्माओं को उसकी प्राप्ति के मार्ग पर लगाने के लिये एक समर्थ तथा पूर्ण सतगुरु नियुक्त किया है।

हुज़ूर महाराज जी से मौजूदा महाराज जी का परिवर्तन ऐसे सरल और सहज रूप से हुआ है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। यह सब हुज़ूर महाराज जी की दया-मेहर से हुआ है। संगत के हृदय में हुज़ूर महाराज जी के लिये जो प्रेम है, उसने उन्हें अपने सतगुरु की इच्छा को स्वीकार करने और उनके जानशीन को प्यार और आदर के साथ अपनाने की शक्ति और आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता दी है। मौजूदा सतगुरु ने डेरे का काम-काज जहाँ हुज़ूर महाराज जी ने छोड़ा था वहीं से बड़ी कुशलतापूर्वक सँभाल लिया है। सब पूर्ण गुरु एक ही स्रोत से आते हैं, उनमें एक ही शक्ति काम करती है, वे एक ही होते हैं।

१० जून को मौजूदा महाराज जी पहली बार संगत को दर्शन देने के लिये मंच पर उपस्थित हुए। उसी दिन दस्तारबन्दी भी की गई और उन्हें औपचारिक रूप से गद्दीनशीन किया गया।

नये सतगुरु को बाबाजी का शाल और हुज़ूर महाराज जी की पगड़ी कप्तान पुरुषोत्तमसिंह ग्रेवाल ने (जो अब हुज़ूर महाराज जी के परिवार के प्रमुख हैं) पेश की ।

मौजूदा सतगुरु ने अपनी पगड़ी खोली और हुज़ूर महाराज जी की पगड़ी अपने सिर पर बाँधी तथा बाबाजी का शाल अपने कन्धों पर ओढ़ लिया। संगत अभी तक हुज़ूर महाराज जी के वियोग में अत्यन्त दुःखी थी, नये सतगुरु के दर्शन करके आत्म-विभोर हो गई। उनकी प्रेम-मयी छबि और करुणापूर्ण मुख को देखकर सबको बड़ा चैन और सन्तोष मिला। संगत को मत्था टेकने के बाद उन्होंने संगत से कुछ शब्द कहे जो नम्रता और प्रेम से परिपूर्ण थे। उनका गला बार-बार भर आता था और उन्हें हर वाक्य के बाद रुकना पड़ रहा था। उनके वचनों से संगत के हृदय में प्रेम की हिलोरें उठ रही थीं, क्योंकि उनका प्रत्येक शब्द सीधा हृदय को छू रहा था और अपने शाब्दिक अर्थ से कहीं अधिक भाव प्रकट कर रहा था।

हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी का वसीयतनामा

(हिन्दी अनुवाद)

मैं, स. चरनसिंह ग्रेवाल पुत्र स. हरबंससिंह ग्रेवाल, उम्र ७४ वर्ष, अपने पूरे होश-हवास में राधास्वामी सत्संग ब्यास के रूहानी कार्यों के बारे में यह वसीयत कर रहा हूँ।

यह वसीयत मैं हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी तथा मेरे पूर्ववर्ती सतगुरु (सरदार बहादुर महाराज जी) के आदेश के अनुसार कर रहा हूँ। मैंने करीब चालीस वर्ष तक संगत की पूरी लगन के साथ सेवा की है। मुझे पूरी संगत, सेवादारों और डेरा के अधिकारियों का जो अपार प्रेम, आदर और विश्वास मिला है उसकी मिसाल संसार में मिलना मुश्किल है। उनके सहयोग और सहारे के लिये मैं उनका बहुत आभारी हूँ।

हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी के हुक्म के अनुसार मैं श्री गुरिन्द्रसिंह ढिल्लों सुपुत्र श्री गुरमुखसिंह ढिल्लों निवासी मोगा को अपना रूहानी जानशीन नियुक्त करता हूँ। वे राधास्वामी सत्संग ब्यास के सन्त-सतगुरु और संरक्षक होंगे और उन्हें नाम देने का पूर्ण अधिकार होगा। वे महाराज जगतसिंह मेडिकल रिलीफ़ सोसाइटी के संरक्षक भी होंगे।

मैंने यह वसीयत हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी महाराज की इच्छा के अनुसार बनाई है और मुझे पूरी उम्मीद है कि मेरी इच्छा को, जिसे इस वसीयत में दर्ज किया गया है, पूरी संगत, मेरे परिवार के सदस्य और सोसाइटी के मेम्बर मानेंगे।

चरनसिंह

गवाह :

१. सेवासिंह
२. एस. एल. सोंधी
३. वीरेन्द्र कुमार सेठी
४. डाक्टर पी. एस. जोशी ३०.५.९०

सोहनसिंह भण्डारी, सरपंच, ग्राम पंचायत,
डेरा बाबा जैमलसिंह, जिला अमृतसर
३०.५.९०

सेक्रेटरी, राधास्वामी सत्संग ब्यास का भाषण
१० जून, १९९०

जैसा कि संगत को पता ही है, आज सुबह हम अपने प्यारे हुज़ूर महाराज जी के जानशीन की 'दस्तारबंदी' के शुभ अवसर पर इकट्ठे हुए हैं। लेकिन संगत की इजाज़त से मैं हुज़ूर महाराज जी की महानता के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में कुछ शब्द कहना चाहूँगा।

हुज़ूर महाराज जी की अस्वस्थता, जिसका दुःखदायी अन्त उनके देहावसान में हुआ, २७ मई की सुबह शुरू हुई। इस दिन उन्हें भण्डारे का अन्तिम सत्संग करना था। यदि उस दिन हुज़ूर महाराज जी अपनी तबियत के बारे में डाक्टरों से बात करते तो डाक्टर उन्हें सलाह देते कि अपने ऊपर सत्संग का बोझ न डालें। लेकिन संगत के प्रति उनका इतना गहरा प्रेम था और इतनी बड़ी संख्या में आये हुए लोगों को वे निराश नहीं करना चाहते थे, इसलिये सत्संग उन्होंने प्रदान किया। और जिस ज़ोरदार ढंग से उन्होंने सत्संग किया, वह इस सत्संग की विशेषता थी। बाद में उसी दिन से उनकी तबियत बिगड़ने लगी। अच्छे से अच्छा इलाज किया गया, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ, और पाँच दिन की संक्षिप्त-सी बीमारी के बाद उन्होंने जीवन के प्रवेश-द्वार के उस पार चले जाने का फ़ैसला कर लिया। सारी संगत को अकथनीय दुःख और शोक में डुबाते हुए वे शब्द के उस सागर में समा गये जहाँ से आये थे।

हुज़ूर महाराज जी एक परम सन्त थे जिन्हें प्रभु ने आत्माओं की मुक्ति के लिये इस संसार में भेजा था। मुझ जैसे तुच्छ, नश्वर मानव के लिये उनके गुणों का यथार्थ मूल्यांकन कर सकना असम्भव है। मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि अपने महान व्यक्तित्व के प्रबल आकर्षण, अपने आध्यात्मिक सामर्थ्य, अपने रूहानी ज्ञान तथा बुद्धिमत्ता, अपने नेक जीवन की निश्छल पवित्रता, अपनी सरल, स्वच्छ रहनी और अपने त्याग तथा उदारता द्वारा महाराज जी ने सत्संगियों तथा आम लोगों के हृदय पर समान रूप से गहरा प्रभाव डाला था। सन्तमत के आदर्शों के अनुसार उन्होंने अपना और अपने परिवार का निर्वाह नेक तथा हक-हलाल की कमाई द्वारा किया और संगत का एक पैसा भी अपने निजी कार्य पर खर्च नहीं किया, न ही



महाराज गुरिन्दरसिंह जी

संगत से कोई वस्तु या भेंट अपने लिये स्वीकार की। इतना ही नहीं, अपनी आमदनी का काफ़ी बड़ा हिस्सा उन्होंने संगत की सेवा में लगा दिया। उनके उच्च सिद्धान्तों तथा महान आदर्शों के लिये हम उन्हें अपने जीवन के अन्त तक याद रखेंगे।

हुज़ूर महाराज जी लगभग चालीस वर्ष सन्त-सतगुरु के पद पर बिराज-मान रहे। उन्होंने अपने आपको पूरी तरह से सन्तमत के प्रसार में अर्पित कर दिया। इसके लिये उन्होंने भारत के लगभग सभी हिस्सों और विश्व के अनेक देशों के दौरे किये, और सन्तमत पर पुस्तकें लिखीं, जिनको इतनी लोकप्रियता मिली है जितनी विरले ही किसी लेखक को नसीब हुई हो। सन्तों की शिक्षा का चारों ओर प्रसार करने के लिये उन्होंने अपने स्वास्थ्य और सुविधा की चिन्ता नहीं की। यह उनका प्रिय कथन था कि मानव कल्याण के लिये मनुष्य देह का जो भी अच्छे से अच्छा उपयोग हो सकता हो किया जाना चाहिये। आत्माओं को मुक्ति के मार्ग पर लगाने के लिये उन्होंने जो अथक परिश्रम किया है वह बेमिसाल है, क्योंकि उन्होंने लगभग बारह लाख व्यक्तियों को नाम बख़्शा और इस प्रकार उन्हें सचखण्ड में प्रवेश का अधिकारी बना दिया। जिस राधास्वामी सत्संग ब्यास के हुज़ूर महाराज जी प्रमुख थे, उसके भाग्य का संचालन उन्होंने बड़ी सफलता के साथ किया और उसे उस शिखर पर पहुँचा दिया जहाँ वह आज संसार का एक अत्यन्त प्रतिष्ठित आध्यात्मिक केन्द्र बन गया है। यह उनके अनथक प्रयत्नों का परिणाम है कि आज राधास्वामी सत्संग का सभी सम्मान करते हैं और संसार के लगभग पचास देशों में फैले इसके अनुयायियों को उनकी नेक रहनी, उच्च चरित्र, सरल व्यवहार तथा सभी के प्रति प्रेम और दया के कारण बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

सांसारिक धरातल पर भी महाराज जी की उपलब्धियाँ कुछ कम रवपूर्ण नहीं हैं। उन्होंने डेरे में निःशुल्क नेत्र-शिविरों (आई-कैंप्स) का क्रम किया जो अब डेरे की गतिविधियों का एक वार्षिक अंग बन गया है। शिविरों में प्रति वर्ष पाँच हज़ार से अधिक रोगियों का मुफ़्त आपरेशन ा जाता है। हुज़ूर महाराज जी ने एक विशाल तथा सुन्दर अस्पताल का ण भी किया है, जिसमें जाति, रंग और धर्म के भेद-भाव के बिना सभी

का, ख़ास कर ग्रामीण लोगों का, मुफ़्त इलाज किया जाता है। संसार में शायद ही कोई ऐसा अस्पताल हो जो इसकी बराबरी कर सके।

अफ़सोस, जब उस दिव्य आत्मा ने इस धरती पर अंकित आत्माओं के प्रति अपना कर्तव्य निभा दिया तो प्रभु ने उसे अपने धाम वापस बुलाने का निश्चय कर लिया।

यह हमारे लिये सौभाग्य की बात है कि डेरे में सन्त-सतगुरुओं की परम्परा बनाये रखने के लिये हुज़ूर महाराज जी एक वसीयत छोड़ गये हैं। यह वसीयत हुज़ूर ने ३० मई, १९९० को बनाई और इस पर चार सत्संगियों ने गवाह के रूप में हस्ताक्षर किये हैं। इस वसीयतनामे के द्वारा हुज़ूर महाराज जी ने श्री गुरिन्द्रसिंह ढिल्लों सुपुत्र श्री गुरमुखसिंह ढिल्लों को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया है। यह वसीयत पढ़ कर संगत को सुनाई जा रही है, पहले अंग्रेज़ी में और फिर पंजाबी में। हुज़ूर की यह अन्तिम इच्छा थी कि उनके जानशीन को वही प्रेम और सम्मान दिया जाये जो उनकी संगत के हृदय में उनके लिये था। वसीयत में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि हुज़ूर के जानशीन उनके बाद केवल सन्त-सतगुरु ही नहीं होंगे, बल्कि उनके पास नामदान देने का सामर्थ्य और अधिकार भी होगा, और वे सत्संग सोसाइटी तथा मैडिकल रिलीफ़ सोसाइटी के संरक्षक भी होंगे। इस प्रकार डेरे का काम-काज तथा प्रशासन, आध्यात्मिक कार्यों की पूर्ति तथा संगत की सुख-सुविधा की वृद्धि, अर्थात वह सब कार्य जो हुज़ूर महाराज जी के हाथों में था उनके जानशीन के सुपुर्द कर दिया गया है। सो यह हमारा कर्तव्य है कि हुज़ूर महाराज जी के हुक्म का पालन करें और उनके जानशीन को उन्हीं का रूप समझें, देहधारी शब्द समझें।

(इसके बाद 'दस्तारबंदी' की रस्म सम्पन्न हुई। कप्तान पी. एस. ग्रेवाल ने हमारे नये सतगुरु को पगड़ी भेंट की जिसे बाँध कर उन्होंने बाबा जैमलसिंह जी महाराज के आसन पर अपना स्थान ग्रहण किया।)

महाराज जी के जानशीन सतगुरु गुरिन्दरसिंह जी का गद्दीनशीनी के समय का भाषण

हुज़ूर महाराज जी जिस तरह चोला छोड़कर चले गये हैं उसका दुःख हम सबको इतना है कि बयान नहीं किया जा सकता। वे एक छोटी-सी बीमारी का बहाना करके हुज़ूर बड़े महाराज जी की गोद में चले गये, जिससे संसार में एकदम अँधेरा छा गया। डाक्टरी तौर पर तो हुज़ूर ठीक हो सकते थे, लेकिन उन्होंने चोला छोड़ने का फ़ैसला कर लिया था और हमें छोड़कर चले गये। दास इस समय संगत की सेवा में कुछ कहने-सुनने के योग्य नहीं है, पर फिर भी बड़े महाराज जी और प्यारे सतगुरु महाराज जी के हुक्म अनुसार आपकी सेवा में हाज़िर हुआ हूँ।

मैं तो डेढ़ महीने की छुट्टी कुछ निजी कार्यों के लिये और महाराज जी के चरणों में बिताने के लिये आया था, सारी संगत की तरह दास को भी महाराज जी के इतनी जल्दी चोला छोड़ जाने की कल्पना तक नहीं थी। मैंने तो कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि मेरे सतगुरु इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी का भार मेरे सिर पर डाल देंगे। मैं अपने आपको इस सेवा के योग्य नहीं समझता और मैं तो संगत के चरणों की धूल हूँ। मैं जब अपनी कमज़ोरियों की ओर ध्यान देता हूँ तो सोचता हूँ कि संगत की सेवा का यह भारी बोझ किस तरह उठाऊँगा। महाराज जी की दया-मेहर और संगत के सहयोग के बिना मैं कुछ भी करने योग्य नहीं हूँ। मैं समझता हूँ जो सेवा करने का हुक्म दास को दे गये हैं, वह सतगुरु आप ही अपनी दया-मेहर से इस दास से एक कल-पुरज़े की तरह करवा लेंगे।

मैं अपने आपको खोया-खोया महसूस करता हूँ, पर इस समय सतगुरु का हुक्म मानने के सिवाय मेरे पास कोई चारा नहीं। मैं इस आशा और विश्वास के साथ सेवा आरम्भ करने जा रहा हूँ कि संगत मुझे अपना दास समझ कर पूरा सहयोग देगी, और अपने अटूट प्यार के भण्डार में से जोकि महाराज जी के लिये उनके पास है, थोड़ा-सा प्यार दास की झोली में भी डालने की कृपा करेगी। इन शब्दों के साथ दास अपने आपको संगत की सेवा में अर्पण करता है।

२५. गुरु कहें खोल कर भाई	स्वामीजी महाराज
२६. नामै ही ते सभु किछु होआ	गुरु अमरदास जी
२७. गुर की मूरति मन महि धिआनु	गुरु अर्जुनदेव जी
२८. जगजीवनु साचा एको दाता	गुरु अमरदास जी
२९. धाम अपने चलो भाई	स्वामीजी महाराज
३०. रामा रम रामो सुनि मनु भीजै	गुरु रामदास जी
३१. गुरु कहें जगत सब अंधा	स्वामीजी महाराज
३२. बिखु बोहिथा लादिआ	गुरु नानक देव जी
३३. जग में घोर अंधेरा भारी	स्वामीजी महाराज
३४. करमु होवै सतिगुरू मिलाए	गुरु अमरदास जी
३५. हरि की पूजा दुलंभ है संतहु	गुरु अमरदास जी
३६. आतम महि रामु राम महि आतमु	गुरु नानक देव जी
३७. मन खिनु खिनु भरमि भरमि बहु धावै	गुरु रामदास जी
३८. तजो मन यह दुख सुख का धाम	स्वामीजी महाराज
३९. सोता मन कस जागे भाई	स्वामीजी महाराज
४०. मिली नर देह यह तुम को	स्वामीजी महाराज
४१. सतगुरु कहें करो तुम सोई	स्वामीजी महाराज
४२. सतगुरु का नाम पुकारो	स्वामीजी महाराज
४३. प्रेमी सुनो प्रेम की बात	स्वामीजी महाराज
४४. दरसनु भेटत पाप सभि नासहि	गुरु अर्जुनदेव जी
४५. इसु जुग का धरमु पड़हु तुम भाई	गुरु अमरदास जी
४६. हुकमी सहजे सृसटि उपाई	गुरु अमरदास जी

हमारे प्रकाशन

स्वामी शिवदयाल सिंह जी महाराज

१. सार बचन छन्द-बन्द
२. सार बचन वार्तिक
३. सार बचन संग्रह

बाबा जैमलसिंह जी महाराज

१. परमार्थी पत्र, भाग १
२. अमृत बचन

हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी

१. परमार्थी पत्र, भाग २
२. शब्द-सार
३. शब्द की महिमा के शब्द
४. अमृत बचन
५. गुरुमत सिद्धान्त, भाग १
६. गुरुमत सिद्धान्त, भाग २
७. गुरुमत सिद्धान्त ८४ विषय
८. सत्संग-संग्रह
९. सन्तमत प्रकाश, भाग १ से ७
१०. परमार्थी साखियाँ
११. गुरुमत सार, भाग १, २
१२. प्रभात का प्रकाश

सरदार बहादुर जगतसिंह जी

१. आत्म-ज्ञान
२. रूहानी फूल
३. रूहानी गुलदस्ता

हुज़ूर चरनसिंह जी महाराज

१. सन्तों की बानी
२. सन्तमत दर्शन, भाग १ से ३
३. सन्त-संवाद, भाग १, २
४. सन्त-मार्ग
५. जीवित मरिये भवजल तरिये
६. पारस से पारस
७. सत्संग : आगरा में
८. सत्संग नं. १ से ४६

'पूर्व के सन्त' पुस्तक-माला के अन्तर्गत

१. सन्त नामदेव — प्रो. जनक पुरी
२. सन्त दादू दयाल — डा० के. एन. उपाध्याय
३. सन्त दरिया (बिहार वाले) — डा० के. एन. उपाध्याय
४. गुरु रविदास — डा० के. एन. उपाध्याय
५. नाम-भक्ति : गोस्वामी तुलसीदास — डा० के. एन. उपाध्याय, श्री पंचानन उपाध्याय

६. मीरा : प्रेम दीवानी	श्री वीरेन्द्र सेठी
७. सन्त पलटू	श्री राजेन्द्रकुमार
८. सन्त कबीर	श्रीमती शान्ति सेठी
९. सन्त तुलसी साहिब	प्रो. जनक पुरी, श्री वीरेन्द्र सेठी
१०. उपदेश राधास्वामी (स्वामीजी महाराज)	डा. सहगल, डा. शंगारी
	डा. खाक, डा. भण्डारी
११. गुरु नानक का रूहानी उपदेश	प्रो. जनक पुरी
१२. साईं बुल्लेशाह	प्रो. जनक पुरी
	डा. टी. आर. शंगारी
१३. मीरदाद की पुस्तक	मिखाइल नइमी
१४. सरमद	डा. जे. एस. शीतल
१५. हज़रत सुलतान बाहू	डा. कृपालसिंह 'खाक'
	प्रो. जनक पुरी

सतगुरुओं के विषय में

१. रूहानी डायरी, भाग १ से ३	राय साहिब मुन्शीराम जी
२. धरती पर स्वर्ग	दीवान दरियाईलाल जी
३. सन्त-समागम	दीवान दरियाईलाल जी
४. मेरा सतगुरु	डा. जूलियन पी. जानसन

सन्तमत के सम्बन्ध में

१. नाम-सिद्धान्त	डा. टी. आर. शंगारी
	डा. कृपालसिंह 'खाक'
	डा. गुरदीपसिंह भण्डारी
२. सन्तमत विचार	डा. टी. आर. शंगारी
	डा. कृपालसिंह 'खाक'
३. सन्त-सन्देश	श्रीमती शान्ति सेठी
४. गुरुमत, भाग १ से ४	श्री लेखराज पुरी
५. विनती और प्रार्थना	सम्पादित
६. अनमोल ख़ज़ाना	श्रीमती शान्ति सेठी
७. अमृत नाम	जस्टिस महेन्द्रसिंह जोशी
८. अन्तर की आवाज़	कर्नल साँडर्स
९. हंसा हीरा मोती चुगना	सम्पादक : सन्तोखसिंह
	डा. टी. आर. शंगारी
१०. हक हलाल की कमाई	सम्पादित